गद्य-सौरभ

भाग—3

दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास
1952

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला, पुष्प 108

1—3
दूसरा संस्करण:
अगस्त 1952
5

दाम 2—0—0

O No 1234
हिन्दुस्तानी प्रचार प्रेस, त्यागरायनगर, मद्रास

अपनी ओर से

किसी भी जीवित भाषा की कसौटी उसका गद्य ही है। आज गद्य का ही जमाना है। मनुष्य अपने विचारों को गद्य में विस्तार के साथ अभिव्यक्त कर सकता है। इसीसे गद्य का संबंध जीवित-जागृत जगत् से अत्यन्त निकट का है। जीवन जितना विस्तृत है उतना ही विस्तृत गद्य का क्षेत्र है। वस्तुत. यही राष्ट्रीय मस्तिष्क का जीता-जागता चित्र उपस्थित कर सकता है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि हम 'गद्य-सौरभ' का यह तीसरा भाग पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर रहे है। इस संकलन मे उन्ही लेखकों के लेखों का सकलन किया गया है जो साहित्य के क्षेत्र में माने हुए लेखक है। इसके चयन में सभा की उपाधि परीक्षा (राष्ट्रभाषा विशारद) तथा मद्रास व मैसूर तथा अन्य विश्व-विद्यालयो की उपाधि-परीक्षाओ की श्रेणी का ध्यान रखा गया है।

राष्ट्र की सरकार ने हिन्दी को राजभाषा की गद्दी दे दी है। हमें अब उसे इस योग्य बनाना है जिससे वह पूर्ण रूप से अपने स्थान के लायक बन सके। इस दृष्टि से समकालीन विभिन्न विषयों व तत्संबंधी शब्दावली से और हिन्दी की विभिन्न शैलियो से अपने पाठकों को परिचित कराना भी हमारा लक्ष्य है। संकलन करते समय इस बात का प्रयत्न किया गया है।

इस संग्रह मे संगृहीत लेखो के लेखको का परिचय एक साथ आरभ मे दिया गया है। बहुत प्रयत्न करने पर भी हमे श्री अख्तर हुसैन रायपुरी का परिचय प्राप्त नही हो सका। इसलिए हम उनके क्षमाप्रार्थी है।

जिन लेखको की कृतियाँ इसमें ली गयी है उनके हम आभारी है। सस्ता साहित्य मंडल, देहली, से प्रकाशित 'समाजवाद' से 'असमान आय के दुष्परिणाम' उद्धृत करने की अनुमति मडल ने दी है। इसके लिए मंडल को हम हार्दिक धन्यवाद देते है।

आरंभ में भाषा व गद्य के विकास की विभिन्न दशाओ का तथा उनकी प्रेरक शक्तियो का संक्षिप्त परिचय पाठको के उपयोग की दृष्टि से दिया गया है। पाठक इससे अवश्य लाभ उठाएँगे।

प्रकाशक

दूसरा संस्करण

इस पुस्तक का यह दूसरा व संशोधित संस्करण है। पाठों में संशोधन के अलावा कठिन शब्दार्थ में भी हमने कुछ तरक्की की है। और अधिक शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। अब की बार कठिन शब्दार्थ एक साथ पुस्तक के अंत में दिये गये हैं, इसलिए पाठों की पृष्ठ संख्या में परिवर्तन हुआ है, पाठक कृपया नोट कर लें।

प्रकाशक

विषय-सूची

हिन्दी गद्य के विकास की गतिविधि

हिन्दी साहित्य के इतिहास के कालक्रम मे वीरगाथा के बाद भक्ति काल और उसके बाद रीतिकाल आरंभ होता है। इस रीतिकाल के खतम होते-होते देश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में एक बहुत ही प्रभावशाली परिवर्तन हम देखते है। इसी समय भारत के धार्मिक भावमय जीवन मे ऐतिहासिक सघर्ष भी पैदा हुआ है। भारतीय स्वतत्रता की अतिम लड़ाई की लपटो में अब भी गर्मी थी। चिनगारी राख की ढेरी में ढँकी पड़ी थी। वह चिनगारी फिर लपटो में व्यक्त होना चाहती थी। भावमय जीवन में चिनगारी को लपटो मे परिवर्तित करने की शक्ति नही थी। इसी स्थिति में भारतीय नवीन जागृति का आरभ हुआ। क्रान्तदर्शी कवि समयानुकूल नवीन गान का सृजन उस पुरानी साहित्यिक परपरा को लेकर, जो विरासत में प्राप्त थी, कर नहीं सकता था। अपने गरम दिमाग म छटपटानेवाले विचारो को साधारण से साधारण अपढ तक पहुँचाना चाहता था। मगर बेचारा लाचार था।

देश का वातावरण बदल चुका था। स्थिति भी भिन्न थी। अब उस पुरानी भाषा की वह परपरा, जो केवल जीवन के कुछ पहलुओ को लेकर भावाभिव्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध हुई थी, आज की मानसिक पिपासा को बुझा नही सकती थी। इसके लिए भाषा के एक नवीन और सक्षम रूप के निर्माण का होना आवश्यक था। यद्यपि हिन्दी एक प्रकार स कथित भाषा के रूप में प्रचलित थी, तो भी उसका लिखित गद्यात्मक प्रशस्त रूप नहीं था। उस समय के लोगों को इस तरह की गद्य-भाषा का निर्माण करना था और नवीन भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त नवीन पद्धति की नीव भी डालनी थी। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' की भाषा भी यद्यपि गद्य के आदिम

रूप में थी, तो भी वह ब्रजभाषा के प्रभाव से पूर्णतया सराबोर थी, उस तरह की भाषा में लिखित साहित्य भी साम्प्रदायिक सीमा के अदर ही था। जब परिस्थितियो ने लाचार कर दिया तो वह भाषा उस सीमा से बाहर आना चाहती थी। उस उस सीमा से बाहर लाने का श्रेय 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक इशाअल्ला खॉ को मिला। इनकी भाषा में पजाबी का असर रहा और अरबी फारसी का भी। "आतियॉ, जातियॉ जो सॉसे ह" जैसे प्रयोग पजाबी के उदाहरण है तो "सर झुकाकर नाक रगडता हूँ अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सबको बनाया" जैसे प्रयोगो में अरबी फारसी का भी असर स्पष्ट ह।

पडित सदल मिश्र ने इस समय नासिकेतोपाख्यान लिखा जिसकी शैली खडीबोली के कथावाचको की सी है। सदलमिश्र और इशा की शैलियो में, एक म मनोरजन होता है तो दूसरी से जनमन म स्थित धार्मिक भावना की तुष्टि कुछ हद तक होती है। यद्यपि इस तरह स साहित्यिक गद्यरूप के विकास का आरभ हुआ, तो भी किसी तरह के विचार प्रधान साहित्य का निर्माण नही हो सका।

ठीक इसी समय के आसपास कलकत्ते म फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। अग्रेज शासको के लिए यहॉ की भाषा से परिचित होना आवश्यक हो गया था। इसलिए उन्होने प लल्लूलाल जी को अपने कालेज में हिन्दी पढाने के लिए नियुक्त किया। पडित जी ने कालेज के प्रिन्सिपाल जान गिलक्रिस्ट की प्रेरणा से 'प्रेमसागर' की रचना की। यद्यपि प्रेमसागर उसी पुराने भक्तिभाव की प्रेरणा से लिखा ग्रथ है तो भी कुछ हद तक साम्प्रदायिकता की सीमाओ से बाहर जा गया-सा लगता है। इस प्रेमसागर की शैली भी सदल मिश्र की शैली की तरह खडीबोली के कथावाचको की ही है। मगर 'आतियॉ-जातियॉ' जैसे प्रयोग नही। इसमे अवधी के 'जौन तौन' जैसे सर्वनामो के रूप तथा 'आय, जाय, खाय' जैसे ब्रजभाषा के क्रिया-रूप मिलते हैं। फिर भी एक सर्वस्वीकृत रूप इस भाषा में भी नही आ पाया था।

इसी समय मे श्री सदासुखलाल, 'नियाज' ने 'योगवासिष्ठ' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। यह अवध, बिहार और मिथिला जैसे पूर्वी भागों में लोगों के आदर का पात्र बना। इस योगवासिष्ठ के अनुवाद मे कुछ ऐसे प्रयोग मिलते है जो आज की हिन्दी में बिलकुल नहीं पाये जाते, जैसे "स्वभाव करके वे दैत्य कहलाये" में 'करके' को देखिये। ऐसे प्रयोग आज दक्षिण की बोलचाल की हिन्दुस्तानी में प्रचलित है, जैसे, "मै आता हूँ करके बोला।" मगर यह 'करके' हिन्दी के पूर्वकालिक 'करके' के प्रयोग से भिन्न है।

फिर, अब इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सर्वश्री इंशाअल्ला खॉ, सदल मिश्र, लल्लूलाल और सदासुखलाल 'नियाज' ये चार महानुभाव हिन्दी-गद्य के प्रथम आचार्य थे। इन चारों की चार तरह की गद्य शैलियों मे श्री सदासुखलाल 'नियाज' की संस्कृत मिश्रित शैली एक तरह से सर्वस्वीकृत थी।

इस समय तक जिस गद्य शैली का विकास हुआ था उससे ईसाई पादरियों ने लाभ उठाया। इसी समय बाइबिल का अनुवाद भी हुआ। इसकी भाषा का यह नमूना है—"यीशु बपतिस्मा लेके तुरत जलके ऊपर आया, आया, और देखो उसके लिए स्वर्ग खुल गया।"

इसके बाद पादरी मूर साहब के तत्वावधान मे आगरे में स्कूल बुक सोसाइटी कायम हुई जिसकी तरफ से स्कूलों में हिन्दी पढाने के लिए कुछ रीडरें प्रकाशित हुई, और यह इसलिए कि अंग्रेजी-स्कूलों में हिन्दी को भी जगह मिलने लगी थी। इससे कुछ छोटी-मोटी पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी।

ईसाइयों के धर्म-प्रचार के कारण भारतीय जाति को जो क्षति पहुँच सकती थी उसे कुछ दूरदर्शी भारतीय विद्वानों ने भाँप लिया। इस स्थिति मे देश को रहने देना देश के स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं था। इस बात

को अनुभव कर राजा राममोहनराय ने इस दिशा में, जनता में जागरण पैदा करने के लिए ऐसे ही विचार रखनेवाले युवकों को इकट्ठा किया और ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस समाज की तरफ से उन्होंने 'बंग दूत' नामक एक हिन्दी संवाद-पत्र निकाला। उसकी भाषा का यह नमूना है—
"वेदाध्ययन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग और मोक्ष होने सक्ता नहीं।"

इस समय तक देश में छापाखाने भी खुल गये थे। पं. जुगलकिशोर जी ने उस समय 'उदंत मार्तंड' नामक एक दैनिक पत्र निकाला। यही हिन्दी की सर्वप्रथम दैनिक पत्रिका थी। इसी समय इसकी देखा-देखी कई पत्र पत्रिकाएँ और निकलीं। इन पत्रिकाओं की भाषा वही थी जिसको पं. लल्लूलाल जी ने चलाया था। इस तरह एक संस्कृत मिश्रित हिन्दी गद्य भाषा की लल्लूलाल जी वाली शैली कलकत्ते से देहली तक धीरे-धीरे फैलती गयी।

अब यहाँ से हिन्दी गद्य का दूसरा काल आरंभ होता है। भाव-परंपरा एवं विचार परंपरा से पुष्ट सबल भाषा, साहित्य के लिए उपयुक्त होती है। ऐसी ही साहित्यिक भाषा का प्रणयन अब होने लगा।

स्कूलों में हिन्दी पढ़ायी जाने लगी। राजा शिवप्रसाद, 'सितारे हिन्द' स्कूलों के इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए। आपने 'राजा भोज का सपना' जैसे कई निबन्ध लिखे जो उस समय स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में स्थान पा गये। उनकी भाषा का यह नमूना है—"वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराज भोज का नाम न सुना हो। उसकी कीर्ति और महिमा तो सारे जगत् में व्याप रही है।"

इसी समय में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुंतला' का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कराया। उसकी भाषा का नमूना देखिये—"शकुंतला—हे अनसूया! एक तो मेरे पाँव में नयी दाभ की अनी लगी है, दूसरे कुरु की डाल में अंचल उलझा है। नैक ठहरो तौ, मैं इनसे निबट लूँ।"

नाटक की इस भाषा में एक प्रकार से हिन्दी की भावी लोकभाषा के स्वरूप का आभास है। ऐसी ही हिन्दी को लेकर भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य में एक नवीन युग का प्रवर्तन किया।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। आप शिवप्रसाद के समसामयिक थे। भारतेन्दु जी ने हिन्दी में नाटक और निबन्ध लिखे और पत्रिकाओं का संपादन भी किया। इसके अलावा उन्होंने अपने अनेक साथियों से उत्तम साहित्य का निर्माण कराया। अब हिन्दी साहित्य की धारा रीतिकालीन सँकरीली नाली में नहीं रुकी रही। भारतेन्दु जी ने उसे गति देकर नाना क्षेत्रों में बहाया। इससे गद्य साहित्य अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विकसित होने लगा। भारतेन्दु जी ने बंगला, प्राकृत और संस्कृत भाषाओं से 'सत्य हरिश्चन्द्र, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस' नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इस तरह से आपने साहित्य को जनता के निकट तक पहुँचाया। इतना ही नहीं, तत्कालीन देश दशा का दिग्दर्शन कराते हुए बड़े ही मार्मिक ढंग से 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक लिखकर लोक-जीवन में तहलका मचा दिया। यह भाषा-विषयक ही नहीं देश विषयक विचारों का भी वह रूप था जिससे सब तरह के लोग प्रभावित हुए।

भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों में यद्यपि खड़ीबोली का ही प्रयोग किया, तो भी नाटकों में प्रयुक्त गीतों के लिए ब्रजभाषा ही को उत्तम माना और उसीका प्रयोग किया।

भारतेन्दु जी मौलिक नाटककार तो थे ही, इसके अलावा अच्छे अभिनेता भी थे। इससे तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक विषयों को लेकर उन्होंने नये नये नाटक लिखे और खेले भी। अपनी 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के द्वारा विभिन्न विचारों को विभिन्न शैलियों में व्यक्त करते रहे। इससे गद्य-साहित्य की रूप रेखा बनने लगी। आपने अपने समय में एक प्रभावशाली साहित्यिकों की मंडली स्थापित की

जिसमे सर्वश्री बदरीनारायण चौधरी, प प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह, लाला श्रीनिवासदास, प बालकृष्णभट्ट, प अम्बिकादत्त व्यास, प राधाचरण गोस्वामी आदि विद्वान थे। इन सभी विद्वानो ने खड़ीबोली के गद्य-निर्माण में भारतेन्दु जी के साथ योग दिया। इन सबके प्रयत्न से गद्य की भाषा पुष्ट ता हुई और साथ ही साहित्य के विभिन्न अग भी [illegible] विकसित होने लगे।

इस 'भारतेन्दु साहित्य मडली' की साहित्य सेवा सर्वतोमुखी थी। इस मडली के सभी विद्वान सदस्यो ने निबध और नाटक लिखे। इन सभी विद्वानो ने अपने विद्वत्तापूर्ण विचारो का प्रणयन अत्यत आकर्षक ढग से विभिन्न शैलियो में किया। नाटक और निबन्ध के अतिरिक्त इस समय [illegible] उपन्यास भी निकले। लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' उपन्यास हिन्दी के मौलिक उपन्यास का प्रथम प्रयास है।

भारतेन्दु जी के द्वारा प्रेरणा पाकर श्री राधारमण गोस्वामी जी ने 'भारतेन्दु' नामक एक पत्र निकाला। पडित अम्बिकादत्त व्यास ने गद्य मे आलोचनात्मक लेख लिखे। श्री प मोहनलाल पड्या ने रासो पर ऐतिहासिक अन्वेषण से परिपूर्ण एक निबन्ध लिखा। इस तरह हिन्दी साहित्य के लिए एक विशाल क्षेत्र तैयार हुआ। अर्थात भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य के विभिन्न अगों की पुष्टि कैसे हो सकती है, इसका दिग्दर्शन करा दिया जिससे आगे चलकर साहित्य के क्षेत्र में काम करनेवालो के लिए बहुत हद तक प्रोत्साहन मिला।

ऊपर कहा गया है कि गद्य के विकास काल के आरभ में ईसाइयो ने बाइबिल का अनुवाद कराया, और अपने स्कूलो मे हिन्दी सिखाने के लिए पुस्तकें तैयार करवायी। इस तरह से ईसाई पादरी साधारण जनता को अपनी तरफ आकर्षित कर उसे धर्म का उपदेश देते रहे। साथ ही धर्मपरिवर्तन भी करते रहे। इससे देश की शक्ति का ह्रास होता था। इस बात का अनुभव उधर पूर्वी भाग (बगाल) मे राजा राममोहनराय ने किया था तो इधर

पश्चिमी भागों (गुजरात, पंजाब और राजस्थान आदि) में 'महर्षि दयानंद' ने किया। महर्षि ने भारतीय आर्य धर्म की विशिष्टता का परिचय देकर देश की जनता में एक नया जागरण पैदा किया। विभिन्न सामाजिक पहलुओं को लेकर राजा राममोहनराय ने और महर्षि दयानंद ने अपना कार्य प्रारंभ किया। अपने कार्य को पुष्ट करने के लिए उन्हें जन-शक्ति की आवश्यकता थी, लोगों के विचारों में क्रान्ति लाना आवश्यक था। इस कार्य के लिए आर्य समाज ने बहुत से पत्र निकाले, और प्रभूत मात्रा में साहित्य-निर्माण भी किया। यद्यपि यह साहित्य उस प्राचीन वैदिक वाङ्मय का रूपांतर मात्र था तो भी इस कार्य से हिन्दी गद्य को काफी बल मिला। महर्षि ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी (आर्य भाषा) में लिखा। इसी समय कई शिक्षण संस्थाएं आर्य समाजियों की ओर से खुलीं। इनमें आर्य-धर्म की शिक्षा की व्यवस्था की गयी। साथ ही अन्य विषयों की भी शिक्षा हिन्दी में दी जाने लगी। इन शिक्षण संस्थाओं में उच्च शिक्षण का माध्यम भी हिन्दी बनी। इस तरह से हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा देने की प्रणाली चल पड़ी।

इस समय श्री श्यामसुंदरदास जी के अथक परिश्रम से 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के द्वारा एक पत्रिका का प्रकाशन होने लगा जो आज भी चल रही है। सभा आरंभ से ही पुरातत्वान्वेषण और हिन्दी के प्राचीन पांडुलिपियों पर खोज बराबर करती रही है। समय समय पर इस तरह के विद्वत्तापूर्ण अन्वेषणों पर लेख प्रकाशित होते रहे हैं। सभा के द्वारा साहित्य का इतिहास, हिन्दी व्याकरण, शब्द-सागर जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों का संपादन और प्रकाशन श्री रामचंद्र शुक्ल, श्री श्यामसुंदरदास जैसे विद्वानों की देखरेख में हुआ। सभा की 'मनोरंजन-पुस्तक माला सीरीज' में साहित्य संबंधी तथा साहित्येतर विषय संबंधी उपयोगी और विचारपूर्ण साहित्य का प्रकाशन हुआ है।

श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जब आगमन हुआ तब तक भारत में अंग्रेजी राज्य जड़ पकड़ चुका था।

कलकत्ता, बबई और मद्रास मे विश्वविद्यालयो की स्थापना हो चुकी थी। स्कूल कालेजो में हिन्दी की पढाई की व्यवस्था हो चली थी। उच्च कक्षाओ मे भी हिन्दी की पढाई होने लगी। साथ ही हिन्दी भाषाभाषी जनता भी इस आवश्यकता की पूर्ति करने में पीछे न रही। नाटक, उपन्यास, कहानी आदि सभी साहित्यिक क्षेत्रो में बगला, अंग्रेजी, मराठी, सस्कृत आदि सभी भाषाओ से अनुवाद का कार्य आरम्भ हुआ। खासकर डी० एल० राय के नाटको के अनुवाद हिन्दी के नाटक साहित्य में एक जबरदस्त अग बन गये। उनके अनुकरण पर हिन्दी में मौलिक नाटक भी लिखे जाने लगे।

इस समय हिन्दी में नये ढग की कहानिया भी लिखी जाने लगी। बीसवी सदी का यह आरम्भकाल था जब किशोरीलाल गोस्वामी ने 'इन्दुमती' नामक कहानी लिखी। यही सर्वप्रथम प्रकाशित हिन्दी कहानी मानी गयी। पीछे चलकर कहानियाँ धडाधड निकलने लगी।

आचार्य प्रवर महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सपादन कार्य अपने हाथ में लिया। इससे नये ढग के लेखको को काफी प्रोत्साहन मिला। इस समय श्री प्रेमचन्द जी की कहानियाँ अंग्रेजी की कहानिया के मुकाबले में काफी रोचक सिद्ध होने लगी। श्री जयशकरप्रसाद जी की कहानिया अपने ढग की निराली निकलीं।

बंगला से कई उपन्यासो के अनुवाद अब हिन्दी मे अधिक आने लगे। इनके ढग पर हिन्दी मे मौलिक उपन्यास भी लिखे जाने लगे। श्री देवकीनदन खत्री का 'चद्रकाता सतति' इस तरह के नये ढग के मौलिक उपन्यासो में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। 'चद्रकाता सतति' की कहानी बडी ही मनोरजक है। बहुत समय तक इसकी धूम रही। बकिम बाबू, शरत बाबू और रमेश बाबू जैसे बगला उपन्यासकारो के नये-नये उपन्यासो का, जो अंग्रेजी ढग के थे, हिन्दी में अनुवाद भी उपस्थित हो गये। रविबाबू की 'ऑख की किरकिरी' का अनुवाद हिन्दी मे निकला। उस समय श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने 'उपन्यास' नामक एक पत्रिका ही निकाली।

'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो कृतियाँ लिखी। इस तरह आधुनिक कहानी और उपन्यास का आरम्भ बड़ी सावधान के साथ विभिन्न गद्य-शैलियों में हुआ। भावाभिव्यक्ति के लिए जिस सहजता और जिस मार्मिकता की आवश्यकता होती है वह इस समय भाषा में आने लगी।

श्री बालकृष्ण भट्ट और उनके सहयोगियों ने विभिन्न विषयों पर निबन्ध साहित्य के निर्माण के लिए पहले ही से नींव डाली थी। 'सरस्वती' के संपादकीय के रूप में प्रकाशित आचार्य द्विवेदी जी के निबन्ध काफी महत्वपूर्ण थे और आज भी हैं। भाषा की शुद्धता के साथ साथ विचारों में प्राञ्जलता लाकर संपादकवर आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी की जो महत्वपूर्ण सेवा की उससे हिन्दी की शक्ति काफी बढ़ी। अब उसमें हर तरह के विषय पर निबन्ध लिखे जा सकते थे और लिखे जाने लगे। स्वयम् आचार्य जी ने ऐसे निबन्धों के नमूने प्रस्तुत करके लेखकों का मार्गदर्शन भी कराया। श्री बालमुकुंद गुप्त का 'शिवशंभु का चिट्ठा' जैसे हास्यरस पूर्ण निबन्ध भी निकलने लगे। इस समय की एक विशेषता यह रही कि यह खड़ीबोली हिन्दी अब केवल गद्य तक सीमित न रहकर काव्य के क्षेत्र में भी पदार्पण कर चली।

इसी स्थिति में समालोचना साहित्य का भी सृजन हुआ। बाबू श्यामसुंदरदास जी ने आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। बाबू जी ने बी. ए. और एम. ए. तक के उच्च से उच्च वर्गों में हिन्दी साहित्य की पढ़ाई को अनिवार्य समझा और उसके लिए प्रयत्न भी किया तथा सफल भी हुए। आपने बड़े ही मार्मिक और विचार पूर्ण निबन्ध लिखे। 'गोस्वामी तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और साहित्य की महत्ता' नामक निबन्ध बाबू जी की साहित्यिक सुरुचि के साथ आपके पैने पारखीपन का भी परिचय देते हैं। इस आलोचना के क्षेत्र में आपका काफी ऊँचा स्थान है।

श्री रामचन्द्रशुक्ल जी ने तो अपने विचारपूर्ण निबंधों के द्वारा हिन्दी साहित्य के संसार में एक नये युग का ही प्रवर्तन कर दिया। गुलेरी जी के

निबंध काफी अन्वेषणपूर्ण हैं। 'पुरानी हिन्दी' पर आपका निबन्ध बहुत मौलिक है। इसकी शैली साहित्यिक और वस्तु भाषा विज्ञान से संबंध रखनेवाली है। 'हेमचन्द्र' और उनके समकालीन कवियों की अपभ्रंश-कृतियों की पांडित्य पूर्ण व्याख्या लिखकर आपने हिन्दी और प्राकृत के बीच की टूटी कड़ी का जोड़ दिया। श्री रामचन्द्रशुक्ल जी के द्वारा लिखित हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास तो अध्ययन करनेवाला और अन्वेषकों के लिए उत्तम मार्गदर्शक के रूप में आज भी उपयुक्त सिद्ध हो रहा है।

इस पूंजी पर आज के साहित्य का निर्माण हुआ है। प्रथम महायुद्ध के बाद भारत में स्वतन्त्रता का आंदोलन जोर पकड़ने लगा। इस व्यापक आंदोलन ने देश के सामाजिक और धार्मिक विचारों में भी एक महान परिवर्तन कर दिया। युगपुरुष गान्धी की वाणी में वह बल था जिससे सारा देश उस वाणी के सामने नत हो गया। ई. सन् 1918 से 1930-31 तक के समय में देश के अंदर कहीं-कहीं इस स्वतन्त्रता के आंदोलन ने उग्र रूप धारण किया था। इस क्रान्ति ने आज के नवीन साहित्य को प्रेरणा दी।

अब तक देश के प्रत्येक प्रान्त में यूनिवर्सिटियाँ खुल गयी थीं। अंग्रेजी की पढ़ाई का प्रचार काफी हो चला था। अंग्रेजी पढ़-लिखे लोगों के द्वारा अंग्रेजी के साहित्य का भी असर हिन्दी साहित्य पर पड़ा। इस समय अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित, मगर भारतीय वातावरण के अनुकूल छोटी कहानियाँ लिखी जाने लगीं, एकांकियों का सृजन हुआ, काव्यमय गद्य लिखा जाने लगा। दिनेशनन्दिनी चोरड़िया के 'शबनम' जैसे ग्रंथ, श्री वियोगी हरि के 'भावना' और 'अंतर्नाद' और राय कृष्णदास के 'साधना' और 'छाया पथ' जैसे ग्रंथ भी प्रकाशित हुए।

खादी आंदोलन, किसान आंदोलन, हरिजन आंदोलन जैसे देशव्यापी आंदोलनों के द्वारा जिन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न होता रहा, वे सब अब उपन्यासों और कहानियों की सामग्री के रूप में आये। इन्हीं पर

आधारित होकर उपन्यासो का निर्माण होने लगा। श्री प्रेमचद जी के उपन्यास ऐसी ही वस्तु पर अवलम्बित है। तात्पर्य यह कि इस समय जितने सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक आदोलन हुए और उनके द्वारा जितनी देशव्यापी समस्याएँ उठी, उन सबका समावेश साहित्य के सभी अगो मे हो गया। इसलिए इस 'साहित्य का सर्वोदय' युग कह सकते हैं।

अब तक हिन्दी मे मौलिक नाटको का अभाव खटक रहा था। सस्कृत, प्राकृत, बगला, अग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाओ के नाटको का अनुवाद तो हो रहा था, मगर हिन्दी साहित्य जगत म मौलिक नाटको का न होना सचमुच ही खटकनेवाली बात थी। इस कमी को स्व जयशकरप्रसाद जी ने दूर किया। आपने स्कदगुप्त, चद्रगुप्त, अजातशत्रु आदि कई ऐतिहासिक नाटको की रचना की। इससे हिन्दी का ही सिर ऊँचा नही हुआ, बल्कि भारतीय आत्मा का गौरव भी बढा। इस तरह के मौलिक नाटको के प्रकाशन के बाद सामयिक समस्याओ को लेकर कइयो ने नाटक लिखे। गोविंददास और हरिकृष्ण प्रेमी ने इस तरह के कई नाटक लिखे। भारतीय रगमच मे इन नाटको के अभिनय के लिए उपयुक्त परिवर्तनो की आवश्यकता थी। रगमच म आवश्यक परिवर्तनो के लाने का काम आरभ हुआ। इसी समय फिल्म कपनियो ने नाटक ससार के बढते हुए उत्साह पर पानी फेर दिया। तीन, चार या पाच अकोवाले लबे नाटको की जगह छोटे और चुस्त सभाषणोवाले एकाकियो का निर्माण आरभ हुआ। डॉ रामकुमार वर्मा, सेठ गोविंददास, अश्क और उदयशकर भट्ट ने बडे ही सुदर समस्या प्रधान एकाकी नाटक लिखे। आज हिन्दी नाटको पर जार्ज बर्नार्डशा जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य नाटककारो का भी काफी प्रभाव है। आज तो हिन्दी मे एकाकियो की बाढ-सी आ गयी है। नभोवाणी के भिन्न भिन्न केन्द्रो मे प्रस्तुत किये जानेवाले लघुनाटक एकाकी नाटको का आज का एक नया स्वरूप है।

आज केवल नाटक ही नही कहानी, आलोचना, उपन्यास, कविता आदि सभी साहित्यिक और साहित्येतर क्षेत्रो म भी हिन्दी काफी प्रशसनीय

उन्नति कर रही है। इधर सन 1947 अगस्त के बाद तो हिन्दी के गद्य ने एक नयी दिशा की ओर कदम बढाया है। राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ हिन्दी म आज सभी भारतीय साहित्य संपन्न भाषाओं का ज्ञान विज्ञान उपलब्ध होने लगा है। इसी उद्देश्य स प्रेरित होकर कई पत्र-पत्रिकाएँ भी निकल रही है।

हिन्दी गद्य-साहित्य की भिन्न-भिन्न शाखाओं ने काफी पुष्ट होकर वर्तमान उन्नत रूप धारण किया है। आज कोई ऐसी राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय भावना नहीं जो हिन्दी मे प्रतिबिंबित न होती हो।

साक्षरता आन्दोलन, सविधान म हिन्दी का राजभाषा के तौर पर ग्रहण और विश्वविद्यालयों म हिन्दी का माध्यम—ये सब हिन्दी गद्य साहित्य की व्यापकता और गम्भीरता के लिए गतिदायक है। अब इसको इस देश की सामासिक सस्कृति मात्र की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनना ही नहीं है बल्कि सारे देश के जन-जीवन के सब पहलुओं की अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल भी बनना है। यह हमेशा से यही कार्य करती आयी और आगे भी करती रहेगी, ऐसी आशा है।

पी वेंकटाचल शर्मा

कौन-कौन

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार—श्री विद्यालंकार जी अपने भारतीय इतिहास के अनुसंधान कार्य के द्वारा पाठकों से परिचित हैं। आपका साहित्यिक जीवन ही प्राचीन भारत के ऐतिहासिक तत्त्वों के अनुसंधान कार्य से आरंभ होता है। अंग्रेजी राज्य के समय भारतीय इतिहास के के अनुसंधान के द्वारा ज्ञात सत्यों का प्रकाशन करने के कारण आपको कारावास की भी प्राप्ति हुई थी। इस कारावास से मुक्ति पाने के बाद आपने अपना वह अनुसंधान-कार्य पुनः जारी रखा जो अब भी जारी है। समय समय पर उक्त विषय की जानकारी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा जनता को देते रहते हैं।

भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भारत भूमि और उसके निवासी, इतिहास प्रवेश आदि आपके ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

आप विषय को बड़े सुंदर ढंग से सजाकर मुहावरेदार भाषा में लिखते हैं। प्रस्तुत संग्रह में जो लेख दिया गया है उसे पढ़कर पाठक समझेंगे कि आपके विचार कैसे हैं, और हमें इतिहास क्या बताता है, तथा इससे हमें कौन-सी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रस्तुत लेख 'भारतीय इतिहास में साम्प्रदायिक विष' हमें यह बताता है कि मानव-मानव में भिन्नता पैदा करनेवाली गुटबन्दियों ने किस तरह से एक सुसंस्कृत देश को गहरे गर्त में गिरा दिया है। ये विभिन्न दल अपने अलग अलग संप्रदाय चलाकर विभिन्न संस्कृतियों की समन्वित धारा को रोककर देश को कैसे कमजोर बना दिया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा—श्रीमती महादेवी जी ने एक बार देहली में संपन्न कवि सम्मेलन की सभानेत्री के पद से कहा था—'कवि के पास एक व्यावहारिक बाह्य संसार है, दूसरा कल्पना-निर्मित आंतरिक। परन्तु, वे दोनों

परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे की पूर्ति करते रहते हैं। एक कल्पना पर यथार्थता का रंग चढ़ाकर उसमें जीवन डालता रहता है, तो दूसरा वास्तविकता की कुरूपता पर अपनी सुनहली किरण डालकर उसे चमका देता है।'

हम लोग जिस प्रकार अपने असह्य दुख को भी एक मधुर गान का रूप दे देते हैं, उसी प्रकार देवी जी ने भी अपने हृदय की व्यथाओं को भाषा की रंगीन साड़ी पहनाकर उन्हें मधुर और आकर्षक बना दिया है। प्रस्तुत कहानी बदलू कुम्हार 'एक शब्द' चित्र है जिसके द्वारा देवी जी ने श्रमजीवी कार्मिक परिवार की दशा का सुंदर व प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया है। परिवार की दयनीय दशा का इतना मार्मिक व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है कि पाठक पढ़कर थोड़ी देर के लिए दिल थाम रह जाएँगे और गहरी सहानुभूति के साथ सोचने लगेंगे।

आपका गद्य भी एक कविता है। आपकी भाषा संस्कृत मिश्रित और भावानुकूल है।

देवी जी का जन्म सन् 1905 में इंदौर में एक भक्त परिवार में हुआ। सन् 1932 में प्रयाग यूनिवर्सिटी से संस्कृत लेकर आपने एम. ए. पास किया। इन दिनों आप प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधान आचार्या हैं, और आज आप उत्तर प्रदेश की विधानसभा की सदस्या भी हैं।

श्री रामनारायण यादवेन्दु—आप राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के विचारवान् लेखक हैं। सामाजिक विषयों पर आपकी विशेष अभिरुचि है। कुछ समय पहले आपने 'भारत का दलित समाज' नामक एक पुस्तक लिखी जिसपर आपको 'श्री राधामोहन पुरस्कार' मिला। 'राष्ट्रसंघ और विश्वशान्ति, समाजवाद और गान्धीवाद, भारतीय शासन विधान और औपनिवेशिक स्वराज्य' आदि पुस्तकें आपकी राजनैतिक विचारों के परिचायक हैं।

प्रस्तुत संग्रह में आपका यह लेख 'युद्ध के मौलिक कारण' बहुत विचारपूर्ण है। युद्ध-जैसे असभ्य व्यवहार, शिष्ट तथा सुसंस्कृत कहलानेवाली जातियों में क्यों होने लगता है और इसके मौलिक कारण क्या होते हैं—इन बातों का एक स्पष्ट विश्लेषण आपने इस लेख में किया है। पाठक इससे समझ सकते हैं कि ऐसे कठोर असभ्य कार्य को रोकने के लिए कौन-सी व्यवस्था उचित और संगत होगी।

आपकी भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार और शैली सुंदर है। विषय का प्रतिपादन, उसके विभिन्न पहलुओं का वर्गीकरण और उसको स्पष्ट करने की कुशलता इनके कारण विचार स्पष्ट और सुबोध हैं।

श्री राधाकृष्ण—आप बिहार के रहनेवाले हैं। अच्छे साहित्यिक और कहानीकार हैं। कुछ समय तक 'कहानी' पत्रिका के संपादक भी रह चुके हैं। आजकल आप राँची में रहते हैं और आदिवासी साप्ताहिक का संपादन कर रहे हैं।

प्रस्तुत संग्रह में आपकी एक कहानी 'अवलंब' दी गयी है। इसमें गरीबी की जिन्दगी का एक सजीव चित्रण है। जीविका निर्वाह के लिए एक कंपनी में क्लर्की करनेवाले सीताराम का, बीस रुपये मासिक वेतन पाकर घर का किराया देते हुए शहर में जिन्दगी बसर करना, और उनके बीमार बच्चों की देखरेख तथा दवादारू की व्यवस्था करते हुए उलझनों का सामना करना, आदि बातों का अत्यन्त मार्मिक चित्र कहानीकार ने खींचा है। कहानी पढ़ने पर बेचारे सीताराम और सीताराम जैसे अनेक लोगों के प्रति पाठक के हृदय की सहानुभूति सक्रिय हो उठती है।

आपकी भाषा सरस, सरल और चलती हुई होती है।

श्री जगबहादुर सिंह—आप आजकल देहली में रहते हैं। आप पहले ट्रिब्यून पत्रिका के प्रधान संपादक थे। आप बड़े ही निर्भीक विचारक, निष्पक्ष आलोचक और हिन्दी और उर्दू के अच्छे ज्ञाता हैं।

इस सग्रह म आपका एक लेख 'मुगल काल म हिन्दू मुसलिम व्यवहार और त्योहर' दिया गया है। इसको पढन से मालूम होगा कि हिन्दू मुसलिमो के बीच कैसा सबध रहा और अगर उसे वैसा ही रहने दिया होता तो आज वास्तव म भारत का विभाजन ही न हुआ होता। प्रस्तुत लेख में लेखक ने उदाहरणो के साथ यह सिद्ध कर दिखाया है कि मुगल राज्य-काल म हिन्दू-पद्धति और आचार विचार, मुसलिमो म और मुसलिम आचार विचार हिन्दुओ में, कैसे घुल मिल चुके थे, और यह आदान प्रदान राष्ट्रहित के लिए कितना हितकर साबित हुआ था।

आप हिन्दी उर्दू दोनो के अच्छे ज्ञाता होने स आपकी भाषा चुस्त, बहुत ही सुदर, मुहावरेदार और चलती हुई है।

श्री प हजारीप्रसाद द्विवेदी—श्री द्विवेदी जी एक अच्छ सुलझे हुए दिमाग के आलोचक हैं। आप जो भी लिखत हैं अधिकार के साथ लिखते है। साहित्य के मर्मज्ञ और अच्छे पारखी है। गुरुदेव रवीन्द्र के द्वारा सचालित विश्वभारती में आप कुछ समय तक रहे। साहित्य तथा सस्कृति के अविनाभाव सबध का प्रतिपादन करते हुए बहुत ही विद्वत्ता-पूर्ण ग्रथ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के नाम से आपने लिखा है। इसके अलावा आपके साहित्यिक तत्त्वानुसधान-सबधी विद्वत्तापूर्ण लेख कभी कभी पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित भी होते रहते है। आपकी पुस्तके 'कबीर, अशोक के फूल, नाथ परपरा' आदि कई ह जिनमे ऐसे उत्तम साहित्यिक व सास्कृतिक विचार प्रतिपादित हैं।

प्रस्तुत सग्रह मे 'कबीर' नामक एक लेख है। इसमे मध्ययुग के उस महान् साधक की अनुभूतियो पर आपके विद्वत्तापूर्ण विचारो का एक सुदर विश्लेषण है। आपकी 'कबीर' नामक पुस्तक से उस युग के महान् सत के विषय में जितने भ्रामक विचार फैले हुए थे, वे बहुत हद तक दूर हुए है। इतना ही नही कि उस महान साधक की सहज-वृत्ति का

सही विश्लेषण। हुआ, बल्कि उनकी सहज साधना की एक स्पष्ट रूपरेखा भी लोगों के सामने आयी।

आपकी भाषा सहज और विषयानुकूल है। शैली विद्वत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक।

श्री कमलाकान्त वर्मा—श्री वर्माजी कुछ समय तक 'विशाल भारत' के सहकारी संपादक रहे। साहित्य-सेवा आपकी 'हाबी' है, आजकल आप शाहाबाद में वकालत करते हैं। आप बड़े कला-प्रेमी, संगीतज्ञ तथा एक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक हैं।

इस संग्रह में आपकी एक कहानी 'पगडंडी' दी गयी है। आपकी यह अत्युत्तम कृति है। पगडंडी जैसी एक साधारण वस्तु को लेकर आपने बड़ी ही सुंदर शैली में दार्शनिक ढंग से एक आत्मकथा की तरह कहानी लिखी है। बहुत ही गहन और अमूर्त दार्शनिक भावों को सहज और सरल ढंग से लिखकर कहानी के क्षेत्र में एक नवीन पद्धति की आपने शुरुआत की जो इस क्षेत्र के लिए आपकी देन है। प्राकृतिक वस्तुओं का मानवीकरण कर उनसे बातचीत कराना और इस तरह की बातचीत में सहजता लाना एक विशेष कलात्मकता का परिचय देता है। बटदादा और रामी का कुआँ ऐसे लगते हैं मानो ये दोनों हमारे अत्यंत निकट के हैं।

कथोपकथन में सजीवता और दैनिक जीवन से संबंध रखनेवाली बातों का इसमें समावेश इस कहानी की जान है। इन निर्जीव वस्तुओं के द्वारा, बदलनेवाले समाज के अनेक पहलुओं की व्याख्या इस कहानी के द्वारा की गयी है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—श्री निरालाजी से शायद ही कोई हिन्दी का विद्यार्थी अपरिचित होगा। विद्यार्थी-दशा से ही आप हिन्दी साहित्यकों के संपर्क में आये। पहले ही से भावुक प्रवृत्ति के व्यक्ति होने के कारण कविता करना आपका एक सहज गुण बन गया है।

सन् 1921 में जब बेलूर के रामकृष्ण मठ में थे तब वहाँ मठ की तरफ़ से 'समन्वय' नामक मासिक पत्रिका का आपने संपादन-कार्य किया था। उन दिनों कलकत्ते से 'मतवाला' नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित होती थी जिसमें आपकी कविताएँ बराबर प्रकाशित होती रहीं। इन कविताओं का संग्रह 'अनामिका' म हुआ है। 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास' आदि आपकी अन्य काव्य-कृतियाँ हैं। 'लिली', 'सखी' आदि आपके कहानी-सग्रह है, 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' आदि उपन्यास हैं।

प्रस्तुत संग्रह में आपका एक लेख 'कला और देवियाँ' 'चाबुक' नामक निबन्ध-सग्रह से उद्धृत है। इस लेख से हमें निरालाजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रस्तुत लेख लेखक की दार्शनिक व्यावहारिकता का एक सुदर नमूना है। शिक्षा, सस्कृति और सामाजिकता की व्यापक भावना एक सीमित दायरे के अदर बन्द हो जाने से विकसित नहीं हो पाती। इनका विकास किस दिशा मे होना चाहिए और इनकी भारतीय परपरा क्या है आदि बातो की इस लेख के द्वारा निरालाजी ने स्पष्ट किया है। भारतीय सस्कृति के अनन्य भक्त निरालाजी ने भारतीय नारी जीवन को उसके सपूर्ण दार्शनिक अनुबध में देखने की कोशिश की है।

डॉ० धीरेन्द्रवर्मा एम ए, डि लिट्—आप भाषा विज्ञान तथा हिन्दी साहित्य के गभीर अध्येता ही नहीं, बल्कि भाषा शास्त्र के विभिन्न पहलुओं के विशेषज्ञ भी है। भाषा-शास्त्र तथा ध्वनि-विज्ञान के विशेष अध्ययन के लिए आप योरप भी गये थे और पैरिस विश्वविद्यालय से आपने डॉक्टरेट भी पायी।

हिन्दुस्तानी एकेडमी से आपका विशेष सबध काफ़ी अरसे से रहा है, और अब भी आप एकेडमी की तरफ से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' की सपादक मडली में हैं। आपने हिन्दी के भक्तियुग के साहित्य का विशेष अध्ययन किया है और उसपर विद्वत्ता पूर्ण लेख और पुस्तकें भी लिखी हैं। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

इस सग्रह में आपका एक लेख 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' दिया गया है। इसमें भाषा-विज्ञान के आधार पर विषय का प्रतिपादन करते हुए इन तीनों नामों के व्यवहार की विभिन्न दशाओं का विश्लेषण किया है। इन नामो के कारण जो भ्रम जनता मे फैला हुआ है उसे इस लेख के द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

आपकी भाषा परिमार्जित और विषय के प्रतिपादन मे सक्षम है।

श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'—श्री अज्ञेयजी हिन्दी के उन इने गिने लेखकों में से एक हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य में एक नयी विचार-धारा लाने की कोशिश की। आपने आतकवादी दल मे शामिल होकर साहित्य में एक नवीन सस्कृति का प्रयोग करना चाहा। इसलिए आपको कठिन कारावास भी भोगना पड़ा। इससे आपके जीवन में एक प्रतिक्रिया की भावना जगी। इसके बाद आपने कई कहानियाँ लिखीं। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'विपथगा' है। 'भग्नदूत' आदि आपकी कविताओं के सग्रह भी इसी प्रतिक्रिया के परिणाम हैं। 'शेखर एक जीवनी' आपकी एक अमर कृति है। आपकी आत्मानुभूति बहुत कोमल और परिमार्जित है।

अज्ञेयजी पैनी दृष्टि के आलोचक हैं। कुछ समय तक आपने 'विशाल भारत' का सपादन भी किया।

प्रस्तुत सग्रह में आपकी एक कहानी 'नयी कहानी का प्लाट' दी गयी है। इसमें आपकी प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इस कहानी में आपने पात्रों का चित्रण सुदर ढग से और मनोवैज्ञानिक रीति से किया है। आजकल भी ऐसे कितने ही सपादक होंगे जो भावदारिद्र्य के कारण दूसरों पर अवलबित रहते हैं। वे अपने कपोजिटर और प्रूफ रीडरो तक से इस भावदारिद्र्य को दूर करने की आशा रखते हैं। मगर इस आशा की पूर्ति उनसे हो नहीं सकती। बेचारे मियाँ लतीफ जैसे लोगों को ऐसे सपादकों का शिकार बनना पड़ता है। इस कहानी को पढ़ने से पाठक समझ सकेंगे

कि इसके द्वारा ऐसे सपादको और कपोजिटरो का कितना सुदर मनोवैज्ञानिक चित्र लेखक ने उपस्थित किया है।

श्री राजा राधिकारमण सिंह, एम ए—सन 1913 में बनारस से जब 'इन्दु' नामक पत्रिका निकल रही थी तभी आपने कहानी-क्षेत्र में प्रवेश किया था। यह वह समय था जब कि हिन्दी साहित्य मे स्व जयशकर प्रसाद जैसे साहित्यक महारथियो का उदय हो रहा था। यद्यपि राजा साहब ने बहुत नहीं लिखा तो भी जो कुछ लिखा वह हिन्दी साहित्य की निधि के रूप में सुरक्षित है। 'राम रहीम' आपका एक सुदर और बृहत् उपन्यास है।

आप एक गद्य-कवि हैं। आपकी कहानियों की भाषा एकदम काव्य की भाषा है। बडी स्पष्टता से हृदय को विभोर करनेवाली भावव्यजना आपकी शैली मे रहती है। भाषा में ओज और माधुर्य का सुदर समन्वय है।

प्रस्तुत सग्रह में आपकी एक बड़ी सुदर हास्यरस-प्रधान कहानी 'निगोड़ी नींद' दी गयी है। शिष्ट हास्यपूर्ण यह कहानी एक थके हुए मन के लिए टानिक सी है। इस कहानी की भाषा बड़ी चुस्त और मुहावरेदार है। यद्यपि कहानी का विषय बहुत मामूली है तो भी एक बहुत बड़े सामाजिक तत्त्व का मार्मिक विवेचन इसमें हुआ है, और पूरी कहानी पढ चुकने के बाद पाठक के हृदय में समाजवादी भावों की एक प्रतिध्वनि गूज उठती है।

डॉ रामकुमार वर्मा—हिन्दी में श्री भारतेन्दुजी ही प्रथम नाटककार हुए। प. बद्रीनाथभट्ट प्रहसनों के लेखक हुए। भारतेन्दुजी के नाटकों में एक उद्दाम हलचल है तो श्री बद्रीनाथ भट्ट के प्रहसनों मे हँसा हँसाकर लोटपोट करा देनेवाली ताकत है। श्री प्रसादजी ने बहुत ऊँचे दर्जे के लबे साहित्यिक नाटक लिखे और साथ ही 'एक घूट' नामक एक एकाकी भी लिखा। इसके बाद हिन्दी में एकाकियों का लिखना आरभ हुआ।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी कुछ एकाकी नाटक लिखे। 'पृथ्वीराज की आँखे' और 'रेशमी टाई' दो एकाकियो के सग्रह प्रकाशित हुए और ये काफी लोकप्रिय भी है। एकाकियो के लिखने म श्री वर्माजी की अपनी ही एक विशेषता है और टेकनिक भी वर्माजी की अपनी है।

प्रस्तुत सग्रह में 'दस मिनिट' नामक एक एकाकी दिया गया है। यह एक साधारण सामाजिक घटना है जिसमें एक भाई बहन के सतीत्व की रक्षा करता है। उसका एक मित्र उसे कारागार जाने से बचाता है। बस, यही घटना है। मगर यह एकाकी बडा ही रोचक है, और आकर्षक शैली में रगमच पर खेलने लायक़ बन पडा है। इसमें पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण बडी सफलता के साथ हुआ है।

श्री रामचद्र शुक्ल—श्री शुक्लजी के बारे में लिखना सूरज को दीपक दिखाना है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों का अध्ययन श्री शुक्लजी की शरण लिये बिना अधूरा माना जाएगा। आपका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' एक अद्वितीय ग्रथ है। इसके आधार पर कइयों ने 'साहित्य का इतिहास' लिखा। मगर आपकी अपनी एक विशिष्ट शैली है। आपके हर वाक्य में शब्द नपे-तुले होते हैं। आप ऐसी पैनी दृष्टि के आलोचक हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव भी आपके ध्यान से उतरते नही। ऐसे सूक्ष्म भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में आप बडे ही पटु हैं।

प्रस्तुत सग्रह में 'तुलसी की भावुकता' नामक एक लेख दिया गया है। इस लेख से पाठकों को शुक्लजी की शैली का परिचय मिल जाता है। श्री शुक्लजी अध्यापक तो रहे ही। इस लेख से आपकी अध्यापक वृत्ति का तथा आपके व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता है। पाठकों को हिन्दी के उस महान कवि तुलसी की भावुक प्रकृति का सुंदर परिचय इस लेख के द्वारा आपने कराया है। श्री गोस्वामीजी की भावुकता का परिचय देने के लिए आपने रामचरित मानस से निम्न-लिखित भाग चुने हैं:— राम का वन-गमन,

रास्ते में ग्रामीण वधुओ की सीता से भेंट, भरत-मिलाप (चित्रकूट में), शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन घटनाओ का बहुत ही मार्मिक वर्णन श्री गोस्वामीजी ने किया है। श्री शुक्लजी ने इन घटनाओ को सुबोध और सुदर शैली में समझाया है।

श्री जयशंकर प्रसाद—श्री प्रसादजी कवि, निबन्धकार, कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार हैं। कामायनी आपकी कविकृति का शिरोमणि है। 'काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध' आपके उत्तम साहित्यिक निबन्धों का एक सग्रह है। आकाशदीप, इन्द्रधनुष, आधी आदि आपकी कहानियों के सग्रह हैं और कंकाल और तितली आपके उपन्यास।

कहानीकार प्रसाद की कहानियों में एक निष्फल यौवन, एक करुण प्रणय, एक दर्दीली स्मृति के चित्र भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रित होते रहते हैं। आपकी कहानियों को हम एक प्रकार से प्रेमपूर्ण कथात्मक गद्य काव्य कह सकते हैं। इन कहानियो में घटना और चरित्र प्रधान न होकर भाव प्रधान होता है। प्रेमचद और प्रसादजी की कहानियो में अतर इसी बात में है कि प्रेमचन्दजी घटना-प्रधान सामाजिक चित्र के शिल्पी हैं तो प्रसादजी मानसिक उद्भावना के चितेरे।

प्रस्तुत सग्रह में 'पुरस्कार' नामक आपकी एक कहानी दी गयी है। यह भावप्रधान है। वैदिक काल में विजेता राजा पराजित राजा के राज्य में विजय-प्राप्ति के बाद प्रथम बार वर्षा होते ही खेत जोतकर उस राज्य के एक प्रतिष्ठित परिवार की कुमारी के हाथ से बीज लेकर बोया करता था। यह एक प्रथा चल पडी थी। ऐसे ही कृषि-महोत्सव को सपन्न करनेवाले कोशल नरेश को इस बार बोने के लिए बीज देने की बारी वारणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की कन्या मधूलिका की थी। इस कार्य को सपन्न करते समय राजकुमार अरुण प्राप्तवयस्का मधूलिका के यौवन से आकृष्ट हुआ और पीछे चलकर

कोशल का शत्रु बना। उसके शत्रु बनने का रहस्य मधूलिका के द्वारा खुला। मधूलिका भी अरुण से प्रेम करती थी, मगर अपने राज्य के शत्रु को पहचानकर भी चुप रहना वह देशद्रोह समझती थी। उसने अपने उस प्यारे राजकुमार को देश के शत्रु होने के कारण राजा के सुपुर्द कर दिया। राजकुमार अरुण को मृत्युदण्ड मिला। मधूलिका भी अपने राजा से मृत्युदण्ड की भिक्षा माँगकर राजकुमार अरुण से जा मिली।

देश और व्यक्ति, प्रेम और देशद्रोह—यह द्वन्द्व कितना मर्मस्पर्शी है। मधूलिका का स्वतन्त्र व्यक्तित्व और उसका मनोबल प्रशंसनीय है।

श्री रामनाथ सुमन—श्री सुमनजी 'त्यागभूमि' की संपादक-मंडली में रहे। आप व्यक्तियों के शब्द-चित्र लिखने में सिद्धहस्त हैं। आपने कई सामाजिक विषयों पर पुस्तकें लिखी हैं। आपकी 'नारी जीवन' 'कुछ समस्याएँ' 'भाई के पत्र', 'आनंद निकेतन', 'हमारे नेता और निर्माता' आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

प्रस्तुत संग्रह में मौ० अबुल कलाम आजाद का एक शब्द-चित्र है। इस चित्र में मौ० आजाद के व्यक्तित्व के विकास की परंपरा का अच्छा परिचय है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली बात इस '*ग्रैण्ड मोगल माइण्ड*' के विषय में कैसा चरितार्थ हुआ है, यह हमें बहुत अच्छी तरह मालूम होता है। जीवन के विभिन्न पहलुओं का यह एक सुंदर विश्लेषण है।

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र—आप आजकल मिथिला कालेज, दरभंगा, के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। आप 'भारतमित्र,' 'राष्ट्रबन्धु' आदि पत्रों के संपादक रहे और 'हिमालय' मासिक पत्र का भी संपादन कुछ समय तक किया। समय समय पर आप साहित्यिक और सामाजिक लेख पत्र पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं। आपकी 'साहित्य की वर्तमान धारा' नामक सामयिक साहित्य पर एक विचारपूर्ण पुस्तक हाल में प्रकाशित हुई है।

प्रस्तुत संग्रह में आपका 'कर्म और वाणी' नामक एक लेख दिया गया है। यह बापू और गुरुदेव रवीन्द्र इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन है। ये दोनों व्यक्ति देश, काल और वर्तमान से परे हैं। इन दो समकालीन महाव्यक्तियों के विचारों का और कार्यक्रमों का एक सूक्ष्म अनुशीलन इस लेख में पाठक को मिलेगा। कर्मरूप बापू और वाणीरूप रवीन्द्र—इन दोनों का तर्कसंगत रीति से विश्लेषण मनोहारिणी शैली में श्री मिश्रजी ने किया है।

* * *

हमें खेद है कि श्री अख्तर हुसेन 'रायपुरी' का परिचय नहीं दे सके। इस संग्रह में 'मेरा घर' नामक आपकी कहानी संगृहीत है। यह 'मेरा घर' वास्तव में घर का नहीं बल्कि हमारे समाज का ही एक चित्र है। रायपुरीजी की इस कहानी में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं। मानव कितना अमानुषिक और असभ्य व्यवहार करता है, और इस तरह के व्यवहार से मानवता का विकास होना कितना असंभव है, इसका एक सुंदर व्यंग्य इस कहानी में चित्रित है।

भारतीय इतिहास में सांप्रदायिक विष

श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार

इतिहास की शिक्षा प्रत्येक राष्ट्र के जीवन की एक आवश्यक प्रक्रिया है। क्योंकि अपने इतिहास की स्मृति ही राष्ट्र की आत्मानुभूति है, (अपने पुरखो को अपना समझकर याद करना और उनकी चरित-चर्चा में जी का लगना—राष्ट्रीय चैतन्य का 60 फी सदी यही तो है।) "न हि तृप्यामि पूर्वेषां श्रृण्वानश्चरितं महत्" (पूर्वजों के महान् चरित को सुनता हुआ मै नही अघाता)—महाभारतकार ने ये शब्द जनमेजय के मुँह से कहलाये है, (पर इनमें जीवित राष्ट्रो के प्रत्येक बच्चे के दिल की सच्ची तस्वीर खीची है।) यह कोई व्यामोह नही है, मिथ्याभिमान नही है, यह स्वस्थ मानव-मन की सर्वथा सहज प्रवृत्ति है। क्योंकि, जैसा कि सर यदुनाथ सरकार ने कहा है, ("हम (अपने) ऐतिहासिक अतीत के जीवित अवतार है, वह अतीत हमारे खून और हमारी हड्डियो में, हमारे विचार और विश्वास में व्याप्त हे,") उसके लिए खिंचाव न अनुभव करना ही बीमारी का चिह्न है। वह राष्ट्रप्राणी के जीवन में वैसी ही बीमारी है जैसे किसी शोकोन्माद के रोगी का अपने जीवन से ऊबे रहना।)

आज संसार के अनेक राष्ट्रों में अपने पूर्वचरित के लिए इस खिंचाव का अर्थ हो गया है अपने पडोसी राष्ट्र के पूर्वचरित से

घृणा करना। (इतिहास इस प्रकार लिखे जाते है और बच्चों को इस प्रकार पढ़ाये जाते है कि जिससे जहाँ उनके मन में अपने राष्ट्र के लिए उत्कट प्रेम जागे, वहाँ पड़ोसी के लिए उत्कट घृणा भी भडक उठे।) इसीसे इतिहास की शिक्षा एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या हो गयी है।

परन्तु हमारे भारत की समस्या बिलकुल दूसरी ही है। यहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखको ने काल को भी फिरकेवार बाँटने की कोशिश की है, और उनके अन्ध अनुयायियो ने इस बँटवारे को सनातन सत्य मान रखा है। इतना ही नही, जिस रूप में हमारे बच्चो को इतिहास पढाया जा रहा है, उसका फल यह है कि हिन्दू आज भी महमूद की बुतशिकनी को या औरंगजेब की अदूरदर्शिता को माफ करना नही चाहता और मुसलमान आज भी प्रताप या शिवाजी के 'विद्रोह' को दिल से भूलने को तैयार नही होता। हिन्दू को 'हिन्दू-इतिहास' ही अपना जान पड़ता है और मुसलमान को प्राचीन भारत का नाम भी ज़बान पर लाना दूभर लगता है। उसे शाम, फिलिस्तीन और आफ्रिका में 'इस्लामिक इतिहास' की सरणि अधिक रुचिकर लगती है। (अपने पुरखों की स्मृति का भी हम उसी प्रकार बँटवारा करना चाहते है जैसे झगडालू भाइयो ने विरासत में मिली दासी का किया था।)

इस मन स्थिति का परिणाम यह है कि 5-6 बरस की आयु से ही हमारे बच्चो की शिक्षा के रास्ते अलग-अलग हो

जाते है और तभी से उनके मनो में पारस्परिक घृणा के बीज बोये जाने लगते है। (यो सांप्रदायिक द्वेष का विष हमारी राष्ट्रीयता के पेड़ को जड तक मारे जा रहा है।)

(साम्प्रदायिक रग में इतिहास का जो चित्र खीचा गया है, वह वस्तुत असत्य पर निर्भर और असत्यमय है।) (हमारी अकर्मण्यता और उपेक्षा ने साम्राज्यवादियों को वह मौका दे दिया जिससे साम्प्रदायिक रग की धूल उडाकर वे हमें गुमराह किये हुए है, और उस रग का नशा इतना मोहक बन गया है कि हममें से अनेको का अब उसे छोडने को जी नही करता।) दूसरे, आलस्य और अकर्मण्यता की थपकियाँ हमें मीठी नीद सुलाये हुए है, और बने हुए रास्ते को तोडकर नया बनाने की मेहनत हमें दूभर लगती है। (अप्रिय सत्य को सुनना और मान लेना तथा अपने पुराने पोषित विचारो को त्याग देना रुचिकर नही होता। हमारे युग के महान् नेता ने राजनीति को भी सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलाना चाहा है। लेकिन सत्य के रास्ते पर सदा गुलाब नही बिछे रहते। अहिंसा का दूसरा नाम सहिष्णुता है। सत्य की रोशनी और सहिष्णुता का पानी लेकर यदि हम इतिहास के पथ को साफ करने का श्रम कर सके तो साम्प्रदायिक विष की धूल बहुत जल्द बैठ जाय।

महमूद गजनवी हमारे इतिहास में एक ऐसा चरित्र है जिसकी स्मृति आज भी उत्तेजनाजनक समझी जाती है। उसके जीवन का कार्य हिन्दू राज्यों को लूटना और मन्दिरो को तोडना

बताया गया है। महमूद अफगानिस्तान के लिए, जो कि इतिहास में भारतवर्ष का एक प्रान्त रहा है, एक विदेशी था। विदेशी आक्रान्त के रूप मे उसने अफगानिस्तान, पजाब और सिन्ध को जीता। राजनीतिक नक्शे पर जब हम उसके इतिहास की घटनाओ को अकित करते है तो वह निरा लुटेरा नही निकलता। उसकी चढाइयो में एक स्पष्ट योजना है और वह अपने साम्राज्य को क्रमश बढाता है। कलमे के सस्कृत अनुवादवाले उसके सिक्के मिले है, जिनके लेख का पाठोद्धार रायबहादुर काशीनाथ दीक्षित ने किया है। उनपर 'लाइलाह इल्लिलाह मुहम्मद रसूल इल्लाह' का अनुवाद किया गया है, 'अव्यक्तमेकम् मुहम्मद अवतार।' प्रकट है कि इस्लाम के अल्लाह और वेदान्त के अव्यक्त की एकता पहचान ली गयी थी और रसूल और अवतार की कल्पनाएँ भी एक है—यह समझ लिया गया था। क्या यह हिन्दुत्व और इस्लाम के समन्वय का—इस्लाम के भारतीय बनने का आरम्भ नही है?

मन्दिर तोडने की बात विचारणीय है। मध्यकाल में भारत-वासियो की विचार-प्रगति रुक जाती है और ज्ञान, सस्कृति, राजनीति आदि किसी भी दिशा में आगे बढना वे छोड देते है। परिणाम यह होता है कि अपनी फालतू पूँजी का कोई नया उपयोग उन्हे नही सूझ पडता। देश समृद्ध था और मन्दिर-रचना की कला में ही उसकी सब फालतू पूँजी लग रही थी। वह कला भी अवनति-मुख थी, सुन्दर कल्पना का स्थान उसमें आभूषण ले रहा था।

मन्दिर देश में उचित से कहीं अधिक बन रहे थे, उनमें देश की लक्ष्मी सचित होती थी, किन्तु उस लक्ष्मी की रक्षा करने की शक्ति उसके मालिको में क्रमश क्षीण हो रही थी। इस दशा में किसी न किसी राज्य-परिवर्तन में उनका लुटना अवश्यंभावी था। महमूद से सौ बरस आगे पीछे दो हिन्दू राजा हुए जिनमें से एक ने मदिरो की जायदादें जब्त की और दूसरे ने एक 'देवोत्पाटना नायक' (मन्दिर उखाडनेवाला अफ़सर) नियुक्त किया। इस नायक का काम था मन्दिरो को चुपके से भ्रष्ट करा देना और बाद में जब्त कर लेना। इस प्रकार मन्दिरो का बहुत बनना और पीछे हटना केवल आर्थिक और सामाजिक इतिहास की दो करवटे मात्र थी। उन्ही आर्थिक और सामाजिक प्रवृत्तियो से महमूद की फालतू पूँजी से गजनी में महल और मस्जिदें बनी और उनकी भी गोरियों के हाथ वही गति हुई जो महमूद के हाथ सोमनाथ की हुई थी।

और यदि महमूद न आता, यदि कोई और क्रान्ति भी न होती, तो भी क्या वे मन्दिर बचे रहते? हिन्दुओ की जिस निद्रालुता के कारण वे सरहद्दी लुटेरो से न बच सके, क्या उसके रहते वे घास और दीमको से बच सकते? क्या जनता की पीठ उन्हे बनाये रखने का बोझा ढोती रह सकती? हम यह भूल जाते है कि पुराने मन्दिरो के नष्ट होने का सबसे बडा कारण यही है। आज चित्तौड में आकर देखिये, राजा भोज के मन्दिर से चमगीदडो की गन्ध कैसे दूर तक उडती है। जहाँ हैदराबाद में अजन्ता के एक-एक

चित्र को बचाने का कोई उपाय बाकी नहीं छोड़ा जाता, जहाँ भोपाल दरबार साची के स्तूप को अपने महलों की तरह झकाझक रखता है, वहाँ चित्तौड में सुन्दर कला के अनोखे नमूने ईंटों के मलबे में दबे नष्ट हो रहे है, और उदयपुर सग्रहालय मे दीवारो के सहारे पडे शिलालेखो पर भी दीवारों के साथ ही सफेदी पोत दी जाती है। आज बिहार के किसानो से पूछिये—क्या उनकी पीठें अपने मन्दिरों और मस्जिदो की जमीदारियो का बोझ आराम से ढो रही है? आर्थिक प्रवृत्ति क्या आज फिर एक करवट बदलनेवाली नहीं है?

अधपढ़ पडितो की एक और पुकार प्रसिद्ध है— मुसलमानों ने मन्दिर तोड-तोडकर हिन्दू कला को नष्ट कर दिया। वे यह नही जानते कि हिन्दू कला का दम जब बँधी परिपाटी की बेहूदगियों, बाह्य भूषा की बारीकियो और ऊँची कल्पना के अभाव से घुट रहा था, तब इस्लाम ने नयी कल्पना देकर उसकी आत्मा को बचा लिया। जौनपुर, पाडुआ, माडू और अहमदाबाद में कला के जो नमूने इस युग के मिलते है, उन्हें मुस्लिम कला कहना फिजूल और भ्रमजनक है। वह भारतीय कला का केवल एक नया पहलू है। वे उन्ही पुराने कारीगरो की कृतियाँ है, अहमदाबाद की मस्जिदो में तो वही पुराने कमल आदि के सकेत भी मौजूद है। लेकिन उस कारीगरी में इस्लाम ने एक नयी जान फूँक दी है। मेरे कहने का कोई सांप्रदायिक मुस्लिम यह अर्थ न लगा ले कि इस्लाम में कला को उज्जीवित करने की कोई त्रैकालिक शक्ति है।

उस युग में थी, आज बुझ चुकी है। इतिहास की कोई उपज सनातन नहीं हो सकती। हमें सदा प्रगतिशील होना चाहिए, किसी भी वाद को हम सनातन सत्य मानकर चिपटे रहेंगे तो पिछड जाएँगे, यही इतिहास की शिक्षा है।

महमूद के बाद शहाबुद्दीन गोरी ने मुस्लिम राज को पजाब से सारे उत्तर भारत तक पहुँचा दिया। गोरी के नागरी सिक्के काफी तादाद में मौजूद है जिनपर लक्ष्मी या वृषभ की मूर्तियाँ अंकित है। यदि शहाबुद्दीन गोरी का उद्देश्य इस्लाम को फैलाना ही था तो इन सिक्को का अर्थ क्या है?

गोरी ने अजमेर और कन्नौज के हिन्दू-राज्य दहपट कर दिये, पर गोरी न आता तो उनकी क्या दशा होती? चेदि के उदाहरण से हम अन्दाज कर सकते है। चेदि का राज्य 11 वी 12 वी सदियो में बडा समुन्नत और समृद्ध था, उसकी राजधानी त्रिपुरी थी। उस राज्य पर कोई मुस्लिम हमला नही हुआ, पर 13 वी सदी के शुरू में वह आप से आप टूट जाता है, केन्द्र की राजशक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है और जगह-जगह लोग सिर उठा लेते है। ऐसी दशा में अनेक मन्दिरो का धन भी क्या स्थानीय लुटेरो के हाथ न पडा होगा?

जावा का बिल्वतिक्त साम्राज्य बृहत्तर भारत का अन्तिम हिन्दू राज्य था जिसे रानी जयविष्णुवर्धिनी की महत्वाकाक्षा ने साम्राज्य का रूप दे दिया था। यह समझा जाता था कि उसे मुसलमानो की कृतघ्नता ने नष्ट किया, पर अभिलेखो से अब यह

सिद्ध हुआ है कि यह भी इसी प्रकार आप से आप टूटा और उसके बाद मुस्लिम राज्य वहाँ स्थापित हुआ।

महाराणा कुंभा के अभिलेख में यह बात दर्ज है कि उसने नागोर की मस्जिद को जमींदोज कर दिया। क्या कुंभा इस्लाम का शत्रु था? अपने पड़ोस के दो मुस्लिम राज्यों को परास्त करने के बाद उसने चित्तौड़ में कीर्तिस्तंभ बनाया। उसमें जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियाँ है, वहीं उनके साथ पत्थर में 'अल्लाह, अल्लाह' भी खोदा गया है। क्या इससे सूचित नहीं है कि उसने अपने राज में इस्लाम को स्थान दिया था? तब दोनों बातों का समन्वय कैसे है? समन्वय यह है कि नागोर के उच्छृंखल सामन्त के दमन के लिए उसे अधिक से अधिक कड़ाई दिखाने की जरूरत थी और एक बार यह बता देना आवश्यक था कि राजनीतिक जरूरत होने पर वह कहाँ तक जा सकता था और मस्जिद में भी कोई जादू न था। सिक्ख-इतिहास की कई परस्पर विरोधी दीखनेवाली प्रवृत्तियों की भी यही व्याख्या है।

औरंगजेब की बहक के लिए क्या आज केवल हिन्दुओं को खेद होना चाहिए? क्या आज के भारतीय मुसलमान उसकी करनी की याद से भीतर-भीतर खुश होते है? उसके अपने समय में उसके ससुर ने उसका प्रतिवाद किया, उससे लड़ा और मारा गया; उसकी बेटी और बेटों ने कैद और निर्वासन के कष्ट उठाये। वे सभी उसके अकबर की नीति को छोड़ देने को गलत मानते थे। जिस

समय भारत के तट के पास हाजी जहाजो की दौलत और सैयद स्त्रियो की इज्जत अंग्रेज डाकुओ के हाथ लूटी जा रही थी, उसी समय औरंगजेब का हिन्दुओं से लडने में साम्राज्य की शक्ति नष्ट करना क्या ऐसा काम था जिससे किसी मुसलमान को खुशी हो सकती है? अगर होती है तो वह निरी जडता है।

और उसकी अदूरदर्शिता के बारे में हम चाहे जो कहें, उसके अदम्य सकल्प, उसकी तत्पर कर्तव्यनिष्ठा, उसकी सजग सचेष्टता, उसकी अथक शक्ति और उसकी निष्कलंक सच्चरित्रता की तारीफ क्या मुसलमानो के साथ-साथ हिन्दू भी नही कर सकते? हमारे बच्चे दृढ चरित्र के उस नमूने को भूल जायें और तीसमारखाँ दाराशिकोह का नाम रटा करें, इससे कोई नैतिक लाभ नही हो सकता।

औरंगजेब की तरह बालाजीराव पेशवा की अदूरदर्शिता के लिए भी आज हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ खेद कर सकते है। अंग्रेज जब बंगाल और तमिलनाड में मराठो के मुँह का कौर छीनते जा रहे है, अब्दाली और नजीब जब उससे समझौता करने की मिन्नत कर रहे है, तब भी वह पंजाब वापस लेने की जिद नहीं छोड़ता। अब्दाली की एक चढाई से लाभ उठाकर क्लाइव बंगाल जीत लेता है, उसकी दूसरी लडाई मे मराठो को फँसा देखकर तमिलनाडु पर एकाधिपत्य कर लेता है। मराठो और रुहेलों के परस्पर लड़ते रहने से भारत की आधुनिक गुलामी का आरम्भ होता

किन्तु जहाँ हमें इस अदूरदर्शिता के लिए खेद होता है, वहाँ हम यह भी नहीं भूल सकते कि कावेरी से चेनाब तक और कटक से काठियावाड तक भारत की एकता और स्वाधीनता के लिए इस युग मे यदि कोई जान लडा रहा था तो वे मराठे ही थे।

और, मराठो और रुहेलों से यह समझ की गलती चाहे जैसी हुई हो, पर जब वे लडे तो मर्दों की तरह लडे। जब उन्होंने परिस्थिति को समझा और अपनी गल्ती को पहचाना तो मर्दों की तरह खुले दिल से उस गलती का प्रायश्चित्त किया। आज की तुच्छ साम्प्रदायिक किचकिच में, जो सन् 1858 के बाद से साम्राज्यवादी शक्ति ने दोनों पन्थो के स्वार्थी या बहकनेवाले लोगों को खरीद और बहकाकर पैदा की है, अनेक बार कुछ कागजी पहलवान 'मराठों और रुहेलो की लड़ाई का स्वाग किया करते है। वे यह भूल जाते है कि जहाँ तक शिवाजी और बाजीराव के वंशजों का वास्ता है, वे अपनी गल्ती को अपने खून से धो गये। नानासाहब और अजीमुल्ला, लक्ष्मीबाई और हजरतमहल, बख़्तख़ाँ और तात्या टोपे का एक साथ अपनी आहुति देना, अहमदशाह को बचाने के लिए नाना का लपककर पहुँचना और तात्या टोपे का साथ देने के लिए शाहजादे फरोज का भागकर आना, बहादुरशाह और बहादुरख़ाँ का गोवध बंद करने का फरमान निकालना और जिन रुहेलो और अवधवालो से लडते रहने के कारण अपनी स्वाधीनता के नाश का बीज बोया गया था, उन्हीके देश में उनके

लिए जान देते हुए पेशवा के अन्तिम वंशधर का अन्तर्धान होना—मराठा नाटक का यह अन्तिम पटाक्षेप क्या हिंदू-मुस्लिम विद्वेष का संदेश देता है ?

सत्य की तलवार और सहिष्णुता की ढाल लेकर यदि हम अपने इतिहास के गहन पथ में उतरते है तो हमें कही भी द्वेष के भूत नही दिखायी देते । वे तभी उमडने लगते है जब सत्य को छिपाया जाता है । प्राचीन भारत के विषय में विद्वानो ने जो सत्य खोज निकाले हैं, हमारे सयानों का इशारा यह रहता है कि उन्हें बच्चो की पाठ्यपुस्तको में न लिखा जाय ।

पीपल की डालो के लिए आज कितनी परेशानी होती है । सत्य यह है कि प्राचीन हिन्दू अपने यज्ञो के लिए पीपल की समिधा खास तौर से काटकर जलाते थे । जब गया का एक पीपल बोधिवृक्ष बन गया तब से पीपल की इज्जत बढ गयी, और जब राजा शशांक ने उस बोधिवृक्ष को उखाड फेका, शायद उसके बाद से ही उसकी शहादत की याद में उसकी समूची बिरादरी अवध्य करार दी गयी । गोवध को लेकर आज हमारे देश में कितनी खूनखराबी होती है ! ऐतिहासिक सत्य यह है कि पहले-पहल भारशिव या वाकाटक युग से गोवध को पाप माना जाने लगा है । साची स्तूप की वेदिका के एक खभे पर तीसरी शताब्दी के अक्षरों में एक लेख है जिसमें पहले पहल हमें गोवध के पाप होने की बात मिलती है ।

बदलू कुम्हार

श्रीमती महादेवी वर्मा

बदलू अपने बेडौल घडो का निर्विकार निर्माता भी था और अष्टावक्र जैसी रूप-रेखावाले बच्चो का निश्चिन्त विधाता भी। न कभी निर्जीव मिट्टी की सजीव विषमता ही उसका ध्यान आकर्षित कर सकी और न सजीव रक्त-मास की निर्जीव कुरूपता ही उसकी समाधि भग करने का सामर्थ्य पा सकी।

मैने उसे सदा एक ओर कच्चे, पक्के, टूटे, पूरे बर्तनो के ढेर से और दूसरी ओर मैले-कुचैले, नगे, दुबले बच्चो की भीड से घिरा हुआ ही देखा। जैसे मिट्टी के बर्तन कुछ सुखाने, कुछ पकने और कुछ उठाने-रखने मे टूटते रहते थे, उसी प्रकार बच्चे भी कुछ जन्म लेते ही, कुछ घुटनों के बल चलते हुए और कुछ टेढे-मेढे पैरो पर डगमगाकर माता-पिता के काम मे सहायता देते हुए चल बसते थे। पर कभी उनके जन्म या मृत्यु के सम्बन्ध मे बदलू को सुखी या दुखी देखना सम्भव न हो सका। बदलू का चित्र खीच देना किसी भी चित्रकार के लिए सहज नही, क्योकि वह ऐसी परस्पर विरोधिनी रेखाओ में बँधा था कि एक को स्पष्ट करने में दूसरी लुप्त होने लगती थी।

उसकी मुखाकृति सांवली और सौम्य थी, पर पिचके गालो से विद्रोह करके नाक के दोनो ओर उभरी हुई हड्डियाँ उसे

कंकाल-सहोदर बनाये बिना नहीं रहती । लम्बा इकहरा शरीर भी कभी सुडौल रहा होगा, पर निश्चित आकाशी वृत्ति के कारण असमय वृद्धावस्था के भार से झुक आया था । उजली छोटी आँखे स्त्री की आँखो के समान सलज्ज थी, पर एकरस उत्साह-हीनता से भरी होने के कारण चिकनी काली मिट्टी से गढी मूर्ति मे कौडियों से बनी आँखो का स्मरण दिलाती रहती थी । काँपते ओठो मे से निकलती हुई गले की खरखराहट सुननेवाले को वैसे ही चौंका देती थी जैसे बाँसुरी मे से निकलता हुआ शख का स्वर ।

बदलू एक तो स्वभाव से ही मितभाषी था, दूसरे, मेरे जैसे नागरिक की श्रवण-शक्ति की सीमा से अनभिज्ञ, अत उससे कुछ कहने-सुनने के अवसर कम ही आ सके ।

जब कभी जाते-जाते मै उसके घूमते हुए चाक पर स्थिर-सी उँगलियो का निर्माण-क्रम देखने के लिए रुक जाती तब वह एकबारगी अस्थिर हो उठता । अपनी घबराहट छिपाने के लिए वह बार-बार खाँसकर गला साफ करता हुआ खरखारते स्वर में खेदन, दुखिया, नत्थू आदि को मचिया निकाल लाने के लिए पुकारने लगता । जब एक चलनी-जैसी झरझरी और साढे तीन पायो पर प्रतिष्ठित मचिया का अँधेरी कोठरी से उद्धार करने के लिए वे बच्चे प्रतियोगिता आरम्भ कर देते तब मै वहाँ से विदा हो जाने ही में भलाई समझती थी । मेरे बैठने से मचिया की कुशल

तो सदिग्ध हो ही जाती थी, साथ ही मटके-मटकियों का भविष्य भी खतरे में पड सकता था।

बदलू का घर मेरे आने-जाने के रास्ते में पडता था। अत या तो मुझे लौटने की जल्दी रहती या पहुँचने की। ऐसा अवकाश निकालना कठिन था जिसे वहाँ बिता देने से दूसरों के काम में व्याघात न पडता हो।

हाँ, जिस दिन रधिया अपने द्वार पर मिट्टी छानती या घर का कोई और काम करते मिल जाती उस दिन कुछ देर रुकना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो उठता। उसे कभी बरसती आँखों और कभी हँसते ओठो से, अपने एकरस जीवन की गाथा सुनाना अच्छा लगता था। उसकी आँखें, उसके ओठ, उसके हाथ-पैर सब मानों अपनी-अपनी कथा सुनाने को आतुर थे, इसीसे शब्दों में उसे थोडा ही कहना पडता था। पर वह थोड़ा इतना मार्मिक रहता कि सुननेवाला शीघ्र ही अपने आपको प्रकृतिस्थ नहीं कर पाता। किसी करुण रागिनी के समान उसकी कथा जितना उसके हृदय का मन्थन करती उतना ही दूसरे के हृदय का भी, अतः अनेक बार उस कुम्हार-बधू से अपने आवेग को छिपा लेना मेरे लिए भी कठिन हो जाता था।

रधिया को मूर्तिमती दीनता कहना चाहिए। किसी पुरानी धोती की मैली कोर फाड़कर कसे हुए रूखे उलझे बाल पर्व-त्योहार पर काली मिट्टी से मैल धो भले ही लिये जायँ, पर उन्हें

कड़ुए तेरु की चिकनाहट से भी अपरिचित रहना पड़ता था। धोती और उसके किनारे को धूल एकाकार कर देती थी, उसपर उसकी जर्जरता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि घूँघट खीचने पर किनारी ही उगलियो के साथ नाक तक खिंची चली आती थी।

दुख एक प्रकार का शृंगार भी बन जाता है, इसी कारण दुखी व्यक्तियों के मुख देखनेवाले की दृष्टि को बाँधे बिना नही रहते।

रधिया के मुख का आकर्षण भी उसकी व्यथा ही जान पड़ती थी—वैसे एक-एक करके देखने से मुख कुछ विशेष चौड़ा था। नाक आँखों के बीच में एक तीखी रेखा खीचती हुई ओठ के ऊपर गोल हो गयी थी। गहरे काले घेरे से घिरी हुई आँखें ऐसी लगती थी जैसे किसीने उगली से दबाकर उन्हें काजल में गाड़ दिया हो। ओंठो पर पड़ी हुई सिकुड़न ऐसी जान पड़ती थी मानो किसी तिक्त दवा की प्याली के निरन्तर स्पर्श का चिन्ह हो। इन सब विषमताओं की समष्टि में जो एक सामञ्जस्यपूर्ण आकर्षण मिलता था वह अवश्य ही रधिया के दुख-विगलित हृदय से उत्पन्न हुआ होगा। वह जीवन-रस से जितनी निचुड़ी हुई थी, दुख में उतनी ही भीगकर भारी हो उठी, इसी कारण उसमें न वह शून्यता थी जो दृष्टि को रोक नही पाती, और न वह हलकापन जो हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नही रखता।

घिसकर गोल से चपटे हो जानेवाले कांसे के कड़े और मैल से रूप-रेखा-हीन लाख की चूड़ियों के अतिरिक्त और किसी

आभूषण से रधिया का परिचय नहीं, पर वह इस परिचय-हीनता पर खिन्न होती नहीं देखी गयी। गठे हुए शरीर और भरे अंगोंवाली वह स्त्री सन्तान की अटूट शृङ्खला और दरिद्रता की अघट छाया के कारण ऐसा ढाँचा-मात्र रह गयी थी जिसे चलता-फिरता देखना भी विस्मय का कारण हो सकता था।

इस वर्ग की स्त्रियों में जो एक प्रकार की कर्कश प्रगल्भता मिलती है उसका रधिया में सर्वथा अभाव रहा। सम्भवत इसी कारण मेरी उदासीनता का कुतूहल में और कुतूहल का सम्मान में रूपान्तरित होना अनिवार्य हो गया। बदलू के प्रति उसका स्नेह गम्भीर और इसीसे कोलाहलहीन था। न वह कभी घर की, बच्चों की और स्वयं उसकी चिन्ता करता देखा गया और न रधिया के मुख से उसके गोबरगणेश पति की निन्दा सुनने का किसीको सौभाग्य प्राप्त हो सका। रधिया को विश्वास था कि उसका पति कुम्भकार-शिरोमणि और अच्छा कलावन्त है, केवल लोग उसकी महानता से परिचित नहीं।

सवेरे उठकर कभी मक्का, कभी जुनरी, कभी बाजरा और कभी जौ-चना पीसकर रधिया जिस कठोर कर्तव्य का आरम्भ करती उसका उपसंहार तब होता था जब टिमटिमाते दिये के धुँधले प्रकाश में या फुलझड़ी के समान पल-भर जलकर बुझ जानेवाली सिरकियों के उजाले के सहारे, कुछ उनींदे और कुछ रोते बच्चों में सवेरे की रोटी बँट चुकती।

बच्चे जीवित थे पाँच, पर उनकी संख्या बताते समय रधिया उन्हें भी गिनाये बिना नही रहती जो स्मृतिशेष रह गये थे। मृत तीन बच्चो की चर्चा जीवितो के साथ इस प्रकार घुली-मिली रहती थी कि सुननेवाला उन्हे जीवित मानने के लिए बाध्य हो जाता। अन्तर केवल इतना ही था कि मृत तो कहानी के समान केवल कहने-सुनने योग्य वायवी स्थिति मे जीवित थे और जीवित अपने कलावन्त पिता और मजदूरिन माँ के काम में सहायता देते-देते मरे जाते थे। मिट्टी खोदने से लेकर हाट में बर्तन पहुँचाने तक वे अपने दुर्बल नग्न शरीरो का उतना ही उपयोग करते थे जितने से उनके प्राणो को शरीर से सम्बन्ध-विच्छेद न करने का बहाना मिलता रहे। सबसे छोटा चार-पाँच वर्ष का नत्थू भी जब अपने बडे पेट मे दस गुनी बडी मटकी को सर पर लादकर टेढे-मेढे सूखे पैरो पर अकडता हुआ हटिया जाने का उत्साह दिखाता तब उसके पुरुषार्थ पर न हँसी आती थी, न रोना।

बर्तनो के बेचने से पूरा नही पडता, अत अपने जन्मजात व्यवसाय से जीविका की समस्या हल न होती देख रधिया आस-पास के खेतो मे काम करने चली जाती थी। कभी-कभी उसके खेत से ओर बदलू के हाट से लौटने तक छोटे-छोटे जीव बाहर के कच्चे चबूतरे पर या उसके नीचे धूल में जहाँ-तहाँ लेटकर बेसुध हो जाते। रधिया जब लौटती तब उन्हें भीतर पुरानी

मैली धोती के बिछौने पर एक पंक्ति में सुला देती। उस परिवर्तन-क्रम मे जो जाग उठता था उसे छीके पर धरी हडिया मे से निकालकर मोटी रोटी का टुकडा भेंट दिया जाता था और जो सोता रहता उसे स्नेहभरी थपकियो पर ही रात बितानी पडती।

बदलू भी उस हडिया के प्रसाद का अधिकारी था, पर इस सीमित अन्नकोष की अन्नपूर्णा को कब नीद से अपने एकादशी व्रत का पारायण नहीं करना पडता यह जान लेना कठिन होगा!

विचित्र ही थे वे दोनो। पति भोजन नही जुटा पाता, वस्त्र का प्रबन्ध नही कर सकता और बच्चो के भविष्य या वर्तमान की चिन्ता नही करता, पर पत्नी को उसके दुर्गुण दुर्गुण ही नही जान पडते, असन्तोष का कोई कारण ही नही मिलता।

रधिया के किसी बच्चे के जन्म का कोई कोलाहल नही होता। छोटे लक्खी का जिस रात को जन्म हुआ उसकी सन्ध्या तक मैने रधिया को बडा घडा भरकर लाते देखा। घडा रखकर उसने मेरे लिए वही चिरपरिचित साढे तीन पायोवाली मचिया निकाल दी। उसपर बहुत सतर्कता से अपना सन्तुलन करती हुई मै जब बच्चों से इधर-उधर की बाते करने लगी तब रधिया ने अपने धारहीन हसिये का चबूतरे के नीचे पडे पत्थर के टुकडे पर घिस-घिसकर धोना आरम्भ किया। मैने कुछ हँसी और कुछ विस्मय-भरे स्वर में पूछा, "रात मे इसका क्या काम है? क्या

किसीका गला काटेगी ?" उत्तर मे रधिया बहुत मलिन भाव से मुस्करा दी।

दूसरे दिन सोमवती अमावास्या होने के कारण मुझे अवकाश था, इसीसे वहाँ पहुँचना सम्भव हो सका। बदलू का चाक सदा के समान उदासीनता मे गतिशील था, पर बच्चे घर के द्वार को घेरकर कोलाहल मचा रहे थे। मैने सकुचाये हुए बदलू की ओर न देखकर दुखिया से उसकी माँ के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। वह अपने भाई-बहिनो मे सबसे अधिक बातूनी होने के कारण एक-एक साँस में अनेक कथाएँ कह चली। उसके नया भइया हुआ है। माई ने चमारिन काकी को नही बुलाने दिया—एक रुपया माँगती थी। दराती से अपने आप नार काट दिया, उसार के कोने मे गड़ा है। भइया टिटहरी की तरह पाँव सिकोड़े आँखे मूँदे पड़ा है। बप्पा ने माई को बाजरे की रोटी दी है, इत्यादि महत्वपूर्ण समाचार मुझे कुछ क्षणो मे मिल गये। तब भीतर झाँककर देखने का निष्फल प्रयत्न किया, क्योकि मलिन वस्त्रो में लिपटी श्यामाङ्गिनी रधिया तो मिट्टी की धूमिल दीवारों के अन्धकार में घुल-मिल-सी गयी थी। अपने भावी कुम्भकार को निकट आकर देखने का आमन्त्रण पाकर मैने भीतर पाँव रखा।

कोठरी मे व्याप्त धुएँ और तम्बाकू की गन्ध हर साँस को एक विचित्र रूप से बोझिल किये दे रही थी। पिडोर से पुती, पर

दीमकों से चेचकरू दीवारें खड़े-खड़े भारी छप्पर सँभालने में असमर्थ होकर मानो अब बैठकर थकावट दूर कर लेना चाहती थीं। चूल्हे के निकटवर्ती कोने में नाज रखने की मटमैली और काली मटकियों के साथ चमकते हुए लोटा-थाली आदि जेल की कठिन प्राचीर के भीतर एकत्र बी क्लास और ए क्लास के बन्दी हो रहे थे। घर के बीच में गृहस्वामी के लिए पड़ी हुई झूले-जैसी खटिया की लम्बाई सोनेवाले के पैरों को स्थान देना अस्वीकार कर रही थी। दीवार में बने गड्ढे-जैसे आले में न जाने कब से उपेक्षित पड़ा हुआ धूल-धूसरित दिया मानो अपने नाम की लज्जा रखने के लिए ही एक इंच-भर बत्ती और दो बूँद तेल बचाये हुए था।

ऐसे ही घर के पश्चिमवाले खाली कोने में रधिया अपने नवजात शिशु का जीवन के साथ-साथ दरिद्रता से परिचय करा रही थी। आँखें मूँदे हुए वह ऐसा लगता था मानो किसी बड़े पक्षी के अंडे से तुरन्त निकला हुआ बिना परों का बच्चा हो। नाल जहाँ से काटा गया था वहाँ कुछ सूजन भी आ गयी थी और रक्त भी जम गया था।

मालूम हुआ, चमारिन एक रुपये से कम में राजी नहीं हुई, इसीसे फिजूल-खर्ची उचित न समझकर उसने स्वयं सब ठीक कर लिया।

पीड़ा के मारे उठा ही नहीं जाता था—लेटे-लेटे दराती से नाल काटना पड़ा। इसीसे ठीक से नहीं कर सकी, पर

चिन्ता की बात नही है, क्योंकि तेल लगा देने से दो-चार दिन मे सूख जाएगा। मैने आश्चर्य से उस विचित्र माता के मलिन मुख की प्रशान्त और सौम्य मुद्रा को देखा।

उसके लिए मै अभी हरीरा, दूध आदि का प्रबन्ध करने जा रही हूँ, यह सुनकर वह और भी करुण भाव से मुसकुराने लगी। जो कहा, उसका अर्थ था कि मै कहाँ तक ऐसा प्रबन्ध करती रहूँगी, यह तो उसके जीवन-भर लगा रहेगा।

चाक के पास निर्विकार भाव से बैठे हुए बदलू को पुकारकर जब मैने बनिये के यहाँ से गुड, सोठ, घी आदि लाने का आदेश दिया तो वह मानो आकाश से नीचे गिर पड़ा। उसकी दुखिया की माई तो कहती थी कि गुड देखकर उसे उबकाई आती है, घी खाने से उसके पेट में शूल उठता है, इसीसे तो वह बाजरे की रोटी देकर निश्चिन्त हो जाता है।

बदलू के सरल मुख को देखकर जब मैने अपने मिथ्यावाद के भार से सिकुडी-सी रधिया पर दृष्टि डाली तब उस दम्पति से कुछ और पूछने की आवश्यकता नही रही। (बदलू जिस वस्तु का प्रबन्ध नही कर सकता, वह रधिया के लिए हानिकारक हो उठती है)—यह समझते देर नही लगी, (पर अपने इस दिव्य ज्ञान को छिपाकर मैने सहज भाव से कहा—(“जो सब स्त्रियाँ खाती है वह दुखिया की माई को भी खाना पड़ेगा, चाहे उबकाई आवे चाहे शूल उठे।”)

उस घर मे सन्तान का जन्म जैसा आडम्बरहीन था, मृत्यु भी वैसी ही कोलाहलहीन आती थी।

मुलिया तेज बुखार में इधर-उधर घूमती ही रही। जब चेचक के दाने उभर आये तब माई ने पकडकर घर के अँधेरे कोने मे टूटी खटिया पर डाल दिया। लट मे घर बुहारना, नीम पर देवी के नाम मे जल चढाना आदि जो कर्तव्य रधिया के विश्वास और शक्ति के भीतर थे उनके पालन में कोई त्रुटि नही हुई, पर चौथे दिन उसने परमधाम की राह ली। उस बालिका पर बदलू की विशेष ममता थी, इसीसे जब वह उसे यमुना के गम्भीर जल में विसर्जित कर लौटा तब उसके शान्त मौन में छिपी मर्म व्यथा का अनुमान कर रधिया ने एक सपने की कथा गढ डाली। सपने में देवी मइया उससे कह रही थी कि इस कन्या को मैने इतने ही दिन के लिए भेजा था, अब इसे मुझे लौटा दो। बदलू जैसे बुद्धू व्यक्ति का इस सपने से प्रभावित हो जाना अवश्यम्भावी था। जब स्वयं देवी मइया उसकी मुलिया को ले जाने को उत्सुक थी तब कोई दवा न करना अच्छा ही हुआ। दवा-दारू से लड़की तो बच ही नही सकती थी—उसपर देवी मइया का कोप सहना पड़ता। फिर उस लडकी का इससे अच्छा भाग्य क्या हो सकता था कि स्वय माता उसके लिए हाथ पसारें?

एक बार मैने रधिया को उसके झूठ बोलने के सम्बन्ध मे सारगर्भित उपदेश दिया। पर उसने अपने मैले फटे अचल से आँखें

पूछते हुए जो सफाई दी वह भी कुछ कम सारगर्भित न थी। उसका आदमी बहुत भोला है। उसका हृदय इतना कोमल है कि छोटी-छोटी चोटों से भी धीरज खो बैठता है। घर की दशा ऐसी नहीं कि उतने जीवों को दोनों समय भोजन भी मिल सके, इसीसे वह अपने और बच्चों के छोटे-मोटे दुख को छिपा जाती है। अब भगवान उसे परलोक में जो चाहे दण्ड दे, पर किसीका कुछ छीन लेने के लिए वह झूठ नहीं बोलती।

रधिया का उत्तर ही मेरे लिए एक प्रश्न बन गया। उसके असत्य को असत्य भी कैसे कहा जाय और न कहें तो उसे दूसरा नाम ही क्या दिया जाय!

अनेक बार मैंने बदलू को समझाया कि यदि वह बेडौल मटकों के स्थान में सुन्दर नक्काशीदार झज्झर और सुराहियाँ बनावे तो वे शहर में भी बिक सकेंगी। पर उसने चाक पर दृष्टि जमाकर खरखराते गले से जो उत्तर दिया उसका अर्थ था कि उसके बाप, दादा, परदादा सब ऐसे ही घड़े बनाते रहे हैं, वह गँवई-गाँव का कुम्हार ठहरा, उससे शहराती बर्तन न बन सकेंगे। फिर मैंने अधिक कहना-सुनना व्यर्थ समझा।

एक दिन मैं पढ़नेवाले बच्चों को कुछ पौराणिक कथाएँ समझाने के लिए कई चित्र ले गयी। वे कलात्मक तो नहीं, पर बाजार में बिकनेवाली शिव, पार्वती, सरस्वती आदि की असफल प्रतिकृतियों से अच्छे कहे जा सकते थे।

बदलू के बच्चो मे दुखिया ही पढने आ सकती थी। सम्भवत वही अपने बप्पा को यह सूचना दे आयी। पर अब अपनी सारी गम्भीरता भूलकर बदलू दौडता हुआ वहाँ आ पहुँचा तब मेरे विस्मय की सीमा नही रही। मैने उसे सब चित्र दिखा दिये और उनका अर्थ भी यथासम्भव सरल करके समझा दिया, फिर भी बदलू बच्चो मे बैठा ही रहा। सरस्वती के चित्र पर उसकी टकटकी बँधी देखकर मुझे पूछना ही पडा, "क्या इसे तुम अपने पास रखना चाहते हो ?" बदलू की दृष्टि में सकोच था, इतनी सुन्दर तस्वीर कैसे माँगी जाय। उसके मन का भाव समझकर जब मैने उसे वह चित्र सौप दिया तब वह बालको के समान आनन्दातिरेक से अस्थिर हो उठा।

कई दिनो के बाद मैने बदलू के अधेरे घर के जर्जर द्वार पर उस चित्र को लेई से चिपका हुआ देखा और सत्य कहूँ तो कहना होगा कि मुझे उस चित्र के दुर्भाग्य पर खेद हुआ।

दीवाली के दिन बहुत-से मिट्टी के खिलौने ख़रीदने का मेरा स्वभाव है। वास्तव में वह ऐसा पर्व है जब मिट्टी के शिल्पियों की कारीगरी का अच्छा प्रदर्शन हो जाता है और उस दिन प्रोत्साहन पाकर वे वर्ष-भर अपनी कला के विकास की ओर प्रयत्नशील रह सकते है। आधुनिक सभ्य युग ने हमारे उत्सवो का उत्साह ही नही छीन लिया, वरन् इन शिल्पियो का विकास भी रोक दिया है। विचारो में उलझी हुई मै खिलौने सजाने के लिए जैसे ही बडे कमरे

मे पहुँची वैसे ही बाहर बदलू का खरखराता हुआ कण्ठ सुनायी दिया। वह तो कभी मेरे यहाँ आया ही नही था, इसीसे आश्चर्य भी हुआ और चिन्ता भी। क्या उसके घर कोई बीमार है या किसी प्रकार की आपत्ति आयी है? बरामदे में आकर देखा—मैले कपडो में सकुचाया-सा बदलू एक टूटी डलिया लिये खडा है।

कुछ आगे बढकर जब उसने डलिया सामने रखकर उसपर ढका हुआ फटे कपडे का टुकडा हटा दिया, मै अवाक हो रही। बदलू एक सरस्वती की मूर्ति लाया था, सफेद और सुनहले रगो से चित्रित। मूर्ति की प्रशान्त मुद्रा को उसके शुभ्र वस्त्र, सुनहले बाल, सुनहली वीणा और लाल चोच और पैरवाले सफेद हंस ने और भी सौम्य कर दिया था। एक-एक बाल की लट जितनी कला से बनायी गयी थी उससे तो बनानेवाला बहुत कुशल शिल्पी जान पडा। पूछा, "किससे बनवा लाये हो इसे?" जो उत्तर मिला उसके लिए मै किसी प्रकार भी प्रस्तुत नही थी। बदलू ने सलज्ज आँखे नीची कर और सूखे बेडौल हाथ फैलाकर बताया कि उसने अपने ही हाथो से बनायी है। विश्वास करना सहज न होने के कारण मै कभी मूर्ति और कभी बदलू की ओर देखती रह गयी। क्या यह वही कुम्हार है जिसने एक वर्ष पहले सुन्दर घडे बनाने मे भी असमर्थता प्रकट की थी? मुख से निकल गया—"तुम तो गाँव के गँवार कुम्हार हो, जब नक्काशीदार घडा बनाना असम्भव लगता था तब ऐसी मूर्ति बनाने की कल्पना कैसे कर सके?"

धीरे-धीरे सत्य स्पष्ट हुआ। सरस्वती के चित्र का देखते-देखते बदलू के मन में कलाकार बनने की इच्छा जाग उठी। जहाँ तक सम्भव हो सका उसने सारी शक्ति लगाकर उस चित्रगत सौन्दर्य को मिट्टी मे साकार करने का प्रयत्न किया। कई बार असफल रहा, पर निरन्तर अभ्यास से आज वह सरस्वती की ऐसी प्रतिमा बना पाया जो मुझे उपहार में देने योग्य हो सकी।

तब से कितनी ही दीवालियाँ आयी, बदलू ने कितनी ही सुन्दर-सुन्दर मूतियाँ बनायी और उनमें से कितनी ही सम्पन्न घरो में अलंकार बनकर रही।

सरला रधिया तो मानो अपने पति को कलावन्त बनाने के लिए ही जीवित थी। जैसे ही उसके बेडौल मटकों का स्थान सुन्दर मूत्तियों ने लिया वैसे ही वह अपनी ममता समेटकर किसी अज्ञात लोक की ओर प्रस्थान कर गयी।

बदलू तो ऐसा रह गया मानों चकवा-चकवी के जोड़े में से एक हो। सवेरे से साँझ तक और साँझ से सवेरे तक वह रधिया के लौट आने की प्रतीक्षा करता रहता था। (प्रतीक्षा वैसे ही करुण है, पर जब एक जीवित मनुष्य उस मृत की प्रतीक्षा करने बैठता है जो कभी नही लौटेगा, तब वह करुणतम हो उठती है।) मिथ्यावादिनी रधिया उस उदासीन ग्रामीण के जीवन में कौन-सा स्थान रिक्त कर गयी है, यह तब ज्ञात हुआ जब उसने घर बसाने की चर्चा चलानेवाले के सर पर एक मटकी दे मारी।

(स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओ के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नही तो कठिन अवश्य हो जाता है।)

अन्त में तेरह वर्ष की दुखिया ने छोटा-सा अचल फैलाकर अपने बप्पा और भाई-बहनो को उसकी छाया मे समेट लिया। रधिया का प्रतिरूप बनकर वह उसीके समान सबकी व्यवस्था मे अपने आपको गला-गलाकर बडा करने लगी है।

दो वर्ष हो चुके जब बदलू की कला पर मुग्ध होकर उसका एक ममेरा भाई उसे बच्चो के साथ फैजाबाद ले गया था, परन्तु दीवाली के दिन वह एक न एक मूर्ति लेकर उपस्थित होना नही भूलता। केवल इसी वर्ष उसके नियम में व्यतिक्रम हो रहा है, क्योकि दीवाली आकर चली गयी, पर बदलू अब तक कोई मूर्ति नही लाया। कदाचित वह रधिया की खोज में चल दिया हो। पर मेरे घर के हर कोने में प्रतिष्ठित बुद्ध, कृष्ण, सरस्वती, बापू आदि की मूर्तियाँ, पुराने चाक पर बेडौल घडे गढनेवाले ग्रामीण कुम्भकार का स्मरण दिला-दिलाकर मानों कहती ही रहती है—"कला तुम्हारा ही पैतृक अधिकार नही, कल्पना तुम्हारी ही क्रीत-दासी नही।")

युद्ध के मौलिक कारण

श्री रामनारायण यादवेन्दु, बी ए, बी एल

ससार में युद्ध सदैव से होते आये है। राज-शक्ति के विकास से पूर्व भी मानव-समाज में सामरिक प्रवृत्ति के लक्षण विद्यमान थे। आज भी अर्द्ध सभ्य या वन्य जातियों में युद्ध बड़े भीषण रूप में मिलता है, पर इसका यह निष्कर्ष नही कि युद्ध सभ्यता के लिए अनिवार्य है। (जिस प्रकार आदिकाल से मानव-स्वास्थ्य के लिए रोग नामक शत्रु पीछे लग गया है, उसी प्रकार मानव-सभ्यता के पीछे भी युद्ध का राजरोग लग गया है। युद्ध तो सभ्यता का रोग है।)

(युद्ध मानव-प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहा कहा जा सकता। युद्ध अनेक मानवीय दूषणों और दुर्बलताओ के समान ही एक महादोष है।) जब-जब ससार में भीषण महायुद्धो की सम्भावना प्रतीत हुई तब-तब ससार के विचारको ने एक स्वर से उन्हें सभ्यता के लिए घातक बतलाया।

यह आप जानते है कि मानव-प्रकृति परिवर्तनशील है। प्रत्येक युग में उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन होते रहे है। समाज-व्यवस्था, आचार-विचार, शासन-पद्धति, नियन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि ने प्रत्येक युग की मानवी प्रकृति में बडे-बडे परिवर्तन किये है। आज हम जिन आचार-विचारो और सस्कृति

को श्रेष्ठ समझते है, उन्हे हमारे पूर्वज असभ्यता का नाम देते थे। आज हम जिन विचारो और भावनाओ को युग-धर्म कहते है, सम्भव है, एक शताब्दी के बाद वे जगलीपन के भाव कहे जायें। क्या उन्नीसवी शताब्दी का भारत यह कल्पना कर सकता था कि महात्मा गान्धी के अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा वह अपनी स्वाधीनता प्राप्त करेगा ?

यह बिलकुल सत्य है कि यदि उन मनुष्यो को, जो रणभूमि में जाकर रक्तपात करते है, समुचित सैनिक शिक्षण न दिया जाय, या उनको नियंत्रण में रहना न सिखलाया जाय, तो वे कदापि एक सैनिक के कर्तव्यो का पालन न कर सकेगे। इससे प्रमाणित है कि मनुष्यो में सैनिक प्रवृत्ति जन्म से उत्पन्न नही होती, वह तो शिक्षण द्वारा पैदा की जाती है। सैनिक शिक्षणालय (Military Training Institute) मनुष्य की प्रकृति को कितना बदल देते है, यह इसी तथ्य से प्रकट हो जाता है।

1 *आर्थिक कारण*

प्राचीन युग में युद्ध शारीरिक बल के प्रदर्शन के लिए होते थे। जिन मनुष्यो या राज्यों पर किसी राजा को अपना आतंक फैलाना होता, उनके विरुद्ध युद्ध ठान दिया जाता।

नेपोलियन, सिकन्दर, मुहम्मद गोरी, बाबर आदि जितने विजेता हुए, सभी ने अपने बल की संसार में धाक जमाने की कोशिश की, परन्तु राज्य-संस्था के विकास के साथ युद्ध के उद्देश्यो

में भी परिवर्तन होते रहे। बाद मे राज्य-विस्तार की आकाक्षा से प्रेरित होकर राजा अपनी सेनाओ को अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित कर राज्यों पर आक्रमण करने लगे। जो देश जीते उनपर शासन किया, इस प्रकार साम्राज्यवाद को जन्म मिला।

वैसे तो युद्ध के अनेक प्रमुख और गौण कारण है। उनका कोई एक कारण बतलाना अज्ञान होगा, परन्तु वर्तमान युग में जब ससार के राष्ट्रो के शासन का आधार आर्थिक है, राजनीतिक नहीं, युद्ध के प्रमुख कारण भी आर्थिक ही है। राष्ट्रो की यह धारणा है कि अर्थ की अधिकाधिक प्राप्ति युद्ध द्वारा ही संभव है, यदि स्थायी शान्ति रही तो अर्थ-प्राप्ति मे बाधा उपस्थित होगी। यह ठीक है कि ऐसी सामरिक मनोवृत्तिवाले राष्ट्र अपने इस मूल उद्देश्य को अपनी प्रजा पर प्रकट नही करते। प्रजा को यह बतला दिया जाता है कि यह राष्ट्र स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय स्वत्वो की रक्षा, राष्ट्रसम्मान-रक्षा या निर्बल राष्ट्रो की राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा हितो की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रहा है। जब शान्ति-सन्धि की शर्तो पर विचार करने का अवसर आता है, तब युद्ध के वास्तविक कारणो का पता चलता है।

2 *औद्योगिक क्रान्ति*

आज से शताब्दियो पूर्व हमारा जीवन कैसा था और आज कैसा है—इसपर विचार करने से हमें विशाल अन्तर प्रतीत होगा। प्राचीन युग में मनुष्य अपनी जिन्दगी के निर्वाह के लिए

सामग्री जुटाने में इतना व्यग्र रहता था कि उसे भोजन और वस्त्र की समस्या के अतिरिक्त और किसी बात पर विचार करने का समय बहुत कम मिलता था। पाठक यह ध्यान में रखें कि मै यह बात भारत के वैदिक काल के विषय में नही कह रहा हूँ, क्योकि वह तो भारत का सुवर्ण-युग था। वह युग तो इतना उन्नत और समृद्धिशाली था कि आर्य विद्वानो ने भौतिक उन्नति के साधन सोचने के अतिरिक्त आध्यात्मिक प्रयोगशाला मे आश्चर्य-जनक आविष्कार किये थे। यह बात तो तीन या चार शताब्दी पूर्व की है। मानव-मस्तिष्क उत्कर्षशील साधनो के सोचने और भौतिक अभ्युदय के साधन जुटाने में मग्न था। ज्ञान-विज्ञान का सूर्योदय होने लगा तथा यूरोप में वैज्ञानिक शिक्षा के लिए विद्यालय और विद्यापीठ स्थापित होने लगे। जहाँ पहले चर्खे से सूत कातकर, करघे से कपडे बुनकर यूरोपवासी अपने शरीर को ढापने की कोशिश करते थे, अब वहाँ के नगरो में वैज्ञानिक उन्नति के कारण मशीनो का उपयोग होने लगा। बाष्पशक्ति से मशीनों को चलाकर उद्योग मे एक विचित्र क्रांति कर दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि कम मजदूरो के द्वारा अधिक परिमाण में माल तैयार होने लगा। कृषि में भी उन्नति हुई और भोजन की उपज भी बढ़ गयी। ग्रामों के लोग अपने-अपने ग्रामों को छोड-छाडकर शहरों मे बसने लगे। इस प्रकार यूरोप में बडे-बडे औद्योगिक नगरो का विकास होने लगा। जब यातायात के

साधनो मे बाष्पशक्ति का प्रयोग किया जाने लगा, तो बहुत बडा परिवर्तन हो गया। नाविक शक्ति का भी विकास होने लगा। सन् 1716 में सबसे पहले जलयान पर स्टीम-इजिन लगाकर यात्रा की गयी। सन् 1838 ई० में ब्रिस्टल और न्यूयार्क के बीच मे स्टीमर-जहाज आने-जाने लगे। सन् 1840 ई० मे रेल्वे का आविष्कार हुआ और नयी रेल्वे लाइनें बनायी जाने लगी। सन् 1850 ई० में समस्त संसार में केवल 23,000 मील रेल्वे लइनें थी। प्रारम्भ मे काष्ठ के जलयान बनाये जाते थे, उन्हीमे स्टीम-इजिन लगा दिया जाता था, परतु वाष्प के आविष्कार के बाद लकडी की जगह लोहे के जहाज बनाये जाने लगे। विद्युत के आविष्कार ने तो आश्चर्यजनक भौतिक उन्नति करके दिखला दी। आज भौतिक जीवन मे विद्युत का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोपवासियो ने नवीन ससार (अमेरिका) की खोज की। इसी समय एशिया में प्रवेश के लिए जलमार्गों की खोज हुई। इन खोजो के कारण स्टीम से चलनेवाले जहाजो के निर्माण में विशेष सहायता मिली। नवीन संसार से जो बहुमूल्य सम्पत्ति और खनिज पदार्थ यूरोप मे आये, उनसे यूरोप की व्यावसायिक तथा व्यापारिक उन्नति में अधिक सहायता मिली। इन आविष्कारो और खोजा के परिणामस्वरूप उद्योगवाद का जन्म हुआ। सबसे पूर्व इसका प्रवेश इग्लैण्ड में

हुआ। तत्पश्चात् फ्रान्स, जर्मनी, केन्द्रीय यूरोप और रूस में भी उद्योगवाद ने प्रवेश किया।

3. *पूँजीवाद*

जब यूरोप में उद्योगवाद का विकास होने लगा, तो पूँजी का महत्त्व अधिक बढ गया। जी डी एच कोल के कथनानुसार 'पूँजीवाद का अर्थ है, लाभ के लिए माल तैयार करने की वह विकसित उन्नत प्रणाली जिसमे माल तैयार करने के साधनों पर (सरकार का नही) व्यक्ति-विशेष का स्वामित्व-अधिकार स्थापित हो जाता है।' इस प्रणाली से अकाल ही होता है, सुकाल नही, यद्यपि पूँजीपति बहुधा इसकी चेष्टा करते हैं कि खास-खास माल सस्ता पडे। पूँजीवाद के लिए माल तैयार करने का मुख्य उद्देश्य है लाभ उठाना। वह चाहता है कि मजूरी-खर्च बढ़ने न पावे। इससे साधारण जनता की कार्य-शक्ति के बढने में बाधा पडती है।

मजदूर पूँजीपतियों के लिए धनोत्पत्ति का एक उपयोगी साधन है। उसके परिश्रम के फलस्वरूप उसकी पूँजी में वृद्धि होती है। मजदूरो को मिल और कारखानो में इसलिए काम में लगाया जाता है कि वे पूँजीपति को अधिकाधिक सम्पत्ति प्रदान करें। अत जब मजदूरो के द्वारा पूँजी में वृद्धि होना रुक जाता है, तब उन्हें काम नही दिया जाता है। इस प्रकार वे बेकार होकर संसार में अशान्ति का कारण बनते है। मजदूर पूँजी को

बढाने में कब असफल होते है, यह प्रश्न विचित्र-सा प्रतीत होता है, पर है यह विचारणीय। इस प्रश्न पर आगे विचार किया जाएगा।

जब यूरोप के राष्ट्रों में उद्योग की उन्नति के साथ-साथ पूँजीवाद का अधिक जोर बढ गया, तब एक नवीन समस्या पैदा हो गयी। माल की पैदावार इतनी अधिक हो गयी कि अपने राष्ट्र की आवश्यकताएँ पूरी होने के अतिरिक्त माल अधिक बचने लगा। उसकी खपत के लिए उपाय सोचे जाने लगे। यूरोप के राष्ट्रों मे अब व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा का आविर्भाव हुआ। अब प्रत्येक यूरोपीय देश अपने माल की खपत के लिए यूरोप से बाहर नवीन बाजारों की खोज करने लगा। जब तक यूरोप के राष्ट्र अपने समान राष्ट्रों की उन्नति के लिए पूँजी लगाते रहे, तब तक उन्हें विशेष लाभ नही हुआ। यथा, जब अंग्रेजों ने अमेरिका में अमेरिकन-रेल्वे बनवाने में अपनी पूँजी लगायी, इससे उन्हें विशेष लाभ नही हुआ। यह तो प्रोफेसर हेराल्ड लास्की के शब्दों में 'लाभों का पारस्परिक विनिमय' (Reciprocal Interchange of benifits) ही कहा जा सकता है।

नेपोलियन-युद्धों के उपरान्त ही वर्तमान उद्योगवाद का प्रारम्भ होता है। अपने जन्म-काल से अर्द्धशताब्दी तक यह खूब उन्नत हुआ। विज्ञान के आश्चर्यजनक विकास ने मशीन की शक्ति को अधिक बढा दिया। जब अधिक उत्पादन होने लगा, तब नवीन बाजारों के लिए खोज होने लगी। नवीन देश अपनी

व्यापारिक उन्नति में अग्रसर होने लगे। उन्होंने अपने-अपने बाजारों में अन्य प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रों के माल का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। इसमें उन्हें खूब सफलता मिली, परन्तु यूरोपीय राष्ट्र इससे निराश न हुए। उनकी नवीन बाजारों की खोज निरंतर होती रही। इस प्रकार निरंतर प्रयत्न के उपरान्त पूर्व अफ्रीका और एशिया का द्वार खुल गया। उनकी मनोकामना पूर्ण हुई। उनके हाथ ऐसे बाजार लगे जो उन्हें न केवल मालामाल ही कर सकते थे, किन्तु उन्हें राजभक्ति प्राप्त करने के लिए भी सुयोग दे सकते थे। पूँजीवाद ने यूरोपीय देशों की सरकारों को एशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए साधन प्रदान किये।

(व्यापार सदैव पताका (राज्य) के पीछे-पीछे चला, परन्तु अब व्यापार पूँजी के पीछे-पीछे चलने लगा। राज्य और पूँजी एक हो गये। कूटनीतिज्ञता और व्यवसाय ने मिल-कर काम किया।)

इस प्रणाली के अनुसरण से पूँजीपति की शक्ति बढ़ गयी और एशिया, अफ्रीका आदि में लूट करने का पूरा सुयोग मिल गया। पूँजीपतियों ने अपने हितों की रक्षा करने के लिए अपनी-अपनी राष्ट्रीय सरकारों से सुसज्जित सेनाएँ उन-उन देशों में मँगवायी, जहाँ-जहाँ वे अपने बाजारों की तलाश में प्रवेश करते गये। इस प्रकार पूर्वी बाजारों पर पूर्ण अधिकार स्थापित करने के लिए सैनिक आतंकवाद का आश्रय लिया गया। बस, इस समय से पूँजीवाद ने

एक नवीन रूप धारण किया। यह नवीन रूप 'आर्थिक साम्राज्यवाद' के नाम से प्रसिद्ध है।

4 *आर्थिक साम्राज्यवाद*

वर्तमान शासन और राजनीति का मूलाधार अर्थ है, अत इस युग के साम्राज्यवाद की भावना में भी विशाल अन्तर हो गया। उसका अर्थ से ही अधिक संबंध होने के कारण यह 'आर्थिक साम्राज्यवाद' (Economic Imperialism) के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में आर्थिक साम्राज्यवाद भी एक नवीन आविष्कार है। यह पूँजीवाद का निखरा हुआ स्वरूप आर्थिक साम्राज्यवाद ही संसार में युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का एक मौलिक कारण है, इसलिए हमें इसके स्वरूप को ठीक प्रकार जान लेना उचित होगा।

आर्थिक साम्राज्यवाद एक नवीन पद है, जिसे हम बीसवीं सदी से पहले के शब्द-कोषों में नहीं पाते। इसका विकास अपने वर्तमान रूप में बोअर युद्ध (Boer War) के बाद ही हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरी भाग में उद्योगवाद और राजनीतिक क्रान्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचे थे। अब वे साम्राज्यवाद की नवीन आत्मा को ग्रहण कर उन्नति करना चाहते थे। इंग्लैंड ही व्यवसाय और उद्योग में अग्रगण्य था, इसलिए उसे सबसे प्रथम अपना बाजार ढूँढने के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता पड़ी।

सन् 1875 ई० में इंग्लैण्ड में डिजरैली ने सबसे पहले 176,602 सैकडे डालर का अंग्रेजी सरकार के लिए स्वेज नहर में हिस्सा खरीदकर और महारानी विक्टोरिया को 'भारत की सम्राज्ञी' घोषित कर आर्थिक साम्राज्यवाद की नींव डाली। 1880-90 में मलाया, बर्मा और बलोचिस्तान भी अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिये गये। इसके बाद डिजरैली की नीति का समर्थन करते हुए जोसफ चेंबरलेन अपने को एक दल का नेता बनाकर ब्रिटिश-साम्राज्य की जड मजबूत करने के लिए चेष्टा करने लगा। इसी बीच फ्रान्स के तृतीय प्रजातन्त्र-शासन ने अल्सेस-लोरेन के हाथ से निकल जाने पर बडे उत्साह और जोश के साथ राज्य-विस्तार के लिए प्रयत्न किया। केवल बीस वर्षों में 35 लाख वर्गमील के प्रदेश को जिसमे 260 लाख मनुष्य रहते थे, फ़ान्स के साम्राज्य के अन्तर्गत किया गया। साम्राज्यवादी हैम्बर्ग के व्यापारियो ने बिस्मार्क को अपने विचारो का अनुयायी बना लिया और जर्मन-साम्राज्य ने बहुत शीघ्र अफ्रीका में 10 लाख वर्गमील के प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमा लिया। रूस, जापान, स्पेन, पुर्तगाल और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका इस प्रतिस्पर्द्धा मे पीछे न रहे। उन्होने भी अपने साम्राज्यो में खूब वृद्धि की, यहाँ तक कि बेलजियम-जैसे छोटे राष्ट्र ने भी अपनी मातृभूमि से अस्सी गुना अधिक भूखण्ड पर अपना उपनिवेश स्थापित किया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम और

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में यूरोप के राष्ट्रो ने समस्त ससार का बॅटवारा कर लिया था। जब शुरू-शुरू में उपनिवेश हथियाये गये, तब समझौते और सहयोग से काम लिया गया। यदि फ्रान्स इन्डो-चाइना पर अपना अधिकार स्थापित करता तो इग्लैंड शान्त रहता, यदि इग्लैंड सिगपूर पर कब्जा करता तो फ्रान्स चुप रहता, परन्तु जब सब देश अधिकृत हो चुके और बँटवारे के लिए अधिक प्रदेश न रहे, तब उपनिवेशो के लिए यूरोपीय राष्ट्रो मे संघर्ष होने लगा।

5 *प्रतिस्पर्द्धा का यथार्थ उद्देश्य*

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, पूँजीवाद को अपनी सफलता के लिए बाजार की आवश्यकता थी। राष्ट्रीय बाजार अनेको पूँजीपतियो के कारण यथेष्ट लाभप्रद सिद्ध नही हुआ। अतः अपने देश से बाहर नवीन बाजारो की खोज हुई। इस प्रकार उपनिवेशो की स्थापना हुई। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि इन उपनिवेशो पर अधिकार जमाने का मूल उद्देश्य आर्थिक था। उनमें यूरोप में उत्पन्न तथा निर्मित वस्तुएँ अधिक मूल्य पर बेची जा सकती थी, और इन उपनिवेशो से खाद्य सामग्री और कच्चा माल अधिक सस्ता मिल सकता था।

उपनिवेशो पर अधिकार जमाने से ही कोई देश कच्चे माल की प्रतिद्वद्विता में अपने प्रतिद्वन्द्वी देश को हरा सकता है। उपनिवेश यदि स्वतत्र रहे, तो वे कच्चे माल पर एकाधिकार कर

अपने देश के लिए अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्टा कर सकते है। ज्यो-ज्यो पूँजीवाद बढता गया, कच्चे माल की माँग भी बढती गयी। कच्चे माल की प्रतियोगिता ज्यो-ज्यों बढती गयी, त्यों-त्यों उपनिवेशो पर आधिपत्य जमाने के लिए झगडा बढता गया। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र यह चाहता है कि अधिक से अधिक उपनिवेश उसके निज के अधिकार मे रहे, क्योकि वैसी अवस्था मे ही वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने और कम मूल्य में कच्चा माल प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

6. *पूजीपति के पीछे सेना*

जब व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता विकट रूप धारण कर लेती है और पूँजीपति को अपने माल की खपत करने मे असफलता मिलती है, तब विभिन्न देशो के पूँजीपतियो मे संघर्ष होने लगता है। उनकी सहायता के लिए उनके राष्ट्रो की सशस्त्र सेनाएँ रणभूमि में आ जाती है। यह कोई अस्वीकार नही कर सकता कि ब्रिटिश ने मिश्र देश पर अधिकार इसलिए जमाया कि ब्रिटिश-पूँजीपति वहाँ अपनी पूँजी लगा सके। दक्षिणी अफ्रीका का युद्ध केवल सुवर्ण-खानो को अधिकृत करने के लिए ही हुआ था। फ्रान्स ने नेपोलियन तृतीय के अधीन मेक्सिको पर इसलिए आक्रमण किया था कि मेक्सिको में पूँजी लगानेवाले फ्रेंच पूँजीपतियो की रक्षा हो सके। अमेरिका ने पूँजीपतियों के हित के लिए ही निकाराग़ुआ, हेटी, प्रेमिको को अमेरिका के समान बना दिया। रूस-जापान

का युद्ध मंचूरिया में लकडी की रियासतो की रक्षा के लिए ही किया गया था। कोंको के बर्बरतापूर्ण आतंककारी अत्याचार, मेक्सिको के तेल के लिए ब्रिटिश और अमेरिका के पूँजीपतियो की लडाई, ट्यूनिस को फ्रेंच का पराधीन राज्य बनाना, जापान-द्वारा कोरिया की राष्ट्रीयता का विनाश, इन सब युद्धो का ध्येय एक ही था। यद्यपि युद्ध-घोषणा करते समय अपने-अपने विविध मानवीय लक्ष्यो की ओर ध्यान आकृष्ट किया था, तथापि पूँजीपतियो ने बडी सफलतापूर्वक अपने हितो की रक्षा के लिए अपनी-अपनी सरकारो को आग्रह किया कि वे राष्ट्रीय हितो के लिए लडें। एक प्रकार से सरकार और पूँजीपति में अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया। यहाँ तक कि पूँजीवादी के हितो पर आक्रमण राष्ट्रीय अपमान माना जाने लगा।

ऐसी स्थिति मे राज्य के पास सेना के अतिरिक्त रक्षा का और क्या साधन रह जाता है? राज्यो ने अपने-अपने पूँजीपतियो की रक्षा के लिए सशस्त्र सेनाएँ भेजकर युद्ध किये।

पूँजीवाद के इस विकास को भली भाँति हृदयगम कर लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब आर्थिक साम्राज्यवाद ने ऐसा स्वरूप धारण किया और राज्य के ऊपर पूँजीवादियो-द्वारा लगायी गयी पूँजी के ब्याज सग्रह करने का भार सौंपा गया तो व्यापारिक सम्बन्धा में बडा क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। इसके लिए शक्तिशाली राज्य अपेक्षित था और इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि राज्य की

भौतिक शक्ति यथेष्ट होनी चाहिए। इन बाहर लगायी गयी पूँजियो की रक्षा के लिए स्थल-सेना और नौ-सेना में अधिक वृद्धि की गयी, पर इस सैनिक व्यय की वृद्धि का अर्थ यह था कि पूँजीपति नवीन जनसहारी अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करने मे अपनी पूँजी लगावें। इस प्रकार शस्त्र-निर्माता कारखाने और कम्पनियो का राज्य के परराष्ट्र-विभाग (Foreign Department) की नीति पर प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था।

इस प्रकार अस्त्र-शस्त्र-निर्माता कम्पनियो के हितों की रक्षा करना राज्य का एक विशेष कर्तव्य बन गया। जब पूँजीपतियों की सहायता के लिए राज्य अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित तैनात रहने लगे, तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्र किसी युद्ध के लिए अपने राष्ट्र को सबल बनाने के निमित्त गुट (alliance) बनाने लगे। (इन गुटबन्दियो का उद्देश्य ही अपने हितों की रक्षा करना था तो ये युद्ध के कारण क्यो नही बनेगी?)

अवलम्ब

श्री राधाकृष्ण

उस पुराने-धराने घर में न जाने कितने परिवारों का निवास है। उन्हीमे से एक घर मे सीताराम रहता है। सारा घर बिलकुल सडियल है। खासकरके सीताराम का अपना कमरा देखने लायक है। उपदंश के रोगी की तरह चारों ओर घायल दीवारें खडी है। पलस्तर लोना हो-होकर छूट रहा है। एक लोहे की टूटी-सी पुरानी चारपाई है, जो किसी समय अच्छी रही होगी। फटे-पुराने बिस्तर है, मैले। सिरहाने अंग्रेजी-हिन्दी किताबो का एक बोझ पडा हुआ है। कुछ किताबों के पन्ने फट गये है और कमरे में चारो ओर बिखरे पडे है। कोने मे एक सुराही है, उसके समीप काच का एक गिलास है। दीवार पर कुछ अंग्रेजी अखबारो से काटकर निकाले गये चित्र टंगे है। उनमें देशी-विदेशी दृश्यावलियो की झाँकी है, सुन्दर है। सबसे अच्छी है उनमें महात्मा गान्धी की एक तसवीर।

यही कमरा है जहाँ सीताराम रहा करता है उसकी भृकुटियाँ तनी रहती है। हाथ में नीले-लाल रंग की पेंसिल लेकर किताबो पर सिर झुकाये वह न जाने क्या-क्या सोचता रहता है। बडी देर पर वह कुछ मुस्कुराता है और किताब पर कही लाल रग से निशान बना देता है।

संसार में बसन्त आता है, जाडा आता है, भांति-भांति की ऋतुएँ अपनी राह चलती है, लेकिन उस कमरे मे सदा एक ऐसी ऋतु बनी रहती है जिसका अस्तित्व बाहर के संसार मे और कही भी नही देखा जा सकता। कमरे मे ऊपर छत के साथ चिपकी एक टाट की चॉदनी है। वह भी जगह-जगह पर फट गयी है, चारो कोनो मे मकडो का जाला तना है, जहॉ सर्वदा मच्छरो का समूह सगीत-चर्चा मे मरत रहता है।

कमरे के बाद एक छोटा-सा बरामदा, नाममात्र का ऑगन, एक ओर कमरा, ओर कुछ नही। ऑगन की ओर की खिडकी सदा खुली रहती है, उस खिडकी से होकर आनेवाली हवा में एक विचित्र ठण्डक, एक विचित्र गंध मिली होती है, जैसे कुछ पत्रों के सडने की-सी दुर्गन्ध हो। किसी नये आगन्तुक को यह गध अच्छी नही लग सकती।

सीताराम एक कम्पनी में किरानी हे। पचासों क्लर्को के बीच वह सबसे जूनियर है। बीस रुपये का वेतन है, जिससे रोटी चलती है। वह खुद हजामत बना लेता है, उसकी स्त्री खुद बर्तन मॉजती है, कपडे-लत्ते धो लेती है। तीन लडके-बच्चे भी है, जो सुख की अपेक्षा अधिक झझट है।

सीताराम को सुबह से लेकर दस बजे तक फुरसत रहती है। दोपहर में वह आफिस जाता है। उसका आफिस क्या है, बिलकुल गोरखधन्धा है। वहॉ के और सभी लोग बंगाली है।

उनके सुख-दुख, हँसी-दिल्लगी सब कुछ अपने ही लोगों में सीमित है। सीताराम से न कोई प्रीति रखता है और न सरोकार। अक्सर वे लोग उसकी अनुपस्थिति में उसका मजाक उडाते हैं। सीताराम वहाँ सबको नापसन्द है और बेमेल बनकर रहता है। लोग उसके कामो की त्रुटियाँ निकालना ही सबसे अधिक मनोरञ्जन की सामग्री समझते है। बार-बार गलतिया के लिए उससे कैफियत तलब की जाती है। कैफियत का जवाब ता वह दे लेता है, लेकिन उसका कलेजा धक-धक करता रहता है कि कही किसी बहाने से उसे हटाकर उसकी जगह किसी बगाली को न दे दी जाय।

यह बीस रुपयों की नौकरी है कि झझट है! इस नौकरी की उलझन सुलझाये नही सुलझती। बोझ सँभाले नही सँभलता, वह सदा सब सीनियर लोगो से त्रस्त रहता है। अगर यह रोजी छिन जाय, तो वह जाएगा कहाँ? ऐसी अमंगल की छाया सदा उसके पीछे-पीछे दौडती रहती है।

(गरीबा के दोस्त नही होते। दोस्ती मतलब की होती है। गरीबो से भला क्या मतलब सधे ?) सीताराम का कोई दोस्त नही, अपने भी नही। वह सदा का अकेला है, हमेशा अपने को अकेला ही पाता है।

और यह जो उसके सिरहाने किताबों का बहुत बडा बोझ पडा हुआ है, उसमें न कोई महाकाव्य है, न धर्म-ग्रन्थ और न कोई

उपन्यास ही। ये महज कारखानो, दूकानो के सूची-पत्र है। न जाने कितनी कम्पनियो के कैटलाग होगे, ह्वाइटवे लैडला, बंगाल स्टोर, सुख-सचारक कम्पनी, शृङ्गार-महौषधालय, आयुर्वेदी फार्मेसी, शक्ति-औषधालय, थैकर स्पिक, न्यूमैन न जाने कितने। और उसकी यह आदत भी है कि जहाँ किसी नयी कम्पनी का नाम मिला कि उसने पोस्ट कार्ड रवाना किया। फिर तीन-चार दिनो के अन्दर ही पोस्टमैन आकर उसके कमरे में एक बन्द सूची-पत्र फेक जाता है।

बस, ये ही सूची-पत्र आते है और न किसी की चिट्ठी आती है, न पत्री। दुनियाँ मे उसका कही कोई नही है।

स्त्री अपढ है। पैसो के अभाव की चर्चा वह निरन्तर करती है। दिन-रात पैसो की हाय-हाय! सीताराम इस खटराग से चिढ जाता है, कोई ऐसी भी चीज चाहिए जिसे पाकर वह अपनी दुखद स्थिति को भूलकर कुछ सुख पावे। दुनियाँ मे सब कुछ पैसो से मिलता है। तो फिर ये ही सूची-पत्र उसके मनबहलाव के सामान है।

दुनियाँ में सूर्योदय हुए बहुत देर हो चुकी थी, लेकिन सीताराम के कमरे में न सम्पूर्ण अन्धेरा ही था और न पूरा प्रकाश। परिवर्तन से सर्वथा मुक्त यह कमरा साँझ-बिहान सदा इसी तरह का रहा करता था। आसपास के रहनेवाले किरायेदार अपने-अपने काम के पीछे व्यस्त थे। उसके बगलवाले कमरे में आज गीत-गान का प्रबन्ध था। हारमोनियम के किसी ख़ास स्वर के साथ

तबले के मिलाने की ठिं-ठिं-धप्प की आवाज आ रही थी। गली के उस पार सामने रहनेवाला दूकानदार अपनी एक बूढी ग्राहिका से पुराने पैसों का तकाजा करने के पीछे निस्सङ्कोच होकर गालियों का प्रयोग कर रहा था। बुढिया गाली का जवाब गाली में तो न देती, लेकिन अपने कण्ठ-स्वर को उसने इतनी तरक्की दे दी थी कि बरबस लोगों का ध्यान उस ओर खिंच जाता था।

घर के भीतर उसकी स्त्री बर्तन माँज रही थी और अपनी सप्तवर्षीया पुत्री निर्मला को चूल्हे की आग को फूँकने का आदेश दे रही थी।

समीप के एक विद्यार्थी के कमरे में होहल्ला मचा हुआ था। लोग अश्लील दिल्लगियाँ कर रहे थे और उजड्ड की तरह हँस रहे थे। लेकिन सीताराम का ध्यान किसी ओर भी नहीं था। वह एक पैराम्बुलेटरवाले का सूची-पत्र लेकर उसके पन्ने उलट रहा था। बाज वक़्त वह घण्टों पन्ना नहीं उलटता। पेंसिल को ललाट से सटाकर बहुत कुछ सोचता और तब धीरे से किसीपर एक लाल निशान बना देता। उस समय उसकी आँखें चमकती रहती, मुखमण्डल दमकता रहता।

वह तीस-बत्तीस से ज्यादा उम्र का नहीं होगा, लेकिन गालों में गड्ढे पड गये थे। आँखें धस गयी थी, ललाट के ऊपर सिर के बहुत-से बाल उड गये थे। देखने में पचास पर पहुँचा हुआ लगता था। ललाट पर सिकुड़न और हड्डी पर लगे

चमडे की कालिमा बतलाती थी कि यह हँसी-खुशी के जीवन को छोड बहुत आगे बढ गया। मैली धोती, आँखो पर बहुत ज्यादा पवर का चश्मा, देह पर छिद्रो से परिपूर्ण एक जापानी गजी पहने वह चुपचाप सूची-पत्र पढ रहा था।

वह क्या पढता था? अक्सर वह सूची-पत्र में लिखी सारी चीजो की तारीफ पढता। जिन चीजो की उसे जरूरत होती या जिन चीजों की खासी तारीफ रहती, उनपर उसका मन ललचना स्वाभाविक था। फिर पसन्द हुई चीज पर पेंसिल से एक लाल दाग दे देने में हर्ज क्या है? कभी किसी सुविधा के समय वह इन चीजों को मँगाएगा। उस समय उसके पास काफी रुपये होगे। सम्भव है कि उस समय किसी लाटरी में उसका नाम निकल आये या यह भी सम्भव है कि उस समय तक वह हेड क्लर्क हो जाय। उसे ऐसा लगता, मानो वह दिन बहुत समीप ही है, जैसे कल ही। वह सूची-पत्र से चीजो को पसन्द करता। जी में तरह-तरह की कल्पनाएँ उठती। सुख की हिलोरें आने लगतीं। वह भूल जाता कि वह एक महानिर्धन आदमी है और सुख उसके जीवन में शायद कभी नही आनेवाला है।

जैसे साझ के रगीन आसमान मे दूर पर उडती हुई चिडियाँ ऐसी लगती है मानो यह क्षितिज से सट ही गयी हो, लेकिन सम्भवत वह क्षितिज से उतनी ही दूर रहती है जितनी दूर से देखनेवाला उसे क्षितिज के बिलकुल समीप देखता है। सीताराम के

मन की यही हालत थी। अपनी कल्पना में वह क्षितिज के निकट पहुँच जाता। अभाव शायद उसे कोई भी अभाव नही। वह इन चीजा को पसद कर रहा है, तो फिर मगाये क्यो नही?

यह पैराम्बुलेटर बहुत ही अच्छा है। मेरी छोटी-सी शैला इसपर खूब शोभेगी। साझ को वह उसे पैराम्बुलेटर पर बिठावेगा। घर के सब लोग चलेंगे। उसकी स्त्री पैराम्बुलेटर को सडक पर चलाती चलेगी। दोना मुस्कुराकर बाते करेगे। आह! उस समय कितना सुख होगा! लेकिन उसका पाँच वर्ष का लडका त्रिपुरारी भी पैराम्बुलेटर पर चढने के लिए मचल उठेगा। अरे, वह तो बात-बात पर जिद ठान लेता है। मन की बात न हो तो रोने लगे। तो हर्ज क्या है? पैराम्बुलेटर कुछ छोटा नही, कमजोर भी नही। तसवीर में इतना अच्छा लगता है, तो देखने मे कितना अच्छा होगा। बैठ जाएगा त्रिपुरारी भी, क्या हर्ज है? वह रोता है तो अब उसे समझावे कौन? और निर्मला मेरी उगली पकडकर चलेगी। वह बहुत बकबक करती है। एक-एक चीज को देखकर पूछेगी कि यह क्या है, तो इसका क्या होता है, यह बना कैसे। ऊँह, मै तो जवाब देते-देते परेशान हो जाऊँगा। अरे! यह दूसरा पैराम्बुलेटर तो उससे भी अच्छा है! उफ, कितना सुन्दर! शैला के लिए वह इसी पैराम्बुलेटर को लेगा। दाम? इसकी तीन किस्में है। सबसे बढिया 125), उससे कम 110) और सबसे घटिया अभी जब इस तरह का पैराम्बुलेटर लेना ही है,

सबसे बढिया क्यों न ले? लूँगा तो बस, सवा सौ का लूँगा। चीज देखते हुए दाम कुछ ज्यादा नही। नीचे स्प्रिंगों की भरमार है, और चमक कितना रहा है! न, वह जरूर इसीको लेगा।

सीताराम ने पेंसिल से उसपर निशान बना दिया। और, ये बच्चों के लिए ट्राइसाइकिल्स है। लेकिन जब पैराम्बुलेटर आ जाएगा, तो फिर यह साइकिल किसलिए? अरे हाँ, त्रिपुरारी आह, वह इसे पाकर कितना खुश होगा! किसीको छूने भी नही देगा। साइकिल पर चढकर वह मचला-मचला फिरेगा, और फिर शैला के लिए जब ऐसा सुन्दर पैराम्बुलेटर आ रहा है, तो त्रिपुरारी के लिए कुछ न आये, यह अन्याय है। उसके लिए भी एक साइकिल जरूरी है। यह इसका कितना दाम है? बीस? नही, नही, वह इससे अच्छी चीज लेगा। और क्या उस गरीब निर्मला के लिए कुछ भी नही? उसके लिए भी एक साइकिल लेनी जरूरी है। वह स्कूल जाएगी न। मगर भीड-भक्कड में उसका साइकिल पर चढकर जाना ठीक नही। सयोग को कौन कह सकता है? स्कूल की लारी पर ही स्कूल चली जाया करेगी

"सीताराम बाबू!"

एक कर्कश आवाज सुनायी पडी। सीताराम ने चौंककर उसकी ओर देखा। वह झुंझला उठा था और भीतर ही भीतर घबरा गया था। यह घर का मालिक था और पिछले छ: महीने का

किराया माँगने आया था। सीताराम वादे पर वादे करके टाल देता और किराया बराबर बढता चला जा रहा था।

उस घर के मालिक को सीताराम के काल्पनिक पैराम्बुलेटर पर तनिक भी तृष्णा नही थी। उसे अपने रुपयों से मतलब था। कठोर स्वर में बोला—"साहब, आप तो अच्छे आदमी है। मै जब आता हूँ, आप बराबर टालमटूल करते है। आखिर रुपया इतना बढ गया है, फिर आप देंगे कहाँ से? आज मेरा पूरा-पूरा हिसाब चुकता कर दीजिये। अब बिना जोर-जुल्म किये आप नही मानेंगे "

सीताराम की आँखें त्रस्त और करुण हो आयी, मानो वह घोर जंगल के बीच भेडियो से घिर गया हो। उसने बडे विनीत भाव से कहा—"बाबू साहब, आज मुझे माफ करना पडेगा।"

बाबू साहब ने पूछा—"आखिर आप कोई खास दिन भी तो बतलाइये। यो ही रोज-रोज दौडकर मै कब तक आऊँ?"

सीताराम का मन शान्त हुआ। उसने बिना कुछ सोचे-विचारे बडे सहज स्वर में कहा—"आप सत्ताईस तारीख को आकर अपना कुल रुपया ले जाइये।"

सीताराम के कहने का ढग ऐसा था, जैसे सत्ताईस तारीख को वह किसी राजा को भी तृप्त कर सकता है, जैसे उस दिन वह कोई करोडपति हो जाय!

लेकिन उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि उस दिन वह घर से बहुत दूर टहलने जाएगा, जहाँ पर बाबू साहब की परछाईं भी नही पहुँच सकती रुपये? भला जो धेले-धेले के लिए तरसता हो।

सेठजी के जाने के बाद वह बडी अशान्ति अनुभव करने लगा। सचमुच बडी गर्मी पड रही थी। उसे भूख भी मालूम होने लगी। वह सूची-पत्र देखने के फेर में सब कुछ भूल गया था। आज न उसने कुछ जलपान किया था और न चाय ही पी थी। उसने उठकर अपना काठ का बक्स खोला। एक कोने में एक चवन्नी रखी थी और कुछ पैसे। अभी महीने में आठ दिन बाकी थे और फुटकर खर्च के लिए केवल इतना ही व्यापार था। उसने पैसों को लेकर गिना। सात थे। वह दो पैसे की एक प्याला चाय पिएगा, दो पैसे का जलपान करेगा, तीन पैसे बचे रहेंगे, जिनमें से वह एक पैसे का पान खाएगा। उसने सोचा—इन बाकी दो पैसों को रख ही दूँ। बेकार ले जाने से कोई लाभ नही, सम्भव है, खर्च हो जायँ। फिर कह उठा—अरे, लिये ही चलूँ।

(3)

एक दिन सुबह को सीताराम सदा की भाँति बैठा हुआ कैटलाग देखने में व्यस्त था। ह्वाइटवे-लैडला का नवीन सूची-पत्र आया था। सीताराम की खुशी का कोई ठिकाना नही। उसने देखा, कई चीजों की कीमत घट गयी है, कुछ की बढ गयी

है। वह तरह-तरह की चीजो को पसन्द कर रहा था। अपने लिए कोट, जूते और क्या-क्या मँगाएगा। निर्मला, त्रिपुरारी, शैला सबके लिए अच्छी-अच्छी चीजें आएँगी। वह खुश था, अपने को व्यस्त समझ रहा था।

उसकी स्त्री चम्पा आकर बोली—"तुम फिर वही खटराग ले बैठे! रात को तुमने वादा किया था न कि शैला को आज अस्पताल ले जाओगे?"

शैला सबसे छोटी लडकी थी। इधर दो दिन से बीमार थी। शरीर तपता रहता, बार-बार हिचकी और उबकाई आती और बेचारी कलपकर रो उठती।

रात को सीताराम ने कहा था कि सुबह इसे अस्पताल ले जाऊँगा। लेकिन वहाँ पर भी कोई अच्छी दवा मिलने की उसे उम्मीद नहीं थी, इसी कारण सूची-पत्र के पन्ने उलट रहा था।

स्त्री की बात सुन वह मन ही मन अत्यन्त लज्जित हुआ और झूठमूठ चौंकने का भाव दिखलाकर बोला—"ओहो, मै तो भूल ही गया था। लाओ-लाओ, जरा मेरा छाता ले आओ।"

हाइटेवे लैडला के यहाँ के बारह रुपये जोडे जूते पहनने का हौसला रखनेवाले सीताराम ने पैरो मे सवा बरस के चप्पल पहने, पैवन्द से परिपूर्ण छाता लिया और शैला को गोद में लेकर अस्पताल की ओर चला।

सुबह के आठ बज चुके थे। मई महीने की धूप अपना रंग दिखला रही थी।

बाजार खुला हुआ था। लेन-देन, क्रय-विक्रय, इक्का-तांगा, मोटर-फिटिन आदि सब कुछ का शोरगुल एक अजीब तरह का लगता था।

एक तो बुखार और दूसरे बाहर की गर्मी, शैला पिता के कन्धे पर चिपक गयी थी।

सीताराम धीरे-धीरे कभी उसका माथा सहलाकर कह उठता—"डर नहीं, बेटी, डर नहीं! हम लोग अस्पताल जा रहे है। वहाँ डाक्टर तुम्हें खूब मीठी दवा देगा।"

शैला क्या बोलती? उसे बोलना आता भी नहीं था। उसकी आँखें बन्द हो गयी थी और वह जोर-जोर से साँस ले रही थी।

अस्पताल में पहुँचकर भी उसे शैला को दिखलाने की सुविधा नहीं मिली। डाक्टर वहाँ पर रोगियों की भीड से घिरा हुआ था। कोई कायदा नहीं, जो पाता वही आगे बढकर डाक्टर को अपना रोग बतलाता। डाक्टर किसीको जरा यो ही कुछ देख लेता और नहीं तो केवल बात सुनकर ही प्रिसक्रिप्शन लिखकर दे देता। भले आदमी यानी जिनके कपडे साफ थे, गले में सोने के बटन चमक रहे थे, उन लोगो से डाक्टर कुछ दिलचस्पी दिखलाकर बातें करता था।

सीताराम आशा से देख रहा था कि जरा भीड छँटे तो वह शैला को दिखलाये। लेकिन ग्यारह बज गये, डाक्टर को फुरसत नही मिली और वह यकायक कुर्सी खिसकाकर उठकर खडा हो गया। सीताराम उसकी ओर बढा आ रहा था, जिसे देखकर डाक्टर बोला—"अब, अभी नही! अब शाम को आना।" और उसने टँगे हुए टोप को उतारकर सिर पर रखा और चल दिया।

कमरा खाली हो रहा था। बाहर रोगी आपस मे तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कम्पाउण्डर की खिडकी पर लोगो के सिर झुके हुए थे। भीड खूब थी।

सीताराम शैला को लिये उसी चिलचिलाती धूप में घर लौटा। आज आफिस पहुँचने में उसे काफी देर हुई थी, जिसके लिए हेड-क्लर्क की झिडकियाँ भी सुननी पडी।

(4)

रात हो गयी थी। सीताराम के कमरे में फूटी चिमनी की लालटेन जल रही थी। उसके सामने दवाइयो का एक सूची-पत्र था, जिसमें से वह शैला के लिए एक दवा चुन रहा था।

चम्पा ने आकर कहा—"तुम शाम को भी उसे अस्पताल नही ले गये। अभी चलकर देखो तो, बेचारी छटपटा रही है।"

सीताराम ने उसकी ओर झुंझलाई आँखो से देखा, किन्तु कुछ कहा नही।

अभी वह एक अच्छी दवा पा गया था। उस दवा की एक दो खुराक से ही बच्चो का कैसा भी बुखार छूट सकता था।

सीताराम की ऑखो की ओर देखकर चम्पा सहम गयी। कातर-सी होकर पूछा—"क्या कुछ जरूरी काम कर रहे हो?"

सीताराम ने सरोष कहा—"तुम यहॉ से भागो, बेवकूफ कही की।"

फिर उसने सिर झुका लिया और बगाल केमिकल के सूची-पत्र में से कोई बहुत ही अच्छी दवा ढूढने लगा। वह इतना व्यस्त हो गया था मानो सूची-पत्र की दवा पाकर ही शैला अच्छी हो जाएगी।

आखिर आधे घण्टे बाद मनचाही दवा मिली और उसी समय चम्पा घबरायी हुई कमरे में आकर बोली—"अरे, आओ तो, जरा उसे देखो। हाय भगवान्!" वह अधीर थी और फफक-फफककर रो रही थी। मॉ का रोना सुनकर दोनों बच्चे भी रोते-रोते कमरे में घुस आये।

सीताराम ने कैटलाग को फेक दिया और उठकर बोला—"घबराओ नही, उसे मेरे पास लाओ। मै उसे अभी किसी डाक्टर के यहॉ ले जाता हूँ।"

वह जानता था कि बक्स में कुछ भी नही है, लेकिन फिर भी बक्स को खोलकर डाक्टर की फीस और दवा के दाम के लिए पैसे खोजने लगा।

मुग़ल काल में हिन्दू-मुस्लिम व्यवहार और त्योहार

श्री जगबहादुर सिंह

[प्रस्तुत लेख मे श्री जगबहादुर सिंह ने मुगल कालीन हिन्दू-मुसलमानों के मधुर और सद्भावना पूर्ण सम्बन्ध की एक झांकी हमारे सामने रखी है। नवभारत के निर्माण में हमें इस प्रकार की सद्भावना की नितान्त आवश्यकता है। हमारा विश्वास है कि इसकी स्थापना मे हमारे साहित्यिक बहुत ही महत्वपूर्ण भाग ले सकते हैं और राष्ट्र निर्माण के कार्य में उनकी सेवा बहुमूल्य सिद्ध हो सकती है।]

मुगल काल में हिन्दुत्व और इस्लाम के लिपट और चिपटकर मिलने से जो तहजीब या संस्कृति बनी, उसका जलवा इस देश की हवा, मिट्टी और पानी में प्रकट हुआ। तब न रेल-गाडियॉ चलती थी, न रेल्वे स्टेशन होते थे, न प्यासे यात्रियों की बिना हीलो-हुज्जत प्यास बुझाने के बजाय पानी के छिछोरे घडे छलक-छलककर कहते थे, 'हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी।' तब पालकियॉ चलती थी या चंडोल चलते थे, दोनो ही आदमियों के कधो पर चलते थे, या हाथी की चौडी, नही तो ऊँट की कुबड़ी पीठ पर अंबारियॉ चलती थी, जिनमें सवार होकर लोग मंजिल पर मंजिल पार करते थे। सपाटे भरने के लिए तीर से भी तेज यह-गये-वह-गये घोडे इस्तेमाल किये जाते थे। स्त्रियॉ भी अश्वारोहण करती थी। उजबक और तातारी औरतें तो, जो सफ़र मे मुगल रानियो की रक्षा करने के लिए उनके साथ हुआ करती थी, पक्की घुडसवार होती थी।

राजपूत रमणियाँ भी तुरंगारूढ होकर हवा से बाते करना जानती थी। सवारियो मे ही नही, कुछ लिबासो में भी मुगलो के जमाने में इस प्रकार की हिन्दू-मुस्लिम मिलाजुली हो गयी थी कि दो-चार चीजो को छोडकर बाक़ी की परख मुश्किल थी कि कौन हिन्दू पोशाक है और कौन मुस्लिम। पर्शिया जहाँ से मुगल आये थे, ढीलमढाल कपडो का घर था। हिन्दुस्तान मे मुगलो ने बदन से सटे कपडे पहनने शुरू कर दिये। धीरे-धीरे अग-प्रत्यग की तराश के साथ कपडे की काट चलने लगी। राजपूतो और मुगलो के वस्त्राभूषण देखकर जल्दी-जल्दी यह भी कहना कठिन था कि कौन राजपूत रानी है और कौन मुगल मलिका।

मैने आजकल के रेल के यात्रियो ओर हिन्दू पानी और मुस्लिम पानी से बात शुरू की। फिर मुगल काल के घुडसवार यात्रियो के पास पहुँचकर मै भटक गया। उस युग मे मुसाफिरो को, ऐसे मुसाफिरों को जिनके गलो मे और जबानो पर प्यास के कांटे उग आये हो, शान्ति प्राप्त करने के लिए पनघट की पनाह लेनी पडती थी। वहाँ कुओं से हिन्दू पानी और मुस्लिम पानी की प्रतिध्वनि निकलकर वातावरण को कटु नही बनाती थी। वहाँ विकार-रहित सुन्दर युवतियो की मनहर मेहमाँनवाजी में जो वह अपनी उदार गगरियो से ढुलका-ढुलका देती थी, सब भेदभाव डूब जाते थे। इस आशय को व्यक्त करनेवाला पनघट के मुगल काल के सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम जीवन का एक जीता-जागता

चित्र लाहौर के मेयो स्कूल आफ आर्ट्स के प्रिंसिपल, खाँ साहब मियाँ मुहम्मद हुसेन के पास है जो लगभग तीन सौ बरस पुरानी है और उस समय तथा उसके कुछ पहिले के व्यवहार-विचार की झलक हमे इसमे दिखायी देती है। दूर, एक पहाडी के दामन से लगी हुई यात्रियो की एक लैन डोरी है। ऐसा मालूम होता है कि कोई शाहजादी पालकी मे मजे में बैठी हुई चली जा रही है और उसके अनुचर और रक्षक पैदल घोडो पर उसके साथ-साथ डोल रहे है। जो जरा नजदीक की पहाडी है उसके पास एक सफेद घोडे पर एक रानी-सी और एक मटमैले घोडे पर एक राजा-से व्यक्ति शान से डटे है। बिलकुल निकट एक प्यारा पनघट है। यह पनघट का दृश्य ही इस तसवीर की जान है। पनहारियाँ——या मनहारियाँ कुएँ के सीने पर जमी है और कुछ खडी है। हर एक ऐसी है जैसे सौन्दर्य और रस से मुँह तक भरी हुई सोने की कलसी। सभी के मुखमण्डल से स्वच्छ और सरल जीवन की निर्भीकता और स्पष्टता टपकती है। सबकी सब हिन्दू नागरिक मालूम होती है। पास ही एक चपल तुरंग पर सवार एक नौजवान खडा है, वह कोई मुसलमान शाहजादा मालूम होता है। प्रतिष्ठित यात्री के मुखमण्डल से सौजन्य साफ टपक रहा है। पर ऐसा लगता है कि कुछ माँगनेवाले है। उस चित्र की पनिहारियाँ यो कहती हुई-सी दिखती है——'क्यो जनाब, क्या, पानी चाहिए? ठहरिये, शीतल जल भी मिलेगा और

निर्मल स्नेह भी मिलेगा।' कैसी अच्छी यह मुगल काल की तसवीर है! (आधुनिक काल मे हिन्दू और मुस्लिम आवश्यकता और आवश्यकता-पूर्ति के सम्मिलित क्षेत्र की जब आँखें खोज करती है, तो वह 'हिन्दू पानी और मुस्लिम पानी' के घडों का अखाडा देखती है, जहाँ वे कम्बख्त घडे टकराते और टूटते है।)

मुगल साम्राज्य की ज्योति अच्छी तरह जगी भी नहीं थी कि मीठी हिन्दू-मुस्लिम स्नेह की धारा ने राजपूताने की रेत को तृप्त कर दिया। एक पीडित दुखिया राजपूतनी की राखी स्वीकार करके हुमायूँ ने बहिन-भाई की प्रीति की रीति दिलोजान से निभायी। वह एक हिन्दू चिह्न मुस्लिम ऐश्वर्य बन गया। अगर उन दिनों की हिन्दू-मुस्लिम तहजीब बिना टूटे-फूटे, टेढे-मेढे हुए आज तक चली आती तो हिन्दुओं और मुसलमानो का आज भी वही राखीवाला प्यारा रिश्ता होता। व्यक्तिगत व्यवहार में ही नही, सामाजिक त्योहार मे भी मुगल बादशाहों ने ऐसे उदाहरण इतिहास के सामने पेश किये जो भविष्य के पथ में उजाला फैलानेवाले मशाल बन गये। मुगल बादशाह जिस तपाक और हरारत तथा हँसी और खुशी से मुस्लिम त्योहारों में हिस्सा लिया करते थे, उसी उत्साह और स्फूर्ति तथा आनन्द और आह्लाद से हिन्दू त्योहारो में सम्मिलित हुआ करते थे। अकबर तो बेचारे, कट्टरता की ऐसी दुनियाँ में जहाँ न कभी आजादख्याली की हवा

बहती है और न विवेक का प्रकाश फैलता है, अपनी मजहबी दरियादिली के लिए बदनाम थे और बदनाम है।

संसार की बडी हस्तियो की ऐसी बदनामी ही जगत के लिए शान्तिप्रद और सुखदायी सास्कृतिक मित्रताओ की नीव होती है। पर अकबर ही नही, उनके लडके जहॉगीर भी---जिन्होने भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धान्तो को मिलाकर अपनी मर्जी के मुताबिक उनका निचोड निकालने का प्रयत्न नही किया—हिन्दू त्योहार बडी टीमटाम और धूमधाम से मनाया करते थे। उन्होने तुज्के जहॉगीरी में लिखा है—"सनिश्चर को दशहरा पडा। इस दिन शाही घोडे खूब सजाये गये और उनका शान से जुलूस निकाला गया। " त्योहार की रोचकता की तरह जहॉगीर का रोचक वर्णन चलता है। दशहरे का ही नही, दीवाली का भी मुगल सम्राटो के जीवन में ऊँचा स्थान था। सम्भवत. हर साल चक्र पूरा होने पर उनके ऊँचे महलो से दीपमाला चमचम चमक-कर हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक मित्रता प्रदर्शित करती थी। पुराने मुगल चित्रो को जुगत से जोडकर रखनेवाले दिल्ली के आइगर अण्ड स्वेगर कम्पनी के पास एक असाधारण चित्र है, जिसमें नूरजहॉ बेगम दीवाली मनाती हुई चित्रित की गयी है। चित्र पुराना है, औरगजेब के काल का। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि उस समय में भी दीवाली धूमधाम के साथ मनायी जाती थी। नूरजहॉ चित्रकार के सम्मुख चाहे मुँह

खोलकर न आयी हो, उनकी प्रतिच्छाया भले ही काल्पनिक हो, पर दीवाली अवश्य उसके सामने असंख्य लौ बनकर आयी, उसका चित्रण सच्चा है। मुगल सम्राट और सम्राज्ञी यह चित्तरंजक हिन्दू त्योहार दिल खोलकर मनाया करते थे।

लन्दनवाले चेस्टर बीटी के चिरसंचित चित्र-पुंज में, जो शाहजहाँ के अलबम से लिया गया है, एक ऐसा हृदय को गद्गद करनेवाला चित्र है, जिसमें जहाँगीर रंगमहल में होली की रंगरेलियो में मस्त व्यक्त किये गये है। वह चित्र देखने योग्य है। उसमें जहाँगीर देखते ही पहिचाने जाते है, चेहरे में हिन्दुस्तानियत ज्यादा और तैमूरियत कम, कान में मोती, पगडी, पोशाक दोनो हिन्दुस्तानी। अगल-बगल, सामने हिन्दू और मुसलमान ललनाओ का छोटा-सा, पर बडा शरारती मेला। दो ही लडकियों के सम्बन्ध मे यह पक्की तरह से कह सकते है कि वे मुसलमान है। क्योंकि उनके सिर पर तुर्की ढग की टोपियाँ सुशोभित है। और भी मुसलमान सुन्दरियॉ इस चुलबुले झुण्ड में होगी, पर उनको पहिचाना कैसे जाय? हिन्दू और मुसलमान स्त्रियो के वसन और भूषण में कोई भेद रह गया हो, तब तो उसके सहारे समझा जाए कि कौन-कौन है। सबने या तो कुरतियाँ पहिन रखी है या अंगिया और लहँगे। कहते है, अंगिया और लहँगों की बहार मुगलो ने राजपूताने में देखी और वह उनके दिलो पर कुछ ऐसी छा गयी कि मुगल महलो में भी अंगियाएँ कसकने लगी और

लहँगे लहराने लगे। कुरती जम्मू से मुगल महलो मे आकर फहराने लगी। तसवीर मे उनकी कसकन और लहरन और फहरान के साथ होली के जोबन का चढाव दिखाया गया है। जहाँगीर के एक तरफ एक लडकी है और दूसरी तरफ दूसरी आर आगन मे रग-बिरगे पानी की पिचकारियाँ चल रही है, और रग-बिरगे गुलाल और अबीर की मुट्ठियाँ खुल रही है। एक रूपवती लोच की कमान बनी पिचकारी चला रही है, दूसरी वैसी ही बनी पिचकारी भर रही है, तीसरी, चौथी, पाँचवी शरारत की पुडियाएँ बनी अपनी सहेलियो के मुखडे रगो से रग रही है। सफेद चाँदो को लाल, नीले चाँद बना रही है। एक चन्द्रमुखी की आँखो मे गुलाल या अबीर पड गया है और वह दोनो हाथो से अपने नथना को मल रही है। पास होली की तरग के साथ संगीत चल रहा है। एक रमणी डफ बजा रही है और दो-तीन रमणियाँ सँज बजा रही है। जिस देश की होली है, उस देश के यह दोनो बाजे नही है, पर उसके साथ खूब चल रहे है। जहाँगीर आदि मुगल सम्राटो ने इस प्रकार सांस्कृतिक सम्मिश्रण करके जो नैतिक अमृत उत्पन्न किया, उसीसे तो आजकल के हिन्दुस्तानी समाज के सूखते प्राण को तरावट मिलती है।

तुज्के जहाँगीरी में मुगल शाहँशाह ने अपने पिता की चलायी हुई एक ऐसी प्रथा का उल्लेख भी किया है, जिसमें मुस्लिम मृदुल भावोद्रेक और आनन्दोत्सव के साथ हिन्द अहिसा-सिद्धान्त

का बडा सुन्दर मिलान हुआ था। उस रस्म को जहाँगीर ने भी जारी रखा। हर साल वह रबी-उल-अव्वल की 18 वी तिथि से जो उनकी सालगिरह का दिन था, बराबर कई दिनो तक अपनी सल्तनत मे पशुओ की हत्या नही होने देते थे। इसके अलावा हर हफ्ते बृहस्पतिवार और इतवार को—दो दिन, कही कोई कुरबानी नही कर सकता था। इस प्रथा का राजनीतिक और सामाजिक मूल्य जो था, वह था ही, आर्थिक मूल्य बडा था। हमे दूध और घी सूघने को मुश्किल से मिलते है। हमारे पूर्वज दूध मे नहाते थे और घी के चिराग जलाते थे। कितनी उज्ज्वल और कितनी जाज्वल्यमान थी यह हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति! दान देने की प्रणाली इस्लाम धर्म के साथ ऐसी ही गुथी हुई है जैसी हिन्दू धर्म के साथ। तुलादान की प्राचीन हिन्दू रीति को मुगल बादशाहों ने दरबारी जशन-जलसो का एक विशेष अंग बनाकर सिद्धान्त की दृष्टि से कोई विशेष बात नही की। पर इससे उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक मित्रता पर अविनाशी शाही मुगल मुहर अवश्य लगा दी। अकबर से लेकर औरंगजेब तक प्रत्येक मुगल बादशाह तुलादान का महोत्सव मनाया करते थे। रेशम की रस्सियोवाले सोने के तराजुओ मे खास-खास दिन बैठकर वह अपने को सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात आदि से तुलवाया करते थे और अतुल धन साधु-सन्तो और दीन-दुखियो मे बाँट दिया करते थे। शाहजहाँ तो तुलादान के दीवाने थे। वह तुलादान

रचने के लिए बहाने की खोज मे रहा करते थे। कोई दावत या जियाफत का मौका आया नही, कि तुलादान हुआ नही। नौरोज के अवसर पर जो तुलादान होता था, वह पर्शियन चौखटे और शीशे में जडे हुए हिन्दुस्तानी चित्र-सा लगता था। यो तो अत्यन्त प्राचीन पोथियों की कथाओं के अनुसार ईरानी नये साल नौरोज की उत्पत्ति मे भी भारतीय प्रभाव पाया जाता है। कहते है, जमशेद जिन्होने नौरोज चलाया और कोई नही, वही हिन्दू कथानको में प्रतिष्ठित यमराज थे। जब ईरान मे नौरोज मनाने की प्रथा चली, तब लोगो की खुशी रंगीन, खुशबूदार पानी के फव्वारे बनकर, और रंग और चमक की आतिशबाजी बनकर छूटी। नौरोज क्या होता था, ईरानियो की होली-दीवाली एक साथ होती थी। वह एक दूसरे पर रंगदार पानी डालते थे और अग्नि के कौतुक करते थे। जब इस्लाम ईरान मे आया, तब उसने ईरान को ईदुल-फितर और ईदुल-जुहा दिया और ईरान का नौरोज अपना लिया। इस्लाम ने नौरोज के अवसर पर न जाने कितने साल अपनी आँखो के सामने प्रसन्नता से होली और दीवाली होते देखी। पर जब खलीफा मुताजिद ने यह देखा कि रंग खेलने के बहाने लोग आचार-व्यवहार की सीमा का उल्लंघन करते है और भ्रष्टता फैलाते है तथा आतिशबाजी ऐसी खतरनाक लापरवाही से छोडते है कि लोगो की जान जोखिम में पड जाये तब उन्होने रंग खेलना और आतिशबाजी छोड़ना धर्मविरुद्ध घोषित

कर दिया। वैसे इसलाम अनुदार नही ह। आखिर उसने ईदुल-जुहा को जिसे उसके जन्म के पहिले से ही मक्का-यात्री मानते आते थे, तुरत अपना बना लिया था न' हजरत मुहम्मद ने बिना हिचकिचाये इस कुर्बानी के त्योहार का जायज करार दे दिया था। वैसे तो ईदुल-फितर ही जो लबे व्रत का त्योहार है, मौलिक मुस्लिम त्योहार है। पर ईदुल-जुहा का महत्त्व और मान इसके महत्व और मान से कुछ कम नही है। शबेबरात भी एक इसलामी त्योहार ह। शबेबरात मनाना छोटी-मोटी दीवाली मनाने के बराबर है। इसे मनाने में मुसलमान खलीफा मुताजिद के नौरोजवाले आदेश को भुलाकर दनादन पटाखे दागते है, छर-छर अनार छोडते है, शॅ-शॅ छछूंदर दौडाते है। शबेबरात हिंदोस्तान की दीपमाला से सुसज्जित सस्कृति में स्वय ही खप गया। और ईद भी हिन्दोस्तान के व्रतधारी जीवन में सरलता से समा गयी। मुगल काल मे ईद, शबेबरात, नौरोज, वसत, होली, दीवाली, शिवरात्रि, दशहरा आदि राजा, प्रजा, सब बडे प्यार से और मजे में मनाते थे। खलीफा मुताजिद ने जब कहा कि रग न खेलो तब उनका यह मतलब था कि आचरण-भ्रष्ट होकर अपना मुँह काला न कर लो। यदि सभी हिन्दू और मुसलमान भ्रातृ-प्रेम और भगिनी-स्नेह के रग में डूबकर सुर्खरू हो जाएँ तो खलीफा साहब की आत्मा उन्हे सहर्ष आशीर्वाद देगी। वह चिराग जिससे हिन्दोस्तान में आग लगे, न सच्चे इसलाम को पसन्द आ

सकता है, न सच्चे हिन्दुत्व का। मुगल बादशाहों ने दीवाली के मौके पर हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का ऐसा चिराग जलाया, जिससे हमारा रास्ता आज तक रोशन है। उसे हम बुझा दें तो यह हमारी भयंकर मूर्खता है। मुगल सम्राटों ने ईद के अवसर पर ऐसी मिठाइयाँ बाँटी जिससे हमें आज भी शक्ति और चेतनता मिलती है। उसमें हम वैमनस्य-बिच्छू के डंक और शत्रुता-सर्प के फन मिला दें तो यह हमारा भयंकर पागलपन है।

(' मित्रता-आन्दोलन ' के सौजन्य से)

कबीर

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

कबीर धर्मगुरु थे। इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए, परन्तु, विद्वानों ने नाना रूप से उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। काव्य-रूप में उसे आस्वादन करने की तो प्रथा ही चल पड़ी है, समाज-सुधारक के रूप में, सर्वधर्म-समन्वयकारी के रूप में, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य-विधायक के रूप में, विशेष सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता के रूप में और वेदान्त-व्याख्याता दार्शनिक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई है। यों तो 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता, विविध भाँति गावहिं श्रुति-सन्ता' के अनुसार कबीर-कथित हरि-कथा का विविध रूप में उपयोग होना स्वाभाविक ही है, पर कभी-कभी उत्साह-परायण विद्वान गलती से कबीर को उन्हीं रूपों में से किसी एक का प्रतिनिधि समझकर ऐसी-ऐसी बातें करने लगते हैं जो असंगत कही जा सकती हैं।

भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है, बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत

ही नहा है कि इस लापरवाह फक्कड की किसी फरमाइश को नाहा कर सके, और 'अकह कहानी' का रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा मे है वैसी बहुत कम लेखको मे पायी जाती है। असीम, अनन्त ब्रह्मानन्द मे आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर—पकड मे न आ सकनेवाली ही बात है। पर 'बेहद्दी मैदान मे रहा कबीरा सोय' मे न केवल उस गभीर निगूढ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कडाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गयी है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानन्द का स्वाद करानेवाला समझे तो उन्हे दोष नही दिया जा सकता। फिर व्यग्य करने मे और चुटकी लेने मे भी कबीर अपना प्रतिद्वद्वी नही जानते। पडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी—सभी उनके व्यग्य से तिलमिला जाते है। अत्यन्त सीधी भाषा मे वे ऐसी गहरी चोट करते है कि चोट खानेवाला केवल धूल झाडके चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नही पाता। इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहा काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नही की, तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है।

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नही हुआ। महिमा मे यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वद्वी जानता है—तुलसीदास। परन्तु

तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्व में बडा अन्तर था। यद्यपि दोनो ही भक्त थे, परन्तु दोनो स्वभाव, सस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड-फटकारकर चल देनेवाले तेज ने कबीर को हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है। उनकी वाणियों में सब कुछ को छाकर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। उसीने कबीर की वाणियो में अनन्य साधारण जीवन-रस भर दिया है। कबीर की वाणी का अनुकरण नही हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई है। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती है। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सँभाल नही पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में सन्तोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को 'कवि' न कहा जाय तो और कहा क्या जाय? परन्तु यह भूल नही जाना चाहिए कि यह कविरूप घलुए में मिली हुई वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बाते नही कही थी। उनकी छन्दो-योजना, उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान पूर्णरूप से स्वाभाविक और अयत्नसाधित है। काव्यगत रूढियो के न तो वे जानकार थे और न क़ायल। अपने अनन्य-साधारण व्यक्तित्व के कारण ही वे सहृदय को आकृष्ट करते हैं। उनमें एक और बडा भारी गुण है जो उन्हें अन्यान्य सन्तो से विशेप बना देता है। (यद्यपि कबीरदास एक ऐसे विराट् और

आनन्दमय लोक की बात करते रहते हैं जो साधारण मनुष्यों की पहुँच के बहुत ऊपर है और वे अपने को उस देश का निवासी बताते हैं, जहाँ बारह महीने वसन्त रहता है और निरन्तर अमृत की झडी लगी रहती है, फिर भी, जैसा कि एवेलिन अण्डरहिल ने कहा है, वे उस आत्मविस्मृतिकारी परम उल्लासमय साक्षात्कार के समय भी दैनन्दिन-व्यवहार की दुनियाँ को छोड नहीं जाते और साधारण मानव-जीवन का भुला नहीं देते। उनके पैर मजबूती के साथ धरती पर जमे रहते हैं उनके महिमा-समन्वित और आवेगमय विचार, बराबर धीर और सजीव बुद्धि तथा सहज भाव द्वारा नियन्त्रित होते रहते हैं जो सच्चे मर्मी कवियों में ही मिलते हैं। उनकी सर्वाधिक लक्ष्य होनेवाली विशेषताएँ हैं--(1) सादगी और सहज भाव पर निरन्तर जोर देते रहना (2) बाह्य धर्माचारों की निर्मम आलोचना और (3) सब प्रकार के विरागभाव और हेतु-प्रकृति-गत अनुसंधित्व के द्वारा, सहज ही गलत दिखनेवाली बातों को दुर्बोध्य और महान बना देने की चेष्टा के प्रति वैरभाव। इसीलिए वे साधारण मनुष्य के लिए दुर्बोध्य नहीं हो जाते और अपने असाधारण भावों को ग्राह्य बनाने में सदा सफल दिखायी देते हैं। कबीरदास के इस गुण ने सैकड़ों वर्ष से उन्हें साधारण जनता का नेता और साथी बना दिया है। वे केवल श्रद्धा और भक्ति के पात्र ही नहीं, प्रेम और विश्वास के आस्पद भी बन गये हैं। सच पूछा जाय

तो जनता कबीरदास पर श्रद्धा करने की अपेक्षा उनसे प्रेम अधिक करती है। इसीलिए उनके सन्तरूप के साथ ही उनका कविरूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरु नहीं है, साथी और मित्र भी है।

कबीर ने ऐसी बहुत-सी बाते कही है जिनसे (अगर उपयोग किया जाय तो) समाज-सुधार मे सहायता मिल सकती है, पर इसीलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुत वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। समष्टि-वृत्ति उनके चित्त का स्वाभाविक धर्म नहीं थी। वे व्यष्टिवादी थे। सर्व-धर्म-समन्वय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है वह वस्तु कबीर के पदो मे सर्वत्र पायी जाती है, वह बात है भगवान के प्रति अहेतुक प्रेम और मनुष्यमात्र को उनके निर्विशिष्ट रूप मे समान समझना। परन्तु, आजकल सर्व-धर्म-समन्वय से जिस प्रकार का भाव लिया जाता है वह कबीर मे एकदम नहीं था। सभी धर्मो के बाह्य आचारो और आन्तरिक संस्कारो म कुछ न कुछ विशेषता देखना और सब आचारो और संस्कारो के प्रति सम्मान की दृष्टि उत्पन्न करना ही यह भाव है। कबीर इसके कठोर विरोधी थे। उन्हे अर्थहीन आचार पसन्द नही थे, चाहे वे बड से बडे आचार्य या पैगबर के ही प्रवर्तित हों या उच्च से उच्च समझी जानेवाली धर्म-पुस्तक से उपदिष्ट हो। बाह्याचार की निरर्थक पूजा और सस्कारो की विचारहीन गुलामी कबीर को पसद नही थी। वे इनसे मुक्त

मनुष्यता का ही प्रेम-भक्ति-पात्र मानते थे। धर्मगत विशेषताओं के प्रति सहनशीलता और सम्भ्रम का भाव भी उनके पदो मे नही मिलता। परन्तु वे मनुष्य-मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे, जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि मे कोई मूल्य नहीं था। सम्प्रदाय-प्रतिष्ठा के भी वे विरोधी जान पडते है। परन्तु, फिर भी विरोधाभास यह है कि उन्हे हजारो की सख्या मे लोग सम्प्रदाय-विशेष के प्रवर्तक मानने मे ही गौरव का अनुभव करते है।

जो लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित है वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते है। यह उचित भी है। राम-रहीम और केशव-करीम की जो एकता स्वय सिद्ध है उसे भी सम्प्रदाय-बुद्धि से मस्तिष्कवाले लोग नही समझ पाते। कबीरदास से अधिक जोरदार शब्दो में इस एकता का प्रतिपादन किसीने नहीं किया। पर जो लोग उत्साहाधिक्य-वश कबीर को केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता का पैगम्बर मान लेते है वे उनके मूलस्वरूप को भूलकर उसके एक देशमात्र की बात करने लगते है। ऐसे लोग यदि यह देखकर क्षुब्ध हो कि कबीरदास ने 'दोनो धर्मो की ऊँची सस्कृति या दोनो धर्मो के उच्चतर भावो मे सामजस्य स्थापित करने की कही भी कोशिश नहीं की, और सिर्फ यही नही, बल्कि उन सभी धर्मगत विशेषताओं की खिल्ली ही उडायी है, जिसे मजहबी नेता बहुत श्रेष्ठ धर्माचार कहकर व्याख्या करते है,' तो कुछ

आश्चर्य करने की बात नहीं है, क्योंकि कबीरदास इस बिन्दु पर से धार्मिक द्वन्द्वों को देखते ही न थे। उन्होंने रोग का ठीक निदान किया था या नहीं, इसमें दो मत हो सकते हैं पर औषध-निर्वाचन में और अपथ्य-वर्जन के निर्देश में उन्होंने बिलकुल गलती नहीं की। यह औषध है भगवद्विश्वास। दोनो धर्म समान-रूप से भगवान में विश्वास करते हैं और यदि सचमुच ही आदमी धार्मिक है तो इस अमोघ औषध का प्रभाव उसपर पड़ेगा ही।

अपथ्य है बाह्य आचारों को धर्म समझना, व्यर्थ कुलाभिमान, अकारण ऊँच-नीच का भाव। कबीरदास की इन दोनों व्यवस्थाओं में गलती नहीं है और अगर किसी दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता हुई तो इसी रास्ते हो सकती है। इसमें केवल बाह्याचार-वर्जन की नकारात्मक प्रक्रिया नहीं है, भगवद्विश्वास का अविश्लेष्य सीमेंट भी काम करेगा। इसी अर्थ में कबीरदास हिन्दू और मुसलमानों के ऐक्य-विधायक थे। परन्तु जैसा कि आरंभ में ही कहा गया है, कबीरदास को केवल इन्हीं रूपों में देखना सही देखना नहीं है। वे मूलतः भक्त थे। भगवान पर उनका अविचल, अखण्ड विश्वास था। वे कभी सुधार करने के फेर में नहीं पड़े। शायद वे अनुभव कर चुके थे कि जो स्वयं सुधरना नहीं चाहता उसे जबर्दस्ती सुधारने का व्रत व्यर्थ का प्रयास है। वे अपने उपदेश 'साधु' भाई को देते थे या फिर स्वयं अपने आपको ही सम्बोधित करके कह देते थे। यदि

उनकी बात सुननेवाला कोई न मिले तो वे निश्चिन्त होकर स्वयं को ही पुकारकर कह उठते —'अपनी राह तू चले कबीरा !' अपनी राह, अर्थात धर्म, सम्प्रदाय, जाति-कुल और शास्त्र की रूढ़ियों से जो बद्ध नहीं है, जो अपने अनुभव के द्वारा प्रत्यक्षीकृत है।

कबीरदास का यह भक्त-रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्दगिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच के बाहर है, भक्ति कहकर नहीं समझायी जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदास ने इस बात को हजार तरह से कहा है। यह भक्ति या भगवान के प्रति अहेतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत-सी बातें कहनी पड़ी हैं जो भक्ति नहीं हैं, पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर है, इसीलिए केवल वाणी का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की ओर इशारा किया है, उसे 'ध्वनित' किया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसी को कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यंजना, कथन के जरिये अकथ्य का ध्वनन, काव्य-शक्ति का चरम निदर्शन

नहीं तो क्या है ? फिर भी वह ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं। इस प्रकार काव्यत्व उनके पदों में फाकट का माल है, बाई-प्राडक्ट है, वह कोलतार और सीरे की भाँति और चीजों को बनाते-बनाते अपने आप बन गया है।

प्रेम-भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जाननेवाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर सन्तोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवत्प्रेम के क्षेत्र में स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और अपने प्रिय के प्रति अखण्ड विश्वास की परिचायक है, (जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है वही भगवत्प्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्यपरायण आत्मार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर-विरुद्ध जँचती हैं भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है) लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुहीन बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे से छोटा भी हो और बड़े से बड़ा भी हो, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो और भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी जिसे सबके

ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय भी, जिसमे समस्त गुणो का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी, और फिर भी जो न इन्द्रिय का विषय हो, न मन का, न बुद्धि का। परन्तु भगवान के लिए ये सब विशेषण सब देशो के साधक सर्वभाव से देते रहे है। जो भक्त नहीं है, जो अनुभव-द्वारा साक्षात्कार किये हुए सत्य मे विश्वास नही रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते है, पर जो भक्त है वे भुजा उठाकर घोषणा करते है, 'अगुणहि-सगुणहि, नहि कछु भेदा '(तुलसीदास)। परन्तु तर्कपरायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को 'वदतो व्याघात' कहकर सन्तोष कर लेता है। यदि भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु मान लिया जाता तो निस्सन्देह स्वीकार कर लिया जाता कि भक्त के लिए वे सारी बातें बेमतलब है जिन्हे कि विद्वान लोग बारीक भेद कहकर आनंद पाया करते है। भगवान के अनिर्वचनीय स्वरूप को भक्त ने जैसा कुछ देखा है, वह वाणी के प्रकाशन-क्षेत्र के बाहर है, इसीलिए वाणी नाना प्रकार से परस्पर-विरोधी और अविरोधी शब्दो द्वारा उस परम प्रेममय का रूप निर्देश करने की चेष्टा करती है। भक्त उसकी असमर्थता पर नहीं जाता, वह उसकी रूपातीत व्यजना को ही देखता है।

भक्ति-तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हे उन बाह्याचार के जजालो का साफ करने की जरूरत महसूस हुई है जो अपनी जड प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतनतत्त्व की उपलब्धि मे बाधक है।

यह बात ही समाज-सुधार और साम्प्रदायिक ऐक्य की विधात्री बन गयी है। पर यहाँ भी यह कह रखना ठीक है कि यह भी फोकट का माल या बाई-प्राडक्ट ही है।

जो लोग इन बातों से ही कबीरदास की महिमा का विचार करते है वे केवल सतह पर ही चक्कर काटते है। कबीरदास एक जबर्दस्त क्रान्तिकारी पुरुष थे। उनके कथन की ज्योति जो इतने क्षेत्रों को उद्भासित कर सकी है, मामूली शक्तिमत्ता की परिचायिका नहीं है। (परन्तु यह समझना कि उद्भासित पदार्थ ज्योति की ओर इशारा करते है और ज्योति किधर और कहाँ है इस बात का निर्देश देते है, भूल होगी।) (ऊपर-ऊपर सतह पर चक्कर काटनेवाले समुद्र भले ही पार कर जायँ, पर उसकी गहराई की थाह नहीं पा सकते।) इन पंक्तियों का लेखक अपने को सतह का चक्कर काटनेवालों से विशेष नहीं समझता। उसका दृढ़ विश्वास है कि कबीरदास के पदों में जो महान प्रकाश-पुंज है वह बौद्धिक आलोचना का विषय नहीं है। वह म्यूजियम की चीज नहीं है, बल्कि जीवित, प्राणवान वस्तु है। कबीर पर पुस्तकें बहुत लिखी गयी है, और भी लिखी जाएँगी, पर ऐसे लोग कम ही है जो उस साधना की गहराई तक जाने की चेष्टा करते हों। राम की वानरी सेना समुद्र जरूर लांघ गयी थी, पर उसकी गहराई का पता तो मंदर पर्वत को ही था जिसका विराट् शरीर आपाताल निमग्न हो गया था——

अविधर्लङ्घित एव वानरभटै किन्त्वस्य गंभीरताम्
आपातालनिमग्न-पीवरतनुर्जानाति मन्दराचल ।

सो, कबीरदास की सच्ची महिमा तो कोई गहरे में गोता लगानेवाला ही समझ सकता है।

कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है उनके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की संभावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है। परन्तु कालक्रम से वह भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परंपरा से चली आयी हुई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना संभव नहीं है।

कबीरदास ने स्वयं अरूप को रूप देने की चेष्टा की थी। परन्तु वे स्वयं कह गये हैं कि ये सारे प्रयास तभी तक थे जब तक परम प्रेम के आधार प्रियतम का मिलन नहीं हुआ था। साखी, पद, शब्द और दोहरे उसी प्राप्ति के साधन हैं, मार्ग है।

पगडंडी

श्री कमलकान्त वर्मा

तब मै ऐसी नहा थी । लोग समझते ह, मे सदा की ऐसी ही हूँ— मोटी, चौडी, भारी-भरकम क्षितिज की परिधि का चीरकर, अनन्त को सान्त बनाती, ससार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई। वह पुराना इतिहास हे। कोई क्या जाने ?

तब मै न तो इतनी लबी थी, न इतनी चौडी । न चेहरे पर ईटो की सुर्खी की ललाई थी, न शरीर पर ककडा के गहने । मेरे दाये-बाये वृक्षा की जो ये कतारे देख रहे हो, वे भी नहीं था . न फुट-पाथ था, न बिजली के खम्भे , अप्सराओ की-सी सजी न ये दूकानें थी, न अँगूठी के नगीने की तरह ये पार्क । तब मे एक छोटी-सी पगडडी थी—दुबली, पतली, सुकुमार, नटखट !

कब से मै हूँ, इसकी तो याद नही आती , किन्तु ऐसा जान पडता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी नदी से जल लाने के लिए उस पार गयी होगी , जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद फिर एक धर्म भी निकल पडता है, उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गाँव की सारी तरुणियाँ घडे मे जल लेकर मटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होगी और फिर वही से मेरे जीवन की कहानी बह निकली ।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सूनेपन की अँधियारी में झलमला रहे है। यो तो सारी अमराई, सारा गॉव मेरे परिचितो से भरा था, किन्तु मेरी घनिष्ठता थी केवल दो जनों से—एक थे बटदादा और दूसरा था रामी का कुआँ।

बटदादा अमराई के सभी वृक्षो में बूढे थे और सभी उन्हे श्रद्धा और आदर से बटदादा कहा करते थे। थे तो वे वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवको से भी सरस था। वे अमराई के कुलपति थे। उनमे तपस्वियो का तेज भी था और गृहस्थो की कोमलता भी। उनकी सघन छाया के नीचे लेटकर बीते हुए युगो की वेदना और आह्लाद से भरी कहानियाँ सुनना, रिमझिम-रिमझिम वर्षा में उनकी टहनियो में लुककर बैठे हुए पक्षियो की सरस बरसाती का मजा लूटना आज भी याद करके मै विह्वल हो उठती हूँ।

ठीक उन्हीसे सटा हुआ रामी का कुआँ था—पक्का, ठोस, सजल, स्वच्छ, गम्भीर, उदार। सॉझ-सवेरे गॉव की स्त्रिया झन्-झन् करती आती और अमराई को अपने कल कंठ से मुखरित करके कुएँ से पानी भरकर मुझे भिगोती हुई, रौंदती हुई चली जाती।

मेरी चढती हुई जवानी का आदि भी इन्हीसे होता है, मध्य भी इन्हीसे और अन्त भी इन्हीसे। भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मै इन्हें भूल सकती हूँ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्राय अपने सगो से नहीं, पराया से बनता है। ऐसा क्यो होता है, समझ मे नही आता किन्तु देखा जाता है कि अकस्मात कभी की सुनी हुई बोली, किञ्चिन्मात्र देखा हुआ स्वरूप, घडी दो घडी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि बनकर रह जाते है और अपने सगों का समस्त समाज, अपने जीवन का सारा वातावरण कमल के पत्ते के चारो ओर के पानी की तरह छल्-छल् करते रह जाते है, उछल-उछलकर आते है, बह जाते है, टिक नहीं पाते। मै सोचती हूँ, ऐसा क्यो होता है, पर समझ नही पाती।

जेठ के दिन थे। अलस दुपहरी। गरम हवा अमराई के वृक्षो मे लुढकती फिरती थी। बटदादा ऊँघ रहे थे। एक वृक्ष में लिपटी हुई दो लताओ मे झगडा हो रहा था। मै तन्मय हो उनका झगडा सुन रही थी, इतने मे ही कुएँ ने पूछा—'पगडंडी, सो गयी क्या?'

'नही तो'—मैने कहा—'इन लताओ का झगडा करना सुन रही हूँ।' कुएँ ने हँसकर पूछा, 'बात क्या है?'

मैने कहा—कुछ नही, नाहक का झगडा है, दोनो मूर्ख है।

कुएँ ने हँसकर कहा—(संसार में मूर्ख कोई नही होता, परिस्थिति सबको मूर्ख बनाती है।) इस अमराई मे तुम अकेली

हो, कल एक ओर पगडण्डी बन जाय तो क्या यह सभव नहीं कि फिर तुम दोनो झगडने लग जाओ ?

मै तुनक गयी। बोली—साधारण बात मे भी मेरा जिक्र खीच लाने का तुम्हे क्या अधिकार है ?

कुऑ ने पूछा—उन्हे मूर्ख कहने का तुम्हे क्या अधिकार है ?

मैने कहा—मै सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी, वे दोनो मूर्ख है, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख हैं !

इतने मे ही बरदादा भी जाग पडे, बोले—किसको मूर्ख बना रही है ?

बात रुक गयी, कुऑ चुप हो गया। दो दिन तक बोलचाल बद रही।

मैने जान-बूझकर उससे झगडा क्यो किया, इसे वह समझ नही पाया, इसलिए मुझे सन्ताप भी हुआ और ग्लानि भी। (स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्‌वसित हृदय के उद्गारो को जब निरुद्ध नही कर पाती तब वह झगडा करती है। स्त्री का सबसे बडा बल है रोना, उसकी सबसे बडी कला है झगड़ा करना। झगडा करके तुनकना, रूठकर रोना, फिर दूसरे को रुलाकर मान जाना नारी-हृदय का प्रियतम विषय है।) पुरुष, चाहे कितना भी पढा लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधी-सादी बात नही समझ पाता तो सचमुच मूर्ख है।)

यह घटना कुछ नयी नही थी, नित्य की थी। कोई छोटी-सी बात को लेकर हम झगड पडते, आपस मे कुछ कह-सुन देते, फिर हफ्तो एक दूसरे से नही बोलते। किन्तु वह बात जिसके लिए मै सब कुछ करती, सारा झगडा खडा करती, कभी नहा होती। कुआँ मुझे कभी नही मनाता था। अन्त मे हारकर मुझे ही बोलना पडता तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ ही नहीं। मै मन ही मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है, और न मानने से कोई आह्लाद। स्वय भी नही रूठता, केवल चुप हो रहता है, बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। (हे ईश्वर! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोल रखी है?)

इस घटना पर मैने विशेष ध्यान नही दिया, किन्तु वह बात रह-रहकर मेरे कानो में गूँज उठती—'इस अमराई मे तुम अकेली हो, कल और एक पगडण्डी बन जाय तो क्या यह सम्भव नहा कि फिर तुम दोनो भी झगडने लग जाओ?' इसका प्रतिवाद मैने कैसे किया? उससे झगडा किया, उसे मूर्ख बनाया। कुआँ समझता है कि मै स्त्री हूँ और स्त्री-जाति की कमजोरी मेरी भी कमजोरी है, और इसका प्रतिवाद करने के बदले मे स्वय उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मै हुई या वह?

मुझे रह-रहकर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता।

यदि उसे मेरे लिए कोई सहानुभूति नहीं, मेरे रूठने की कोई चिन्ता नहीं, मुझे मनाने का आग्रह नहीं, तो फिर मै क्या उसके लिए मरने लगी ? यदि वह हृदयहीन है, तो मै भी हृदयहीन बन सकती हूँ। यदि वह आत्मनिग्रह कर सकता है, तो मै भी अपने आप संयम रखना सीख सकती हूँ। मैने कसम खायी कि फिर उससे रूठूँगी ही नहीं, और यदि रूठूँगी तो फिर बोलूँगी नहीं। चाहे जो भी हो, प्रेम के लिए शील को कलङ्कित नहीं करूँगी।

एक दिन की बात है। आश्विन का महीना था। बरसात अभी-अभी बीती थी। न कीचड थी, न धूल। छोटी हरी घासों और जङ्गली फूलो के बीच से होकर मै अमराई के उस पार से उस पार तक लेटी थी। इस सघन हरियाली के बीच मे मुझे देखकर जान पडता मानो किसी कुमारी कन्या का सीमन्त हो। शरद मेरे अग-अग मे प्रतिबिंबित हो रहा था। मैं कुछ सोच रही थी, सहसा कुएँ ने कहा—पगडण्डी, सुनती हो ?

मैने अन्यमनस्क-सी होकर कहा—कहो।

उसने कहा—'तुम दिनो-दिन मोटी होती जा रही हो।'
मै कुछ नहीं बोली।

कुछ ठहरकर वह फिर बोला—तुम पहले जब दुबली थी, अच्छी लगती थी।

मैने कहा—अगर मै मोटी हो गयी हूँ, तो केवल तुम्हे अच्छी लगने के लिए तो मै दुबली होने की नहीं।

कुएँ ने कहा—यह तो मैंने कहा नहीं कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी।

मैंने पूछा—तब तुमने कहा क्या?

उसने कहा—(कवियों का कहना है कि दुबलापन स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है। मोटी होने से तुम कवियों की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी।)

मैंने खीझकर पूछा—तुम तो अपने को कवि नहीं समझते न?

उसने कहा—बिलकुल नहीं।

मैंने पूछा—फिर मोटी हो जाने पर मैं कवियों को अच्छी लगूँगी या बुरी, इससे तुम्हें मतलब?

उसने शान्त भाव से कहा—कुछ भी नहीं, केवल यही कि मैं उस परिभाषा को जानता हूँ और उसे तुम्हें भी बतला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

मैंने गम्भीर होकर कहा—धन्यवाद।

(स्त्री यदि वह सचमुच स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है, पर अपने रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती। स्त्री चाहे घोर कुरूपा हो, फिर भी पुरुष को उसे कुरूपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं) (स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सबसे महान सौन्दर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का संकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है।) (स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वैसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना।) मैं समझ गयी

कि कुआँ मुझपर मार्मिक आघात कर रहा है, परिहास नहीं, उपहास करना चाहता है। मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि चाहे अन्त जो भी हो, मै भी आज से युद्ध प्रारम्भ करूँगी।

उसी दिन रात को चाँदनी खिली थी। रजनीगधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर झूम रही थी। बटदादा पक्षियों को सुलाकर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे। बोले—सो गयी बेटी?

मैने कहा—नही दादा, ऐसी चाँदनी क्या सदा रहती है? मेरे तो जी मे आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेटे-लेटे चाँद को देखती रहूँ।

इतने ही मे कुआँ बोला—दादा, अमराई मे ब्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो।

दादा ने पूछा—कैसा ब्याह?

उसने कहा—(देखते नहीं, प्रेम का पहला चरण प्रारम्भ हो गया है, दूसरे चरण में कविताएँ बनेंगी, तीसरे चरण मे पागलपन का अभिनय होगा, चौथे चरण मे सगायी हो जाएगी।)

मुझे मन ही मन गुदगुदी-सी जान पडने लगी। सोचा, आज इसे खिझाऊँगी। मैने हँसकर कहा—दादा, देखो, अपने-अपने भाग्य की बात है। ईश्वर ने तुम्हे इतना ऊँचा बनाया है। तुम अपनी असख्य अजुलियों से सूर्य और चन्द्रमा की किरणो का अजस्र पान करते हो और दिग्दिगन्त से आती हुई वायु मे स्नान

करके विस्तृताकाश मे सर उठाकर प्रकृति की अनन्त विभूतियो का अनुशीलन करते हो। नक्षत्रो से भरी हुई रात मे शत-शत पक्षियो को गोद मे लिये हुए तुम चन्द्रलोक की कहानी सुना करते हो, उषा और गोधूली नित्य तुम्हे स्नेह से चूम लिया करते है, प्रकृति का अनन्त भडार तुम्हारे लिए उन्मुक्त है। मै तुम्हारे जैसी ऊँची तो नही हूँ, फिर भी दूर तक फैली हूँ। वसुन्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चन्द्रमा की किरणो का जाल मेरे ऊपर फैला देता है, बसन्त की मादकता, सावन की सजल हरियाली और शरद् की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन मे स्फूर्ति प्रदान करती रहती है। मै केवल जीती ही नही, जीवन का उपभोग भी करती हूँ। किन्तु मुझे दुख उन लोगो को देखकर होता है जिन्हें न सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चन्द्रमा की किरणे, अन्धकार जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी है (वे आकाश को उतना ही बडा समझते है जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते है, जितना वे देख सकते है।) दादा! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय है, तुमने कभी सोचा है?

दादा कुछ नही बोले, शायद सो गये थे। लेकिन कुआँ वाला—सुन रहे हो, दादा, पगडण्डी कितना सच कह रही है? ऐसे लोगो से अधिक दयनीय जीवन किसका होगा? कुछ दिन पहले मै भी यही सोचा करता था, किन्तु मुझे जान पडा कि

संसार मे और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है। ईश्वर ने जिसे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक से वञ्चित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का वैभव जिसे देखने नही दिया, उसपर दया करके कम से कम उसे एक ऐसी चीज दे दी, जिससे वह संसार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा वह संसार का किसी न किसी रूप मे लक्ष्य बन सकता है। किन्तु उससे अधिक दयनीय तो वे है जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने का कुछ भी नही। रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्व तो है, किन्तु उनकी मुटाई, लम्बाई, चौड़ाई सब कुछ काल्पनिक है। उनका अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व मे अन्तर्निहित है। वे सभी के साधन हैं, किन्तु लक्ष्य किसीके भी नही। ऐसे लोग भी दुनियाँ मे है। दादा, क्या उनपर तुम्हे दया नहीं आती?

दादा बिलकुल खो गये थे। मैंने तेज से आकर कहा—रामी के कुआँ, यदि तुम समझते हो कि तुम संसार के लक्ष्य हो और मे केवल साधन-मात्र, तो यह तुम्हारी भूल है। (संसार मे जो कुछ है साधन ही है, लक्ष्य कुछ भी नही। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई कल्पना का फल है। लक्ष्य एक भावना-मात्र है, स्थूल और प्रत्यक्ष रूप मे जिस किसीका अस्तित्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप मे हो।)

कुणं ने गभीर स्वर से कहा—तुमने मेरा पूरा नाम लेकर पुकारा, इसके लिए धन्यवाद। मैं उत्तर में केवल दो बातें कहूँगा। पहली तो यह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना झगड़ा नहीं है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मैं तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में प्राकारिक अन्तर न होते हुए भी पारिमाणिक अन्तर है। संसार में लक्ष्य नाम की कोई चीज नहीं, ठीक है, यहाँ जो कुछ है, किसी न किसी रूप में साधन ही है, यह भी ठीक है। (फिर भी मानना पड़ेगा कि साधना में कुछ साधन ऐसी अवस्था में है, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नहीं जा सकता और कुछ साधन उस अवस्था में पहुँच गये है, जिन्हें ससार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है।)(इसका प्रत्यक्ष और स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगों के यहाँ ससार आता है, हाथ फैलाकर कुछ माँगता है और फिर चला जाता है। ससार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य, और कुछ लोग ऐसे है जिनके यहाँ ससार आता है, किन्तु इसलिए नहीं कि वह उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है। तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधक)। समझी?

मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—देखो, तुम्हारी चाँदनी डूब गयी, अब तो सो सकती हो या नहीं?

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पडने लगी। कुआँ ससार का लक्ष्य है, मै केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है? मै कभी-कभी सोचती, प्रेम मे प्रतियोगिता कैसी? मान लो, वह ससार मे सब कुछ है और मै कुछ भी नही, फिर भी क्या यह यथेष्ट कारण है कि यदि मै उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रतिदान न दे? कुआँ अपने सासारिक महत्व के गर्व में चूर है। वह समझता है कि उसके सामने मै इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, मुँह-मुँह बोलना भी पाप है। वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात मे मुझे नीचा दिखाना चाहता है। बर्बर पुरुष-जाति!

मै दिनो-दिन उससे दूर हटने की चेष्टा करने लगी। उसके सामीप्य मे मेरा दम घुटने लगा। वह महत्वशाली है, ससार उसके सामने भिखारी बनकर आता है। और मै? मेरा तो कोई अस्तित्व ही नही, किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ! मेरी उसकी क्या तुलना?

सांझ-सवेरे गाँव की स्त्रियाँ आती और पानी भर ले जाती। अलस दुपहरी में पथिक अमराई मे विश्राम करने के लिए आते और कुएँ के पानी में सत्तू सानकर खाते, फिर थोडी देर वृक्षो के नीचे लेटकर अपनी राह चले जाते। गाँव के छोटे-छोटे लडके अमराई मे आकर फल तोडते, कुएँ से पानी खीचते और फिर

फल खाकर मुँह-हाथ धोकर चले जाते। जहाँ देखो उसीकी चर्चा, उसीकी बात। मै अपनी नगण्यता पर मन ही मन जली-सी जाती। मुझे जान पडता, मानो ससार मेरा उपहास कर रहा है, आकाश मेरा तिरस्कार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है। मेरा अस्तित्व रेखागणित की रेखाओ और बिन्दुओ का-सा अस्तित्व है। मै सबकी हूँ, पर मेरा कोई नही। मै भी अपनी नही, केवल ससार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन-सी बनकर जी रही हूँ। मुझे यहाँ से हटना ही पडेगा। चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी जरूर। हृदय की शान्ति की खोज मे वन-वन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के अनन्त विस्तार को छान डालूँगी। यदि कही शान्ति नही मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत-राशि मे जाकर विलीन हो जाऊँगी, या किसी विजन पर्वत-माला की अँधेरी गुफा मे जाकर सो रहूँगी, फिर भी यहाँ न रहूँगी।

वहाँ से मै हटने का उपक्रम करने लगी।

आधी रात थी। चाँदनी और अन्धकार अमराई के वृक्षो के नीचे गाढालिंगन मे बँधे सो रहे थे। मुझे उस रात की सारी बाते अब भी याद है, मानो अभी कल ही की हो। मै अपने अतीत जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इतने मे कुएँ ने पुकारा—पगडण्डी!

निशीथ के सूनेपन मे उसकी आवाज गूँज उठी। मै चौक

पडी। इतने दिनो के बाद आज कुआँ मुझे पुकार रहा है। मेरा कौतूहल उमडने लगा। मैने पूछा—क्या है?

कुआँ थोडी देर चुप रहा, फिर पुकारा—पगडण्डी!

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नहीं। मुझे आश्चर्य होने लगा, क्या आज कोई अभिनय होगा? मैने संयत स्वर मे पूछा—क्या है?

कुआँ बोला—पगडण्डी, मै तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

मैने कहा—पूछो।

वह बोला—शायद तुम यहाँ से कहीं जा रही हो?

उस समय बिजली भी गिर पडती तो मुझे उतना आश्चर्य न होता। इसे कैसे मालूम हुआ? यदि मान लूँ कि किसी तरह मालूम भी हो गया, तो फिर इससे इसे क्या मतलब? मै क्षण-भर मे ही न जाने क्या-क्या सोच गयी, कितने ही भावो मे मेरा हृदय उथल-पुथल हो उठा, किन्तु मैने सारा आवेग रोककर उदासीन स्वर मे कहा—हाँ!

कुआँ थोडी देर चुप रहा, फिर बोला—तुम इस अमराई मे जा रही हो। अच्छा है, मै बहुत प्रसन्न हूँ।

मै कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—ठहरो, मेरी बात सुन लो। जब तुम पहले-पहल यहाँ आयी थी तब जितना प्रसन्न मै हुआ था, उतना और कोई नहीं।

आज जब तुम यहाँ से जा रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी किसीको नहीं। तुम इसका कारण जानती हो?

मैं कुछ नहीं बोली।

वह कहने लगा—मैं तुम्हे किसी दिन कहनेवाला ही था। तुमने स्वय जाने का निश्चय कर लिया। यह और भी अच्छा हुआ।

मैंने अन्यमनस्क-सी कहा—"ससार मे जो कुछ होता है अच्छा ही होता है।"

कुआँ बोला—पगडण्डी, तुम यहाँ से जा रही हो, सम्भावना यही है कि फिर तुम कभी लौटकर नही आओगी। तुम्हारे जाने के पहले मै तुमसे अपने हृदय की एक बात, एक चिरसचित बात कहूँगा, सुनोगी तो?

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थी, एक संशय की, दूसरे विस्मय की। फिर भी इतना है कि सशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ। मैंने सारा कौतूहल दबाकर कहा—कहते जाओ।

कुआँ कहने लगा—मुझे अधिक कुछ नही कहना है। केवल दो बाते कहनी है। मैंने तुमसे कभी कुछ नही कहा था। इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नहीं आया था। तुम अब जा रही हो। जान पडता है वह समय आ गया, इसलिए कह रहा हूँ।

थाडा रुककर फिर अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढङ्ग से उसने कहना शुरू किया—पहली बात यह है कि तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी आज तक मैने जाहिर क्या नहीं होने दिया। मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिष्पथ की तरह तुम पहले-पहल इस अमराई मे बिछ गयी, उस दिन मैने बटदादा से पूछा था—दादा, यह कौन है? दादा ने विनोद से कहा—तुम्हारी बहू! मै झेंप गया। तब से लेकर आज तक एक युग बीत गया। कितने बसन्त आये, कितनी बरसाते आयी, अमराई की सघन छाया मे हम दोनो ने कितनी कहानियाँ सुनी, कितने गीत सुनकर फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस मे लडे-झगडे है! इस अतीत जीवन की छोटी से छोटी घटना भी मेरे स्मृति-पट पर अमर रेखा बनकर खिंच गयी है और उन टेढी-मेढी रेखाओ को जोडकर जो अक्षर बनते है, उनका एकमात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई मे छोटी, पतली-सी जो एक पगडण्डी है, उस पगडण्डी के सूने उपेक्षित जीवन का जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नही, विश्व-भर का अनंत काल के लिए आलोक-स्तम्भ बन सकता है। वह न रहे, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पनालोक के विस्तृताकाश में खील का आदर्श बन, आकाश-दीप-सी झिलमिलाती रहेगी। किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैने तुमसे कभी कुछ कहा क्यो नही?

इतना ही नही, मैने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रदर्शित किये। नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नही, मै और भी तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं। किन्तु क्यों ? इसका एक ही कारण था।

पगडण्डी ! मै तुम्हे जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था। मै तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था। मै जानता था, ससार के कल्याण के किस अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है। मै जानता था, किस लक्ष्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हे स्वर्ग से लाकर इस अमराई की घास और पत्तो की सेज पर सुला दिया है। मै यह भी जानता था कि तुम्हारे अवतरण का जो अन्तर्निहित अभिप्राय है वह किस पथ-पर चलकर तुम अधिक से अधिक प्राप्त कर सकती हो।

जिस महान उद्देश्य को लेकर तुम जन्मी हो, उससे, मै जानता हूँ, इच्छा रहते हुए भी मै तुम्हारी कोई सहायता नही कर सकता। किन्तु हाँ, एक बात कर सकता हूँ। (गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच मे नचाता हुआ ले जाकर सम पर बिठा देता है। सुननेवाले उसे सहायता नही दे सकते, फिर भी अन्त मे सम पर एक बार सर हिला देते हैं। तान लौटकर घर आ गयी, सबका सर हिल गया।) पगडडी, जीवन के

उच्चादर्श को तुम्हें अकेले ही निभाना पड़ेगा। मैं केवल इतना कर सकूँगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौटकर घर आ जाएगी, उस दिन उस संगीत में अपने को बहाकर स्वर मिला दूँगा, तुम्हारे जीवन-संगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस।

प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है, सेवा। उसका वही पथ है जिसपर तुम जा रही हो। (प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नहीं कर सकते। प्रेम करना संसार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है। प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओं का आकुञ्चन है, सेवा उनका प्रसार।) प्रेम में स्वयं लक्ष्य बनकर अपना एक कोई लक्ष्य बनाना पड़ता है, सेवा में अपने को संसार का साधन बनाकर संसार को अपनी साधनाओं की तपोभूमि बना देना पड़ता है। प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या। प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर।

जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पथ पर ही जा रही हो और अब भी उत्तरोत्तर उसीपर आगे बढ़ती जा रही हो। तुम्हारे मार्ग में जो सबसे बड़ा विघ्न बनकर खड़ा हो सकता है वह है प्रेम। (प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा देवत्व। तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी तुम्हारा शरीर भौतिक है। आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है।) वसन्त जब अपना मधुकलश पृथ्वी

पर उडेल देता है, वर्षा जब बन-बन में हरियाली बिखरा देती है, तब आत्मा की साधनाओं में शरीर छोटे-छोटे सपने छींट देता है, सामवेद की मधुर गभीर ध्वनि मे मेघ-मलार की मस्तानी तानें भीन जाती है, सोमरस मे कादंब की बूंदे चू पडती है, कैलाश मे बसत आ जाता है। यह बहुत पुरानी कथा है। युग-युगान्तर से यही होता आया है, और यही होता रहेगा। फिर भी सभी इसे भूल जाते है। (आँखें झप जाती है, तपस्या के शुभ्र प्रत्यूष मे अनुराग की अरुण उषा छिटक पडती है, साधना का बर्फ गलने लगता है, लगन की आग मझाने लगती है, हृदय की एकान्तता मे किसीकी छाया घुस पडती है, जागृति मे अंगडाई भर जाती है, स्वप्नों मे मादकता भीन जाती है, और और जब आँखें खुलती है तब कही कुछ नही रहता)। (फिर से नयी कहानी शुरू होती है, नयी यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है। इसी तरह यह ससार चलता है।)

(आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बडा प्रभाव है सशय। जब ससार में सभी किसी-न-किसीसे प्रेम करते है, सभी का कोई न कोई एक अपना है, जब किसीसे प्रेम करना, किसीके प्रेम का पात्र बनना प्राणिमात्र का अधिकार है, तब फिर मैं—केवल मैं ही—क्या इससे वञ्चित रहूँ? यह जीव की अमर समस्या है, शाश्वत प्रश्न है।)

किन्तु सत्य क्या है, लोग यह समझने की बहुत कम चेष्टा

करते है। (जिनके पैर है वे जमीन पर चलते है, किन्तु जिन्हे पंख मिले है यदि वे भी जमीन पर ही चले तो यह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग है। (जिन्हे ईश्वर ने आकाश मे उड़ने के लिए बनाया है उनके लिए पृथ्वी पर चलना अपने महत्व की उपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है।)

(प्रेम करने की योग्यता सबमे है, किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-किसीको ही मिलती है। सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नही, ईश्वर का आशीर्वाद है)। जिसे ईश्वर ने ससार मे अकेला बनाया है, धन-वैभव नही दिया है, सुख मे प्रसन्न होनेवाला और दुख मे गले लगाकर रोनेवाला साथी नही दिया है, ससार के शब्दो मे जिसे उसने दुखिया बनाया है, उसके जीवन मे उसने एक महान अभिप्राय भर दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तड़फड़ाती हुई आँधी उसके अन्तर मे सजाकर रख दिया है। हो सकता है वह इसे न समझे, शायद ससार भी इसे न समझे, फिर भी वह नहा है, ऐसी बात नही, वह है। आवश्यकता है केवल उसे समझने की।

पगडण्डी, तुम ईश्वर की उन्ही रचनाओ मे से एक हो। तुम्हारा निर्माण इसलिए नही हुआ है कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जिओ और एक के लिए मरो। नहो, तुम पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर आयी हो। जेठ की धधकती हुई लू मे, भादो की अजस्र वर्षा मे और शिशिर के तुषारपात मे

इसी तरह लेटी रहकर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर से बाहर और बाहर से घर पहुँचाना पड़ेगा। सभ्यता के विस्तार के लिए, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़े से बड़ा त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई नहीं है, इसलिए कि सभी तुम्हारे हैं, तुम किसीकी नहीं हो, इसलिए कि तुम सभी की हो। तुम अपने जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो।

आज के पहले मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा था, कारण यह था-- पगडंडी, मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा करना—कि तुम्हारी आत्मा सोयी हुई थी, केवल शरीर जगा था। तुम नहीं समझती थी कि तुम कौन हो, किसलिए यहाँ आयी हो, तुम संसार के पुराने पथ पर चलना चाहती थीं। आज, चाहे जिस कारण से हो, तुम्हें अपने वर्तमान जीवन से असंतोष हो गया है, तुम्हें अपने से घृणा हो आयी है। आज तुम अनंत में कूदने जा रही हो, संसार में कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जाग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।

पगडंडी, तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। फिर भी अपने व्यक्तित्व को तुम्हारे पथ में खड़ा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति को रोकना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी चेतना में अपनी छाया डालकर उसे मलिन नहीं करना चाहता। तुम्हारी संगीत-

लहरी मे अपवादी स्वर बनकर उसे बेसुरा बनाना नहा चाहता। मै बडे उल्लास से तुम्हे यहाँ से विदा करता हूँ। जाओ, ससार मे जहाँ अधिक से अधिक तुम्हारा उपयोग हा सके, वहाँ जाओ, और अपने जीवन को सार्थक बनाओ यही मेरी कामना है, यही मेरा सदेश है, यही मेरा क्षमा करना आशीर्वाद है।

केवल एक बात और कहनी है। मेरी हृदयहीनता को भूल जाना, हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे भी हृदय है, उसमे भी थोडा रस है, पर मैने जान-बूझकर उसे सुखा दिया, उसे आँखो मे नही आने दिया, ओठो पर से पोछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मै अपने आँसुओ से गीला नहा बनाना चाहता। पगडडी, मेरी व्यथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो तो फिर सब कुछ भूल जाना।

ससार तुम्हारी राह देख रहा है, अनन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जाओ, अपना कर्तव्य पालन करो। ससार तुम्हे कुचले तो तडपना नही, भूल जाय तो सिसकना नही। भूले हुए पथिकों को घर पहुँचा देना, जो घर छोडकर विदेश जाना चाहते हो उनकी सहायता करना, जब तक जीना खुश रहना, कभी किसीके लिए रोना नहीं, और—एक बात और—यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाय तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगाकर उसे निकाल डालना। यदि न निकाल सको तो फिर वहाँ से कहीं दूर—बहुत दूर चली जाना।

पगडंडी ! विदा ! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य मे अपने धुधले अतीत को डुबो देना । सब कुछ भूल जाना—बटदादा और रामी के कुएँ का भी भूल जाना । केवल यही याद रखना कि तुम कोन हो और तुम्हारा कर्तव्य क्या है, बस, जाओ, विदा ! ईश्वर तुम्हे बल दे !

कुआँ चुप हो गया । आधी रात की स्वप्निल नीरवता मे, जान पडता था, उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुमडते फिरते हो । मै कुछ बोल नही सकी, सोच भी नहीं सकी । तन्द्रा-सी छा गयी, काठ-सा मार गया । उसके अन्तिम शब्द अर्धरात्रि के शून्य अन्धकार मे बिजली के अक्षरो में मानो चारो ओर लिखे हुए-से उग रहे थे—बस जाओ, विदा ! ईश्वर तुम्हे बल दे !

ठीक-ठीक याद नही आता कितने दिन हुए, फिर भी एक युग-सा बीत गया । मेरी आँखो के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रहकर नाच उठता है, कानो मे वे शब्द अब भी रह-रहकर गूँज उठते है । अब मै राजधानी का राजमार्ग हूँ । दोनो ओर सहेलियो की तरह दो फुट-पाथ है, धूप और वर्षा से बचाने के लिए दोनो ओर वृक्षो की क़तारे है, रोशनी के लिए बिजली के खम्भे है, और न जाने विभव-विलास की कितनी चीजे है । नित्य मेरा शृगार होता है, मेरी देखरेख में हजारो रुपये खर्च किये जाते है, राजमहिषी की तरह मेरा सत्कार होता है

जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस मै ही मै हूँ। उत्तरदायित्व भी कम नहीं है। मै शहर की धमनी हूँ, उसका रक्तप्रवाह मुझीमे होकर चारों ओर दौड़ता है। मै सभ्यता का स्तम्भ हूँ, राज्य-सत्ता का प्राण हूँ। इतनी भीड़ रहती है कि सोचने की फुर्सत भी नहीं मिलती। जन-समुद्र की अनन्त लहरे मुझे कुचलती हुई एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती है, मै उफ तक नहीं करती। इतनी भीड मे मुझे अपना कहनेवाला एक भी नहीं एक क्षण के लिए भी मेरा होनेवाला कोई नहीं। मेरे जलते हुए निर्विश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूँदे छिड़क दे ऐसा कोई नहीं। फिर भी मै व्यथित नहीं होती, खुश रहने की कोशिश करती हूँ, वेदना के शोलो पर मुस्कुराहट की राख बिखेरती रहती हूँ, ओठो मे हृदय को छिपाये रखती हूँ। जहाँ तक होता है, उसने जो कुछ कहा था सब करती हूँ। केवल एक बात नहीं होती, उसे भूल नहीं पाती।

अमराई की छाया मे घास और पत्तो पर वह जीवन, पक्षियो के गाने, लताओ का झगड़ा, बटदादा की कहानियाँ, और और क्या कहूँ? कितनी बाते है जो भुलायी नहीं जा सकती! मेरे जीवन संगीत की तान लौटकर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसीका सर नहीं हिलता! यह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने! एक समय था, जब मै ऐसी नहीं थी

कला और देवियाँ

'श्री निराला'

"कला के विकास के साथ देवियों की आत्मा का विकास हो, और भारत की प्राचीन दिव्य शक्ति का प्रबोधन, भारतीयों के लिए उन्नयन का इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। (देवियों की कला में उनकी दिव्य विभूति की पड़ी हुई छाप विश्व को अपनी श्रेष्ठता का परिचय दे।")

समुद्र-मन्थन की बात प्रायः सभी को मालूम है। वह केवल एक रूपक है। उसका रहस्य कुछ और है। वहाँ समुद्र से मतलब अनादि ब्रह्म से है। यथार्थ समुद्र न तो मथा जा सकता है और न मथने से फेन के सिवा, उससे रत्नों के निकलने की आशा है। मथने के सामान जो हैं—मेरु, कछुआ शेष—ये सभी मथने के काम नहीं आ सकते और मथनेवाले दैत्य और देवता जैसे इस समय दुर्लभ हैं वैसे ही उस समय भी रहे होंगे। अगर ये आदमी की शकल के थे तो जैसे आदमी की शकलवालों के लिए इस समय समुद्र मथना असम्भव है, वैसे ही उस समय भी रहा होगा। सच पूछिये तो यह बात भाव की है, भाव से समझने के लिए, वही इसको सत्यप्राय होना है। (ब्रह्म-समुद्र को मथनेवाले देवता और दैत्य भली और बुरी प्रकृति के रूपक हैं। जो चौदह रत्न निकलते हैं, हम देखते हैं,

लक्ष्मी उनमें सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार नारी की श्रेष्ठता सनातन प्रमाणित होती है।) लक्ष्मी में दिव्य भाव तथा ऐश्वर्य के सभी गुण हैं। इसीलिए वे लक्ष्मी हैं। हम अपनी प्रत्येक गृहदेवी को गृहलक्ष्मी कहकर इन्हीं चिन्हों से संयुक्त करते हैं। यह बाहरी समादर या मर्यादा-दान नहीं, किन्तु प्रकृति के औचित्य की रक्षा है। हमने नारी को इसी महिमा में प्रत्यक्ष किया है।

उक्त चौदह रत्नों में एक रत्न और है उर्वशी। वह कला, गति और गीति की प्रतिमा है। इस उत्कर्ष से भी हम नारी को प्रत्यक्ष करते हैं।

लक्ष्मी और उर्वशी के गुण प्रत्येक स्त्री में मिले हुए हैं, उसी प्रकार, जिस प्रकार ब्रह्म-समुद्र में वे एक साथ मिले हुए थे। उर्वशी के नाम से किसी-किसीको हिचक हो सकती है, पर यह न समझने के कारण होगी। जिस प्रकार प्रत्येक रागिनी का चित्र खींचा गया है उसी प्रकार उर्वशी गीति और गति की प्रतिमा है। प्रत्येक स्त्री में एक प्रिया-भाव है जिससे वह पति का मनोरञ्जन करती है। इस भाव का भोक्ता संसार में केवल उसका पति है। यह उर्वशी का भाव है। प्रिया-भाव में गीति और गति के साथ रचना भी आती है, वह ललित वाक्य-रचना हो या छन्द-रचना। यह शब्दों के साथ भी मिली हुई है और ताल के साथ भी। शब्दों के साथ वह काव्य है और ताल के साथ नृत्य। उर्वशी के इसी भाव का आरोप देवी

सरस्वती पर किया गया है, इसलिए कि भाव में शुद्धता रहे। पर जैसा पहले कहा गया है, प्रिया-भाव की प्रधानता के लिए यहाँ उर्वशी ही आती है। इस प्रकार के सौंदर्यबोध में भी इस अप्सरा-भाव का प्राधान्य है। लक्ष्मी से नारी की महिमा व्यंजित होती है। जिस सुलक्षणता से वह गृह की कर्त्री है, ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, दूसरों को भोजन-पान और स्नेह देकर तृप्त करती है और गृह के समस्त वातावरण को शक्ति से ढके हुए, धारणा देती हुई वह पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा-मूर्ति बनकर आती है, वह उसका लक्ष्मी-भाव है। रक्षा, सेवा आदि उसके अन्तर्गत है। इसीका विकास मातृत्व में होता है। विश्व का पालन करनेवाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।

पहले भारत ने जिस तरह उन्नति की थी, अब वह 'तरह' बदल गयी है। पहले की बातों में मनुष्यता की एक अनुभूति मिलती है। वहाँ शांति है और आनन्दपूर्वक निर्वाह।/स्त्री और पुरुष दोनों अपनी विशेषता गढ़ते हुए समाज में मर्यादित रहकर, अनेक प्रकार के उत्कर्ष के चिन्ह अपनी सन्तानों के समक्ष छोड़ते हुए आनन्द के भीतर से मुक्ति को प्राप्त करते हैं॥ गृह के भीतर स्त्री है, बाहर पुरुष, दोनों अपने स्वत्व और धर्म की रक्षा में तत्पर। अब वह बात नहीं रही, जहाँ तक पश्चिम के विकास की रूप-रेखा है। एक बड़े विद्वान का कहना है कि अब गृह का स्थान होटल

ओर कलबा ने ले लिया ह और स्त्री-पुरुष के सप्रेम समझोते की जगह प्रतिद्वन्द्विता ने। स्त्री और पुरुष की प्रकृति के अनुसार दोना क कामा में अधिकारभेदवाली बात नही रह गयी। (फल यह हुआ है कि जो देश आधुनिक भावा से समुन्नत कहलाते ह, वे इस स्त्री-पुरुष-युद्ध में न घर मे शान्ति पाते हे, न बाहर।) प्रणय प्रतिपल कलह ह, कला बाजार की वस्तु बनी हुई है, यहाँ चमक-दमक अधिक, टिकाऊपन कम, नृत्य ओर गीत रङ्गशालाओ के लिए है, जहाँ इतर आवेश अधिक और दिव्यता थोडी। इस विशृङ्खलता का सारा कारण है पश्चिम का भौतिक उत्कर्ष। यह स्वाभाविक बात है कि केवल ससार की ओर ध्यान देने पर उसपर ईश्वरी प्रहार होगा, जिससे उसकी नश्वरता प्रतिक्षण सिद्ध होती रहेगी। (भारत ने ससार की ओर ध्यान दिया था ईश्वर से सयुक्त होकर। इससे उसकी सासारिक चारुता में भी नैसर्गिक छाप ह।)

यदि हमें प्रत्येक बात मे योरप का अनुकरण करना पडे तो इससे बढकर हमारी अमौलिकता का दूसरा प्रमाण न होगा। इसमे सदेह नही कि वहाँ हमारे सीखने योग्य बहुत-सी बाते ह, और हमे भारतीय होने के कारण वहाँ के गुण श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने में सकोच न होना चाहिए, पर यदि हम उन गुणो को, उन वस्तु-विषयो को अपने अनुरूप न बना सके, उन्हे अपने साँचे मे न ढाल सके तो यह हमारे लिए अपनी विशेषता से अलग होना होगा। इससे बढकर हमारी दूसरी हार न होगी। (युद्ध की

हार उतनी बडी नहीं जितनी बडी बुद्धि और संस्कृति की हार है।)

रात का समय सब भूमियों पर आता है। भारत की भूमि पर शताब्दियों से रात है। इस समय स्त्री-समाज पर जो पाशविक अत्याचार यहाँ हुए हैं उन्हें पढकर रोमांच होता है। साथ-साथ यह दृढता भी आती है कि इतने दिनों तक दलित होता हुआ भी भारत अपने विशेषत्व से रहित निष्प्राण नहीं हुआ— उसमें कोई अद्भुत जीवनी-शक्ति अवश्य थी। हमें इसी जीवनी-शक्ति का उद्बोधन करना है। इस शक्ति ने भारत की स्त्रियों को किस साँचे में ढाला है, इसके सहस्रों प्रमाण हैं और यह रूप अन्य देशों में बहुत कम प्राप्त होगा।

जिस क्षिप्रता और स्फूर्ति के लिए विदेशी महिलाएँ प्रसिद्ध हैं, सांसारिक कार्यों तथा क्रय-विक्रय में प्रवीण हैं, वह यहाँ की महिलाओं की पहली विशेषता थी। समय के अनेकानेक प्रहारों ने उन्हें निश्चेष्ट कर दिया है, स्त्री और पुरुष दोनों देह और मन की सहज गति से रहित हैं। पर वास्तव में वे ऐसे न थे। आध्यात्मिकता के मानी ही हैं लघु से लघुतर होना, जडत्व से वर्जित होना। (कला और कौशल के लिए यह पहली बात है कि गति अत्यन्त लघु, ललित और उचित शक्ति से भरी हो।)

कला अपने नाम से नारी-स्वभाव की सूचना देती है। उसकी कोमलता और विकास में महिलाओं की प्रकृति है। पुन उसकी

अधिकांश उपयोगिता गृह के भीतर है। इसलिए वह महिलाओं की ही है, इसमें सन्देह नहीं। (गृह के बाहर विशाल संसार में चलने-फिरने की शक्ति गृह के भीतर है। यदि भीतर से मनुष्य अशक्त रहा तो बाहर सफल नहीं हो सकता।) भीतर के संपूर्ण अधिकार स्त्रियों के हैं। घर का भीतरी हिस्सा देखने में छोटा होने पर भी महत्व में बाहरी हिस्से से कम नहीं, बल्कि गृह-धर्म के विचार से बढ़कर है। इसकी चारुता, आवश्यक छोटी मोटी वस्तुओं का निर्माण, जिनकी कमी हम बाजार से पूरी कर दूसरे देशों को धनवान करते हैं, रंगाई, सिलाई-बुनाई आदि सुई के भिन्न-भिन्न कार्य, गीत-वाद्य-नृत्य, शब्द-रचना, अलङ्कार-निर्माण, चित्रकारी, पाकशास्त्र, इतना ही नहीं, बल्कि चिकित्सा आदि भिन्न-भिन्न अङ्गों का गृह-विज्ञान स्त्रियों में विकसित रूप प्राप्त करे, इनके द्वारा वे संसार के ज्ञान से समृद्ध हों, गृह के साथ देश और विश्व से संयुक्त हों, इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। कला के विकास के साथ देवियों की आत्मा का विकास हो, और भारत की प्राचीन दिव्य शक्ति का प्रबोधन भी। भारतीयों के लिए उन्नयन का इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। (देवियों की कला में उनकी दिव्य विभूति की पड़ी हुई छाप विश्व को अपनी श्रेष्ठता का परिचय दे।)

मेरा घर

श्री अख्तर हुसेन 'रायपुरी'

वह घर जिसे देश का पड़पाला समझना चाहिए—सूबे के बेटे, शहर के छाकर, मुहल्ले का लड़का—वह बहुत बड़ा था। यह न मेरा घर था, न मेरे बाप का। बल्कि एक सेठ का मकान था। इसमें बहुत-से कमरे थे, जैसे मकड़ी के जाले में बहुत-से खाने होते हैं। बहुतेरे लोग मक्खियों की तरह इन कोठरियों में रहते थे। एक तला दूसरे तले पर इस प्रकार चला गया था जैसे एक आसमान पर दूसरा आसमान रखा हो, और चौथी मंजिल पर वह सेठ उसी ठाट से रहता था जैसे प्रभु ईसा मसीह चौथे आसमान पर विराजते हैं।

इस मकान में 'सभ्यता' की बनायी हुई सब छद्म सीमाएँ टूट गयी थीं, धर्म और जाति के तिलस्म ढह गये थे। यहाँ हिन्दू-मुसलमान, गरीब-अमीर सब रहते थे। सदर फाटक के नीचे की बरसाती में कुली और फकीर दरबान को एक-एक आना देकर रात को सोते थे। आँगन में गाड़ीवान ताड़ी पीते, जुआ खेलते और कव्वाली गाते थे। सीढ़ी से चढ़िये तो बाईं ओर नाई-टाली थी, उसके सामने भठियारों की दूकानें। निम्न श्रेणी की आबादी यहाँ खत्म हो जाती थी।

ऊपर की मंजिल में दफ्तरों के बाबू और छोटे-मोटे दूकानदार रहते थे। एक कमरे में कोई बही-खाते बनाता था,

तो दूसरे में कोई खड़ाऊं रगता था, कहीं कोई ताला की मरम्मत का काम करता था। इन्हीमे से एक कोठरी में मेरा घर था। किसी हिन्दी समाचार-पत्र के सहायक संपादक के लिए इससे उपयुक्त वासस्थान भला और कौन हो सकता था!

रात को जब मैं थका-माँदा अपने बसेरे में आता और बिस्तर पर पड़ जाता तो मेरी आवभगत के लिए हर तरफ रेडियो, हारमोनियम और ग्रामोफोन बज उठते थे, और मुझे छेड़ने के लिए आपस में गुप्त प्रपंच रचकर ऊँचे सुरों में कव्वाली और गजल आलापने लगते थे। इनकी चुनौती में योगदान करके पड़ोस के घर की मारवाड़ी औरतें 'हम्मीर राणा जुग जीणा' की तान छेड़ देती थीं। हमारे मकान की जड़ में सुरंग खोदकर कुछ काबुली सूदखोर भी रहते थे। शाम को चरस पीकर और वजनी पत्थरों की फेंक का खेल दिखलाकर रात के समय ये लोग गला फाड़कर आलमखाँ की प्रेम-गाथा बखाना करते थे। यह आलमखाँ एक पठान प्रेमी था। कैसे अचंभे की बात है कि प्रेम-जैसी सरस कोमल भावना सात-सात फुट ऊँचे लट्ठमारों को भी मोह सकती है! अँधेरे में लेटे-लेटे मेरी कल्पना आलमखाँ का चित्र जो एक चटियल पहाड़ी पर खड़ा पैतरें बदल-बदलकर पठान सुंदरी को मोहने का जतन करता होगा।

पर जब इस तुमुल-नाद को दबाकर गाड़ीवानों का गगन-भेदी नारा 'काली कमलीवाला' वातावरण की धज्जियाँ उड़ा

देता तो मेरा दिमाग संगीत की इस बाढ़ मे डूब जाता था। उसका एक हिस्सा ध्रुपद के साथ नाचने लगता था, तो दूसरा खम्माच पर सिर धुनता था। अभी मै इस झगडे की चौमुखी चोट से सँभलने भी न पाता था कि मुहल्ले की मसजिद का मुल्ला कड़ककर अल्लाह के सर्वशक्तिमान होने का ऐलान कर देता था। जब मेरी सहनशक्ति की कमर टूट जाती थी और इसके सिवा कोई चारा न रह जाता था कि अल्लाह मियाँ के आगे सिर दे मारूँ।

जब मेरी पलकें आप अपने बोझ के नीचे दबकर बंद हो जातीं तो गोया मै सो जाता था। नींद मे केवल एक सपना दिखायी देता था। वह यह कि गवैयों ने दल बाँधकर मुझपर हल्ला बोल दिया है।

गले से चीख का निकलना, आँखों का खट से खुल जाना, सूरज की पहली किरण का झुककर सलाम करना।

मै हड़बड़ाकर उठ बैठता था। सुबह-सवेरे कश्मीरी रंगरेज आँगन में भट्ठी चढ़ा देता था। पत्थर के कोयलो का धुआँ किसी परदार साँप के समान उड़ता हुआ मेरे कमरे के अन्दर घुस आता था। अब तक मुझे उस रंगरेज की तपी हुई देह और तमतमाया हुआ दढ़ियल चेहरा याद है। उसके साथी नाँद के पानी को चलाते हुए कोई गीत गाया करते थे, जिसकी तान इसपर टूटती थी—

("ऐ शाल! उबलते हुए पानी से जब तू निकलेगी, तब कहीं इस योग्य होगी कि प्रिया की सहेली बने।")

नीचे के गोदामों में कच्चे चमड़ा के ढेर लगे हुए थे मूक पशुओ की खालों में मनुष्य की पाशविकता की दास्तान घिनौनी दुर्गन्ध से लिखी हुई थी। मालूम नहीं, कितनी बीमारियो के कीडे उस मकान मे बिलबिलाया करते थे। भैस की बू कुछ अफराई हुई होती थी, गोह के चाम से भुने हुए कटहल की बू आती थी। इसी तरह विभिन्न खाला से भिन्न-भिन्न प्रकार की दुर्गन्ध निकला करती थी।

नहाने की चौकियो पर काले-काले तोदल शरीरो की भीड। भाँति-भाँति के पसीनो का आपस मे मिलकर तरह-तरह की खखारो के साथ नालियो मे जमा हो जाना।

शुक्रवार के दिन एक ऐसी ट्रेजेडी हुआ करती थी, जिसकी याद अब भी मुझे दहला देती है। उस दिन प्रात काल को भिखारियो की भीड उस विशाल अट्टालिका के प्रागण में जमा होती थी। मकान-मालिक उन्हे एक-एक पैसा देकर अजस्र पुण्य का सचय किया करता था। अपने कमरे के बरामदे में खडा होकर मै कोढी, लगडे और अँधे भिखमगो के उस जमघट को देखा करता था। इसके बाद कई-कई दिन मेरी आत्मा क्षुब्ध और संतप्त रहती थी। ऐसा लगता था कि पददलित और लुठित मानव समाज अपने ईश्वर से भीख माँगने के लिए इकट्ठा होता है। और वह जगतसेठ इन अपाहिजो को ठोकरो के साथ कुछ झूठे टुकडे बाँटा करता है।

मै जो सुस्ती और लापरवाही मे अपना सानी नहीं रखता, इस हलाहल में भी स्वाद पाने लगा था। इस सडायँध की मुझपर वही प्रतिक्रिया होने लगी थी जो जुगनू पर गोबर की ढेरी की। पता नही कि आदमी को ऍडियॉ रगडकर मरते और मरने से पहिले पचामृत पीते हुए देखकर आपको मजा आता है या नही। मेरे लिए तो इस दृश्य में बडा आकर्षण था और इसीलिए मे वहॉ से किसी तरह टलने का नाम न लेता था।

मगर मेरे पुराने हितैषी पनवाडी और भठियारे को बडा आश्चर्य और खेद हुआ, जब एक दिन उन्होंने मुझे अपने सामान के साथ किसी छकडे पर सवार पाया। उन्होने भूलकर भी न सोचा होगा कि मे ऐसी कर्मण्यता का भी प्रमाण दे सकता हूँ। पर पिछले दिन एक साथ दो ऐसी घटनाएँ हुई जिन्होंने मेरी आत्मा को जगा दिया। सच तो यह है कि आज पहली बार मुझे आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान हुआ। अब तक शायद बदहजमी के कारण मेरी आंता में इस बेचारी का अचार बन रहा था।

जाडे का मौसम था और भोर की घडी। मै कपडे पहनकर इस इरादे से चला कि चाय पीकर गपशप करते हुए दफ्तर पहुँच जाऊँगा।

सदर फाटक के पास पहुँचा ही था कि ऑख चबूतरे के कोने पर पडी। टाट में लिपटा हुआ कोई जानदार बहुत ही

धीमी आवाज मे कराह रहा था। मै ठिठक गया। क्योकि वह एक बूढी औरत का शरीर था जो दम तोड़ने के लिए तड़प रहा था। पीब और थूक मे सनी हुई यह अधमरी लाश पानी की एक बूँद के लिए सिसक रही थी। आने-जानेवालो का ताता लगा हुआ था। सब इस बुढिया को एक नजर देखते और घिन के मारे अपने चेहरे को रूमाल मे लपेटकर चले जाते थे।

मै बरबस सडी हुई चटाई पर बैठ गया। क्षण-भर मे ससार के इतिहास की झाँकी आँखो के आगे फिर गयी उसी असहाय बुढिया के समान घायल और बीमार मानवता जीवन-मार्ग पर पानी-पानी पुकारती हुई पडी थी। राजाओ, धरमाओ और पडितो का जुलूस रग-बिरगे कफनो मे लिपटा हुआ उसकी ओर घृणा से घूरता हुआ सभ्यता के रूमाल से मुँह छिपाये आखे चुराये चला जा रहा था।

दिल की थकान दूर करने के लिए उसी रात को मै नाटक देखने चला गया। नाटक का एक सीन मजेदार था। एक निराश प्रेमी आत्मघात कर लेता है, पर इससे पहले गाना नही भूलता। (गाना दर्शको को इतना भाता है कि 'वन्स मोर' की पुकार से नाटकालय गूँज उठता है। मुर्दे प्रेमी मे जान पड जाती है, वह उठकर अपने प्रशसको की प्यास बुझाता है और फिर छुरा भोककर मर जाता है।)

नाटक-घर से लौटते-लौटते रात के दो बज गये। चारों

आर सन्नाटा था। मेरे घर के आगन और दालानो मे गरीब खर्राटे भर रहे थे, बीच-बीच मे कुत्ते धरतीवासिया और आकाश-वासियो के पारस्परिक सम्बन्ध पर कडी टीका-टिप्पणी करके चुप हो जाते थे।

मै सीढी पर चढ ही रहा था कि नीचे की एक आँख-ओझल कोठरी से कई मर्दों की कानाफूसी और एक औरत की दबी हुई चीख सुनायी दी। मै खटका, दबे पॉव नीचे उतरा और कोठरी के दरवाजे के पास जाकर पट की दरार से अन्दर झाँकने लगा।

रात को मैने सपना देखा कि (ससार औरत है और रुपया मर्द है। और यह मर्द इस औरत के साथ बलात्कार करता है।)

पौ फटते ही मैने अपनी फटी हुई किताबो, टूटे हुए बरतनो और पुराने कपडो को एक गाडी पर लादा। और आकर इस झोपडी मे रहने लगा, जो जीवन के कोलाहल से बहुत दूर और मौत से बहुत निकट है।

हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी

श्री प्रो० धीरेन्द्र वर्मा

हिन्दी—संस्कृत की 'स' ध्वनि फारसी में 'ह' के रूप में पायी जाती है। अत संस्कृत के 'सिन्धु' और 'सिन्धी' शब्दो के फारसी रूप 'हिन्दु' और 'हिन्दी' हो जाते है। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' शब्द फारसी भाषा का ही है। संस्कृत अथवा आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ के किसी भी प्राचीन ग्रथ में इसका व्यवहार नहीं किया गया है। फारसी में 'हिन्दी' का शब्दार्थ 'हिन्द से संबध रखनेवाला' है, किन्तु इसका प्रयोग 'हिन्द के रहनेवाले' अथवा 'हिन्द की भाषा' के अर्थ में होता रहा है। 'हिन्दी' शब्द के अतिरिक्त फारसी से ही 'हिन्दू' शब्द भी आया है। फारसी में हिन्दू शब्द का व्यवहार 'इस्लाम धर्म के न माननेवाले हिन्दवासी' अर्थ में प्राय मिलता है। इसी अर्थ के साथ यह शब्द अपने देश में प्रचलित हो गया है।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जानेवाली किसी भी आर्य, द्राविड अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है। किन्तु आजकल वास्तव में इसका व्यवहार उत्तर भारत के मध्य भाग के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया, तथा इसी भूमिभाग की बोलियों

और उनसे सबंध रखनेवाले प्राचीन साहित्यिक रूपो के अर्थ मे साधारणतया होता है। इस भूमिभाग की सीमाएँ पश्चिम मे जैसलमीर, उत्तर-पश्चिम मे अम्बाला, उत्तर मे शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाडी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूरब मे भागलपुर, दक्षिण-पूरब मे रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम मे खडवा तक पहुँचती है। इस भूमिभाग मे हिन्दुओ के आधुनिक साहित्य, पत्र-पत्रिकाओ, शिष्ट बालचाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र हिन्दी ही है। साधारणतया 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग जनता मे इसी भाषा के अर्थ मे किया जाता है, किन्तु साथ ही इस भूमिभाग की ग्रामीण बोलियाँ—जैसे मारवाडी, ब्रज, छत्तीसगढी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन ब्रज, अवधी आदि साहित्यिक भाषाओ को भी हिन्दी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है। हिन्दी भाषा का यह प्रचलित अर्थ है। इस समस्त भूमिभाग की जनसख्या लगभग 11 करोड है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिये हुए भूमिभाग मे तीन-चार भाषाएँ मानी जाती है। राजस्थान की बोलियो के समुदाय को 'राजस्थानी' के नाम से पृथक भाषा माना गया है। बिहार मे मिथिला, पटना और गया की बोलियो तथा सयुक्त प्रान्त में बनारस, गोरखपुर कमीशनरी की बोलियों के समूह को एक भिन्न 'बिहारी' भाषा माना जाता है। उत्तर के पहाडी प्रदेशो की बोलियाँ भी 'पहाडी भाषाओ' के नाम से पृथक मानी जाती है। इस तरह से

भाषा-शास्त्र के सूक्ष्म भेदों की दृष्टि से 'हिन्दी भाषा' की सीमाएँ निम्नलिखित रह जाती हैं —उत्तर में तराई, पश्चिम में पंजाब के अम्बाला और हिसार के जिले तथा पूरब में फैजाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के जिले। दक्षिण की सीमा में कोई परिवर्तन नहीं होता और रायपुर तथा खंडवा पर ही यह जाकर ठहरती है। इस भूमिभाग में हिन्दी के दो उपरूप माने जाते हैं जो पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी के नाम से पुकारे जाते हैं। हिन्दी बोलनेवालों की संख्या लगभग 6½ करोड़ है। भाषा-शास्त्र से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में 'हिन्दी भाषा' शब्द का प्रयोग इसी भूमिभाग की बोलियों तथा उनकी आधारभूत साहित्यिक भाषाओं के अर्थ में होता है।

हिन्दी शब्द के शब्दार्थ, प्रचलित अर्थ, तथा शास्त्रीय अर्थ के भेद को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। साहित्यिक पुस्तकों में इस शब्द का प्रयोग चाहे किसी अर्थ में किया जाय, किन्तु भाषा से संबंध रखनेवाले ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग आधुनिक वैज्ञानिक खोज के अनुसार दिये गये अर्थ में ही करना उचित होगा।

उर्दू—आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के उस दूसरे साहित्यिक रूप का नाम उर्दू है जिसका व्यवहार उत्तर भारत के समस्त पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा उनसे अधिक संपर्क में आनेवाले कुछ हिन्दुओं, जैसे पंजाबी, काश्मीरी तथा पुराने कायस्थों आदि में पाया

जाता है। भाषा की दृष्टि से इन दोनों का मूलाधार एक ही है, किन्तु साहित्यिक वातावरण, शब्द-समूह तथा लिपि में, दोनों में आकाश-पाताल का भेद है। हिन्दी इन सब बातों के लिए भारत की प्राचीन संस्कृति तथा उसके वर्तमान रूप की ओर देखती है, उर्दू भारत के वातावरण में उत्पन्न होने और पनपने पर भी फारस और अरब की सभ्यता और साहित्य से जीवन-श्वास ग्रहण करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का जन्म पहले हुआ था। भारतवर्ष में आने पर बहुत दिनों तक मुसलमानों का केन्द्र देहली रहा, अतः फारसी, तुर्की और अरबी बोलनेवाले मुसलमानों ने जनता से बातचीत और व्यवहार करने के लिए धीरे-धीरे देहली के अड़ोस-पड़ोस की बोली सीखी। इस बोली में अपने विदेशी शब्द-समूह को स्वतन्त्रतापूर्वक मिला लेना इनके लिए स्वाभाविक था। इस प्रकार की बोली का व्यवहार सबसे प्रथम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात् देहली के महलों के बाहर 'शाही-फौजी बाजारों' में होता था। अतः इसीसे देहली के पड़ोस की बोली के इस विदेशी शब्दों से मिश्रित रूप का नाम 'उर्दू' पड़ा। 'उर्दू' शब्द का अर्थ बाज़ार है। वास्तव में आरंभ में उर्दू बाजारू भाषा थी। शाही दरबार से संपर्क में आनेवाले हिन्दुओं का इसे अपनाना स्वाभाविक था, क्योंकि फारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित किन्तु अपने देश की

बोली मे एक इस मिश्र-भाषा-भाषी विदेशियो से बातचीत करने मे इन्हे सुविधा रहती होगी। जैसे ईसाई धर्म ग्रहण कर लेने पर भारतीय भाषाएँ बोलनेवाले भारतीय अंग्रेजी से अधिक प्रभावित होने लगते है उसी तरह मुसलमान धर्म ग्रहण करनेवाले हिन्दुओ मे भी फारसी के बाद उर्दू का विशेष आदर होना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे यह भारतीय मुसलमान जनता की अपनी भाषा हो गयी। शासको द्वारा अपनाये जाने के कारण यह उत्तर भारत के समस्त शिष्ट समुदाय की भाषा मानी जाने लगी। जिस तरह आजकल पढे-लिखे हिन्दुस्तानी के मुँह से 'मुझे चान्स (chance) नही मिला' निकलता है, उसी तरह उस समय 'मुझे मौका नही मिला' निकलता होगा। जनता इसीको 'मुझे औसर नही मिला' कहती होगी और अब भी कहती है। बोलचाल की उर्दू का जन्म तथा प्रचार इसी प्रकार हुआ।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उर्दू का मूलाधार देहली के निकट की खडी बोली है। यही बोली आधुनिक साहित्यिक हिन्दी की भी मूलाधार है। अत जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिन्दी सगी बहने है। विकसित होने पर इन दोनो मे जो अन्तर हुआ, उसे रूपक मे यो कह सकते है कि एक तो हिन्दुस्तानी बनी रही और दूसरी ने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया। एक अंग्रेज विद्वान ग्रैहम बेली महोदय ने उर्दू की उत्पत्ति के सबंध मे एक नया विचार रखा है।

उनकी समझ में उर्दू की उत्पत्ति देहली में खड़ी बोली के आधार पर नहीं हुई, बल्कि इससे पहले ही पंजाबी के आधार पर यह लाहौर के आसपास बन चुकी थी और देहली में आने पर मुसलमान शासक इसे अपने साथ ही लाये थे। खड़ी-बोली के प्रभाव से इसमें बाद को कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, किन्तु उसका मूलाधार पंजाबी को मानना चाहिए, खड़ी बोली को नहीं। इस सम्बन्ध में बेली महोदय का सबसे बड़ा तर्क यह है कि देहली को शासन-केन्द्र बनाने के पूर्व 1000 से 1200 ईसवी तक लगभग दो सौ वर्ष मुसलमान पंजाब में रहे। उस समय वहाँ की जनता के संपर्क में आने के लिए उन्होंने कोई न कोई भाषा अवश्य सीखी होगी और यह भाषा तत्कालीन पंजाबी ही हो सकती है। यह स्वाभाविक है कि भारत में आगे बढ़ने पर वे इसी भाषा का प्रयोग करते रहे हों। बिना पूर्ण खोज के उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय सर्वसम्मत मत यही है कि उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिन्दी दोनों का मूलाधार देहली-मेरठ की खड़ी बोली ही है।

उर्दू का साहित्य में प्रयोग दक्षिण हैदराबाद के मुसलमानी दरबार से आरम्भ हुआ। उस समय तक देहली-आगरे के दरबार में साहित्यिक भाषा का स्थान फारसी को मिला हुआ था। साधारण जनसमुदाय की भाषा होने के कारण अपने घर पर उर्दू

हेय समझी जाती थी। हैदराबाद रियासत की जनता की भाषाएँ भिन्न द्राविड वंश की थीं, अतः उनके बीच में यह मुसलमानी आर्य भाषा शासकों की भाषा होने के कारण, विशेष गौरव की दृष्टि से देखी जाने लगी। इसीलिए उसका साहित्य में प्रयोग करना बुरा नहीं समझा गया। औरंगाबादी 'वली' उर्दू साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। वली के कदमों पर ही मुगल-काल के उत्तरार्द्ध में देहली और उसके बाद लखनऊ के मुसलमानी दरबारों में भी उर्दू भाषा में कविता करनेवाले कवियों का एक समुदाय बन गया जिसने इस बाजारू बोली को साहित्यिक भाषाओं के सिंहासन पर बैठा दिया। फ़ारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण कविता में प्रयुक्त उर्दू को 'रेख्ता' (शब्दार्थ 'मिश्रित') कहते हैं। स्त्रियों की भाषा 'रेख्ती' कहलाती है। दक्षिणी मुसलमानों की भाषा 'दक्खिनी उर्दू' कहलाती है। इसमें फ़ारसी शब्द कम इस्तेमाल होते हैं और उत्तर भारत की उर्दू की अपेक्षा यह कम परिमार्जित है। ये सब उर्दू के रूप-रूपान्तर हैं। हिन्दी भाषा के गद्य के समान उर्दू भाषा का गद्य-साहित्य में व्यवहार अंग्रेजी शासनकाल में ही आरम्भ हुआ। मुद्रणकला के साथ इसका प्रचार भी अधिक बढ़ा। उर्दू भाषा अरबी-फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाती है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में कचहरी-तहसील और गाँव में अब भी उर्दू में ही सरकारी कागज लिखे जाते हैं। अतः नौकरी-

पेशा हिन्दुओं को भी इसकी जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। आगरा-देहली की तरफ के हिन्दुओं में इसका अधिक प्रचार होना स्वाभाविक है। पंजाबी भाषा में साहित्य न होने के कारण पंजाबी लोगों ने तो इसे साहित्यिक भाषा की तरह अपना रखा है। हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में हिन्दुओं के बीच में उर्दू का प्रभाव प्रति दिन कम हो रहा है।

हिन्दुस्तानी—'हिन्दुस्तानी' नाम यूरोपीय लोगों का दिया हुआ है। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी या उर्दू भाषा का बोलचाल का रूप हिन्दुस्तानी कहलाता है। केवल बोलचाल में प्रयुक्त होने के कारण इसमें फारसी अथवा संस्कृत शब्दों की भरमार नहीं रहती, यद्यपि उसका झुकाव उर्दू की तरफ अधिक रहता है। कदाचित यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हिन्दुस्तानी उत्तर भारत के पढ़े-लिखे लोगों की उर्दू है। उत्पत्ति की दृष्टि से आधुनिक साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू के समान ही इसका आधार भी खड़ी बोली है। एक तरह से यह हिन्दी-उर्दू की अपेक्षा खड़ी बोली के अधिक निकट है, क्योंकि यह फारसी-संस्कृत के अस्वाभाविक प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त है। दक्षिण के ठेठ द्राविड़ प्रदेशों को छोड़कर शेष समस्त भारत में हिन्दी-उर्दू का यह व्यावहारिक रूप हर जगह समझ लिया जाता है। हैदराबाद, बंबई, कराची, जोधपुर, पेशावर, नागपुर, काश्मीर, लाहौर, देहली, लखनऊ, बनारस, पटना आदि सब

जगह हिन्दुस्तानी बोली से काम निकल सकता है। अंतिम चार-पॉच स्थान तो इसके घर ही है।

साधारण श्रेणी के लोगो के लिए लिखे गये साहित्य मे हिन्दुस्तानी का प्रयोग पाया जाता है। किस्सा, गजलो और भजनो आदि की बाजारू किताबे जो जन-समुदाय को प्रिय हो जाती हैं, फारसी और देवनागरी दोनो लिपियो मे छापी जाती है। इस ठेठ भाषा मे कुछ साहित्यिक पुरुषो ने भी लिखने का प्रयास किया है। इशा की 'रानी केतकी की कहानी' तथा प० अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' हिन्दुस्तानी को साहित्यिक बनाने के प्रयोग है, जिनमे ये सज्जन सफल नही हो सके।

खडी बोली शब्द का प्रयोग प्राय देहली-मेरठ के आसपास बोली जानेवाली गॉव की भाषा के अर्थ मे किया जाता है। भाषा-सर्वे मे ग्रियर्सन महोदय ने इस बोली को 'वर्नाक्युलर हिन्दुस्तानी' नाम दिया है। मेरी समझ मे खडी बोली नाम अधिक अच्छा है। जैसे ऊपर बतलाया जा चुका है, हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी इन तीनो रूपो का मूलाधार यह खडी बोली ही है। कभी-कभी ब्रजभाषा तथा अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओ के मुकाबले मे आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को भी खडी बोली नाम से पुकारा जाता है। ब्रजभाषा और इस 'साहित्यिक खडी बोली हिन्दी' का झगडा बहुत पुराना हो चुका है। साहित्यिक अर्थ में प्रयुक्त खडी बोली शब्द तथा

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से प्रयुक्त खड़ी बोली शब्द इन दोनों के भेद का स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव मे खड़ी (खरी) लगती है। कदाचित् इसी कारण इसका नाम खड़ी बोली पड़ा। हिन्दी, उर्दू, साहित्यिक खड़ी बोली मात्र है। हिन्दुस्तानी शिष्ट लोगों की बोलचाल की कुछ परिमार्जित खड़ी बोली है।

नयी कहानी का प्लाट

श्री अज्ञेय

रात के ग्यारह बजे है, लेकिन दफ्तर बन्द नही हुआ है। दो तीन चरमराती हुई लकडी मेजो पर सिर झुकाये बाये हाथ मे अपनी तकदीर पकडे और दाये से कलम घिराते हुए कुछ एक प्रूफरीडर बैठे है। उनके आगे दाये-बाये रद्दी और कागजो का ढेर लगा है, जो अगर फर्श पर होता, तो कूडा कहलाता, लेकिन मेज पर पडा होने की वजह से 'कापी' या 'गैली' कहलाने का गौरव पाता है।

दफ्तर से परे हटकर दूसरे लम्बे-से कमरे मे बिजली के प्रकाश मे कम्पोजिटर अपनी उल्टे अक्षरो की दुनिया मे मस्त है। पीछे प्रेस की गडगडाहट के मारे कान बहरे हो रहे है।

और कम्पोजिंग रूम के बाहर बरामदे मे सम्पादकजी टहल रहे है। माथे पर झुर्रियॉ पडी है, कमर के पीछे टिके हुए एक हाथ मे स्लिपो की पैड है, दूसरे में पेंसिल। सम्पादकजी बैठकर काम करनेवाले जीव है, लेकिन आज वे बैठे नही है। आज उनसे बैठा नही जा रहा है। आज सम्पादकजी व्यस्त है, सन्त्रस्त है।

विशेषाक निकल रहा है। शुरू के पेजो मे एक कहानी देनी है। लेकिन अच्छी कहानी कोई है नही क्या करूँ?

दो सड़ी-सी कहानियाँ है, जो देने के काबिल नहीं है। लेकिन देनी तो होगी। आग्रह करके मंगायी है। नखरे करके भेजी है। लक्ष्मीकान्त 'शारदा' का संपादक है। उसकी कहानी मंगाकर न छापूँगा तो जान को आ जाएगा। आलोचना में बैर निकालेगा। फोटो भी छपाएगा, पैसा भी लेगा, उसपर देगा यह सड़ी-सी चीज! नाली की दुर्गन्ध आती है। आखिरी पेजों में सही, लेकिन पहली कहानी? कहानी तो चाहिए। कहाँ से लाऊँ, क्या करूँ?

लेखक बहुत है। मर गये लेखक। कम्बख्त वक्त पर काम न आये तो क्या करूँ, आग लगाऊँ? लेकिन पहली कहानी? क्या करूँ? खुद लिखूँ? लेकिन, पहले ही मैं? दीवालियापन? लेकिन यकायक घूमकर सम्पादकजी ने आवाज दी—"लतीफ! ओ मियाँ अब्दुल लतीफ!"

मियाँ लतीफ आकर सम्पादकजी के सामने खड़े हो गये। उन्होंने न आवाज का जवाब दिया था, न कुछ बोले। सिर्फ सामने आकर खड़े हो गये।

"देखो लतीफ, एक कहानी चाहिए। कल सवेरे तक।"

"जी! लेकिन—"

"कल सवेरे तक। एक कहानी, दो पेज।" कहकर सम्पादकजी ने और भी व्यस्तता दिखाते हुए टहलाई पुनः जारी करने के लिए मुँह मोड़ा।

"जी" कहकर मियाँ अब्दुल लतीफ लौट पड़े और प्रूफरीडरों से कुछ हटकर एक टीन की कुरसी पर बैठ गये।

मियाँ लतीफ का नाम कुछ और है। क्या है उससे मतलब नहीं। सब लोग उन्हें मियाँ अब्दुल लतीफ कहते हैं। नाम से ध्वनित होता है कि वे पागल हैं। लेकिन हैं वैसे नहीं। उनमें एक खास प्रतिभा है। जो काम औरों से हताश होकर उनके सिपुर्द किया जाता है वह हो ही जाता है, चाहे कैसा ही हो। इस सर्वकार्यदक्षता का परिणाम है कि वे किसी भी काम पर नियुक्त नहीं हैं, सभी उन्हें या तो सदाव्रत का अपराधी समझते हैं, या एक आलसी और निकम्मा घाघाबसन्त। प्रूफरीडर समझते हैं, वह मशीनमैन का असिस्टेंट है। मशीन-मैन समझता है, वह कामचोर कम्पोजिटर है, कम्पोजिटरों का विश्वास है कि वह चपरासी है। चपरासी उन्हें कह देता है कि बाबू, मुझे फुरसत नहीं है, इसलिए जरा यह चिट्ठी तुम पहुँचा देना।

और मियाँ लतीफ सब-कुछ कर देते हैं। कभी उन्हें याद आ जाता कि वे सहकारी सम्पादक के पद के लिए बुलाये गये थे तो वे उस स्मृति को निकाल बाहर करते हैं। उससे उनकी हेठी होती है। वे क्या सम्पादक के सहकारी हैं? उन्हें 'सहकारी कुछ' कहा जा सकता है तो 'सहकारी विधाता' ही कह सकते हैं।

ख़ैर। जैसे विधाता को सुख से कोई याद नही करता, वैसे ही अब काम ठीक चलने पर मियाँ लतीफ की कुछ पूछ नही है। वे अलग कोने मे टीन की कुरसी पर बैठे है, बायें हाथ मे दवात है, दाहिने मे कलम, घुटने पर स्लिप-बुक और मस्तिष्क मे मस्तिष्क मे क्या है?

(2)

माथापच्ची।

दो पेज। दूसरा फरमाँ। कहानी अच्छी होनी चाहिए। विशेषाक है।

रोमास। रोमाटिक कहानी हो। प्रेम, यानी यानी रोमाटिक। नही, ऐसे काम नही चलेगा। क्या बचपन में मैने प्रेम नही किया? प्रेम न सही, वही कुछ अधकचरा खटमिट्ठा-सा ही सही। कुछ

मियाँ लतीफ को याद आया, जब वे गाँव में रहते थे, तब एक बार रोमास उनके जीवन के बहुत पास आया था। गाँव में पूर्व की ओर एक शिवालय था, जिसके साथ एक बगीचा था, जिसमें नीबू और अमरूद के कई पेड थे। लतीफ स्कूल से भागकर वहाँ जाते थे। एक दिन वही अमरूद के पेड के नीचे उन्होने देखा, उनकी समवयस्क एक लडकी खडी है और लोलुप दृष्टि से पेड पर लगे एक कच्चे अमरूद को देख रही है। लतीफ ने चुपचाप पेड पर चढकर वह अमरूद गिरा दिया। वह

लडकी के पैरा के पास गिरा। लतीफ खडे रहे कि लडकी उसे उठा लेगी, लेकिन लडकी ने वैसा न कर उनसे पूछा--'क्या जी, तुमने मेरा अमरूद क्या गिरा दिया?'

'तुम्हारे खाने के लिए।' लतीफ जरा हैरान हुए। लेकिन उन्होने जेब मे से चाकू निकाला जिसका फल कुछ टूटा हुआ था, फिर दूसरी जेब मे से एक पुडिया निकाली, अमरूद काटा और आगे बढाते हुए कहा—'यह लो, नमक-मिर्च भी है, खाओ।'

लडकी ने अमरूद तो खा लिया, लेकिन खा चुकने के बाद कहा—'अब बिना पूछे मेरा अमरूद मत तोडना, नहीं तो मै नही खाऊँगी।' ओर चली गयी।

हाँ, पहला दृश्य तो कुछ ठीक है। दूसरा? एक दिन फिर मिले। अब की लडकी ने अपना नाम बताया 'किस्सो'। लेकिन कहानी में किस्सो कैसे जाएगा? नाम बताया था रश्मि। नहीं जी, यह बहुत संस्कृत है। रोमांटिक नाम चाहिए। किरण—लेकिन यह बहुत कामन (प्रचलित) हो गया है। हाँ, तो नाम बताया मदालसा। मियाँ लतीफ ने अपना नाम और उसका नाम एक अमरूद के पेड पर चाकू से खोद दिये। अमरूद पर नाम बहुत साफ खुद सकता है। किस्सो—मदालसा खुश हो गयी। उसने लतीफ के—नहीं, लतीफ कैसे? मदालसा ने चित्रांगद के गले में हाथ डालकर कहा--

'तुम बडे अच्छे हो। यहाँ हमारा नाम साथ लिखा है, अब हमारा नाम साथ ही लिया जाएगा।'

ठीक तो है। दूसरा दृश्य भी ठीक है। और नामो का जोडा क्या फिट बैठता है—'मदालसा-चित्रागद!' पर

किस्सो की शादी हो गयी। कह लो मदालसा। शादी तो हो गयी, और एक अहीर के साथ हुई जिसने मुर्गियो का फार्म खोल रखा था।

रोमाटिक। दुखान्त। मदालसा। चित्रागद। अहीर को नलराम कह लो। लेकिन शादी तो हुई, मुर्गी फार्म के मालिक के साथ हुई। रोमाटिक कहानी की नायिका रहे किस्सो और पाले मुर्गियाँ!

टन-टन-टन टन! घडी ने बारह बजा दिये।

मियाँ लतीफ उठे। उठकर उन्होंने कुरसी को घुमाया। अब तक उनका रुख प्रूफरीडरों की ओर था, अब ठीक उलटी ओर दीवार की तरफ हो गया, मानो कुरसी का रुख पलटने से विचार-धारा भी पलट जाएगी।

रोमाटिक की ऐसी तैसी। यथार्थवाद का जमाना है। क्यों न वैसा लिखूँ!

यथार्थवाद। सुबह भुने चने दुपहर को खेसारी की दाल, शाम को मकई की रोटी और मूली के पत्ते का साग। कभी फ़ाका। पसीना और मैल और लीद-गोबर और ठिठुरन और

मच्छर और मलेरिया और न्युमोनिया और कुएँ का कच्चा पानी और नग-धड़ंग बच्चे।

तो, वहीं से चले। किस्सा और वली। और उनका मुर्गियों का फार्म। बीमारी आती है, मुर्गियाँ एक एक करके मरने लगती हैं। चूज़े सुस्त होकर बैठ जाते हैं। किस्सा अण्डे गिनती है और सोचती है, भविष्य में क्या होगा?

वली का प्रिय एक मुर्गा है, विलायती लेगहार्न नस्ल का। एक दिन वह भी सुस्त होकर बैठ गया। दिन ढलते उसकी गर्दन एक ओर को झुक गयी, शाम होते ऐंठ गयी। वली हतसज्ञ-सा देखता रह गया। किस्सो मुर्गी को गोद में लेकर धाड़े मारकर रोने लगी

किस्सो का विलाप।

अब्दुल लतीफ की कहानी—और नायिका एक मुर्गी के लिए रोती है। कहते है, कालिदास 'अजविलाप' बहुत सुन्दर लिख गये है। अज माने बकरा। 'मुर्गीविलाप।'

अब्दुल लतीफ। काठ का उल्लू।

घडी ने एक खडका दिया।

(3)

अब्दुल लतीफ बाहर निकल आये। बरामदे से नीचे झाँककर देखा, एक अखबार के पोस्टर का टुकड़ा पड़ा था—
"स्पेन युद्ध। लाखों स्त्रियाँ "

हाँ तो। आज ससार इतनी तूफानी गति से जा रहा है, क्या उसमें एक भी प्लाट काम का नही निकल सकता? प्लाटो से अखबार भरे पडे है। मुझे क्या जरूरत है रोमाटिक-रियलिस्टिक की, मै सामयिक लिख दूँ वही तो चाहिए भी।

लतीफ ने कई एक अखबार उठाये और पन्ने उलटने लगा।

अबिसीनिया मे घोर युद्ध। इटली आगे बढ रहा है। मुसोलिनी की आज्ञा—इटली के तमाम वयस्क आदमी शस्त्र सम्हाल ले।

जर्मनी की घोषणा—हमपर जबरदस्ती प्रतिबन्ध लगाये गये है, ताकि हम निकम्मे रहे, हमने तय किया है कि हम सब प्रतिबन्धो को तोडकर अपने राष्ट्र का सशस्त्रीकरण करेंगे।

ब्रिटेन में सब ओर पुकार—इग्लैण्ड खतरे मे है। हमारी शान्तिप्रियता हमारा सर्वनाश करेगी। अब सशस्त्रीकरण मे ही हमारा निस्तार है, अत हम जोरो से अस्त्र-शस्त्र और जहाजी बेडो का निर्माण करेंगे।

स्पेन मे युद्ध पक्ष लेने के लिए सभी राष्ट्र तैयार हो रहे है

रूस में फौजी तैयारियाँ

चीन में लडाई

जापान में सैनिकों की सरगर्मियाँ

मंचूरिया—

ससार-भर मे अशान्ति है। एक नहीं, असख्य कहानियों का प्लाट यहाँ रखा है, कोई लिखनेवाला तो हो! लेकिन प्लाट क्या बताया जाय?

धीरे-धीरे लतीफ के आगे चित्र खिचने लगे, विचार आने लगे।

एक बडी तोप। बहुत-सा धुआँ। इधर-उधर गडगडाहट की ध्वनि। जहाँ-तहाँ लाश। और जाने क्या और कैसे, एक ही शब्द-कुटुम्ब। और इन सबको घेरे हुए ऊपर, नीचे, दायें, बायें सर्वत्र फालतू खाद्य वस्तुओं के जलने की दुर्गन्ध—

और टन-टन-टन तीन!

नही। हाँ। उनकी कहानी युद्ध के बारे मे ही तो होनी चाहिए—ससारव्यापी युद्ध के बारे में। हाँ नहीं हा, तो की जाय, हाँ।

'सर्वत्र अशान्ति के बादल—समझ लीजिये कि प्रलय पावस में अशान्तिरूपी घनघोर घटा उमडी आ रही है। मिल और कारखाने हैं। जो कल कपडा बुनने की मशीन बनाते थे, तो आज बन्दूकें बना रहे हैं, कल मोटरें बना रहे थे, तो आज लडाकू टैंक बना रहे है, कल खिलौने बना रहे थे, तो आज बम फेंकने की मशीनें बना रहे है, कल शराब बनाते थे, तो आज भयकर विस्फोटक पदार्थ बना रहे है। सारा देश पागल सारा यूरोप पागल सारी दुनियाँ पागल। इस विराट पृष्ठभूमि के आगे हमारी

कहानी का नायक खडा है और सोचता है, क्या मै अकेला इन सबको बदल सकूँगा, ठीक कर सकूँगा ?'

उँहूँ। सब गलत।

लतीफ ऊँघने लगे। उन्होने एक स्वप्न देखा। देखा कि सवेरे छ बजे घर पहुँच रहे है। सब लोग सो गये है, शायद भूखे ही सोये है, क्योकि पहले दिन सवेरे लतीफ घर से चले थे, तब शाम तक उनके कुछ प्रबन्ध करने की बात थी। किवाड बन्द है। लतीफ ने किवाड खटखटाया, फिर दुबारा खटखटाया। आखिर उनकी पत्नी ने आकर दरवाजा खोला और उन्हें देखते ही बन्दूक की गोली की तरह कहा—'खाना खा आये ?' फिर क्षण-भर रुककर बोली—'नही, कहॉ खा आये होगे ? मिला ही नही होगा। भरा पेट होता तो भला घर आते ? लेकिन यहॉ क्या रखा है ? यहॉ रोटी नही है। जाओ, हमें मरने दो।' फिर वह किवाड बन्द करने को हुई, लेकिन न जाने क्या सोचकर रह गयी और एक हाथ से मुँह ढॉपकर भीतर चली गयी। मियॉ लतीफ स्तब्ध रह गये, देखते रह गये।

तभी एक झोके से स्वप्न टूट गया। वे चौककर उठ बैठे। ओर उन्होने देखा, कहानी बिलकुल साफ होती चली जा रही हे—बन गयी है। उन्होने कलम उठायी और तेजी से लिखना शुरू किया। अन्तिम वाक्य उनके सामने चमकने लगे—

और वह देखता है कि उसका भोजन उसके आधिक्य के कारण उसकी आँखों के आगे जलाया जा रहा है और संसार के सब राष्ट्र उसपर पहरा दे रहे हैं कि कहीं वह आग बुझा न दे, कुछ खा न ले। और देखते-देखते उसे लगने लगता है, वह अकेला नहीं है, एक व्यक्ति नहीं है, वह सारा संसार ही है, जो अपने ही इन शक्ति-सम्पन्न गुलामों के अत्याचार से पिसा जा रहा है, गुलाम जो अपने मालिक के भोजन को फालतू माल कहकर जलाये डाल रहे हैं——भूख का बन्धन उनके भीतर वह प्रेम जगाता है, जो धर्म, दर्शन और बुद्धिवाद नहीं जगा सके थे। वह पूछता है, क्या सभ्यता ही हमारी गुलामी का कारण है? क्या सभ्यता का नाश कर दिया जाय?

सभ्यता क्या जवाब देती है?

कहानी लिखी गयी। लतीफ उठे और सम्पादक के पास ले गये।

सम्पादक ने कहानी उसके हाथ से छीन ली। जल्दी से पढ़ गये। पढ़कर कुछ शिथिल हो गये, फिर एक तीखी दृष्टि से लतीफ की ओर देखकर बोले—'तुम्हें क्या हो गया है?'

'क्यों?'

सम्पादकजी ने धीरे-धीरे मानो बड़ी एकाग्रता से कहानी को फाड़ा। दो टुकड़े किये, चार किये, आठ किये और रद्दी को हाथ से गिरा दिया, टोकरी में डालने की कोशिश नहीं की।

फिर संक्षेप में बोले, 'फिर लिखो।' और मानो लतीफ को भूल गये।

'चार बज रहे

'अभी छ घटे और ह। दा पेज मैटर, काफी समय है।'

'अच्छा, मै जरा घर हो आऊँ।'

(4)

यथार्थता स्वप्न से आगे है। घर पहुँचने पर लतीफ ने किवाड खटखटाये, फिर खटखटाये, लेकिन दरवाजा नही खुला। थककर वे सीढी पर बैठ गये। तब उनके सामने स्पष्ट होने लगा कि वे कहाँ है, क्या है, क्यो है? यानी दीखने लगा कि वे कही नही है, कुछ नही है, बिला वजह है—धब्बे की तरह है, सलवट की तरह है। उनका हृदय ग्लानि से भर गया। उन्होने चाहा, अपना अन्त कर दे। जेब में हाथ डाला, तो वहाँ चाकू तो था नही, पेंसिल थी। लतीफ ने दृढता से उसे खीचकर इस्तीफा लिखना शुरू किया। उन्हें मालूम नही था कि वे किस पद पर से इस्तीफा दे रहे है, अत उन्होने 'अपने पद से' लिखकर काम चला लिया।

इस्तीफा लेकर वे दफ्तर पहुँचे। लेकिन सम्पादकजी दफ्तर मे थे नही।

लतीफ टीन की कुरसी पर घुटने समेटकर बैठ गये और खिडकी से बाहर झाँकने लगे। बाहर पौ फट रही थी। उषा मे चमक नही थी, उसके भूरेपन ने केवल रात के स्निग्ध अन्धकार का मलिन कर दिया था।

तभी लडके ने आकर कहा—'चलिये, माँ बुला रही है। रात-भर बाहर रहे है, अब तो चलिये। नाश्ता हो रहा है।'

लतीफ ने चौंककर कहा—'क्या?'

'मामा के यहाँ से गुड आया था, उसके गुलगुले बना

लतीफ कुछ सोच मे पड गये, कुछ उठने की तयारी मे पड गये।

'और माँ ने कहा है, तनख्वाह के कुछ रुपये ता लेते आना। तीन-चार दिन मे भैयादूज है, कई जगह भेजने होगे।' कहती हुई लडकी भी आ गयी। मियाँ लतीफ ने एक गहरी साँस ली। अपना इस्तीफा उठाया और उसकी पीठ पर पिछले महीने की तनख्वाह का एक हिस्सा पाने के लिए दरख्वास्त लिखने लगे।

तभी सम्पादकजी आ गये। लतीफ को या घिरा हुआ और लिखता देखकर बोले—'यह क्या है?'

पास आकर उन्होने मोडे हुए कागज पर इस्तीफा पढकर कागज छीनते हुए फिर पूछा—'यह क्या है?'

'कुछ नहीं, मैं नयी कहानी लिखने लगा हूँ।' सम्पादकजी ने कागज उलटकर देखा और फिर जोर देकर पूछा—'यह क्या है?'

'यह मेरी नयी कहानी का प्लाट है, जी।'

सम्पादकजी को यकायक कुछ कहने को नहीं मिला। उन्होंने बाहर जाने के लिए लौटते हुए कहा—'तुम रहे सदा वही अब्दुल लतीफ।'

लेकिन अब्दुल लतीफ तब तक लिखने लग गये थे।

निगोड़ी नींद

श्री राजा राधिकारमणसिंह, एम ए

दिन मे पखे की मॉग कभी होती, कभी नहीं होती। अगर हुई भी तो दुपहरी की बेला मे। हॉ, रात मे यह सिलसिला काफी देर तक चलता है।

मुझे वैसे ही नींद बडे इतजार पर आती है। आधी रात के कबल तो उसकी दूती जम्हाई तक नहा आती। ऐसी बेदर्द है वह! बडो पलकें बिछाई—मिन्नतें की, तो कही अटपटी-सी अनमनी-सी आ गयी। आयी भी तो क्या आयी, जब जाने को तैयार आयी! यह आयी और वह गयी! ऐसे आने की ऐसी-तैसी। ऑख भी नहा भरती, तो जी क्या भरेगा?—

वो आना वो फिर जल्द जाना किसीका,
न जाना कभी हमने आना किसीका!

यह नहीं कि हमने उसकी नाजबरदारी में कोई कमी की। पलॅग डसायी, तलवे सहलाये, बेनिया डुलायी—क्या-क्या नही किये। मगर वह काहेको सुने? वह तो अपनी जिद्द से एक तिल भी नही हिलती। काश! कोई भी रात वह मेरा पहलू गर्म कर पाती! रात आते ही वह आयी, और रात जाते ही वह जाती—ऐसी न कभी कोई रात आयी, न ऐसा कोई प्रात आया।

एक दिन ऊबकर मैने भी कहा—'जाओ, तुम भी क्या याद करोगी कि कोई आशना था तुम्हारा! लो, अब मै भी रूठता हूँ तुमसे। यो मनाने से तुम मानती नही, और भी तनती रहोगी। बस, तुम्हें उतार ही देता हूँ दिल से। तुम न आओगी तो जैसे मेरी मौत भी नही आएगी।'

और बस, मै तमाम झझटो से निबटकर कुछ दिलचस्प किताबे लेकर बैठ गया। कभी कुछ पढता, कभी कुछ लिखता। दिन की कमी रात लगी भरने। रात की शाति बिखरी भावनाओ को समेटने में भी मदद देती।

एकाध दिन तो, खैर, मै अपनी अकड पर डटा रहा। मगर रूठे आशिक को चैन कहाँ? रात ज्यो-ज्यो बीतती, रात की रानी की तलाश त्यो-त्यो दुगुनी होने लगी। लगी आँखो से जान निकलने। शरीर का एक-एक जर्रा उस मोहिनी के आलिगन के लिए चीख उठा। वह तमाम अकड जाने कहाँ विलीन हो गयी।

फिर वही इन्तजार, वही खुशामद, वही मिन्नत, वही खिलवत, वही पलंग, वही झालरो की मीठी बयार—और साथ-साथ नीद की वही कज-अदाई, वही बेवफाई! जाने किधर से यकायक आना—जरा-सी खुट पर निकल भागना। और, मेरा रह जाना हाथ मलते, सिर धुनते।

गर्मियो की रात तो और भी पहाड हो जाती है। पंखे के बगैर छन-भर भी चैन नही। बरसाती उमस रही, तो और भी मुश्किल। आँखो पर जान आ गयी, उनपर नीद नही आयी।

यह जरूर है कि हमे रह-रहकर खटकता है कि एक हम है, जिसे पंखे के बगैर एक छन चैन नही, और एक यह मॅगरू है जो जरा गर्मी में पसीने से तर-ब-तर भी तानड-तोड पखा खीचे जा रहा है। वह हवा लेता नही, हवा देता है। और वह भी आदमी है, हम भी आदमी। हम मेज मे गुलगुल गलीचे पर पॉव फैलाये तानकर लेट रहे है---एक पल भी पखा रुका तो जान निकल गयी, और, यह बिचारा बूढा अजुली-भर चावल के लिए इस उमस मे रात को दिन कर रहा है।

कभी-कभी तो इस आत्म-दर्शन की चोट खाकर उठ बैठता, पखा रोक देता और सिर धुनता कि काश! इस इमारत के बगैर ऑख लग पाती!

और फिर लगता सोचने कि एक वह है कि हाथ में पंखे की डोरी लिये भी, गर्मी की लाख शिद्दत पर भी, झुककर सो रहता है, और एक हम है कि घंटो सर पर हवा की फुरैरी लेने पर भी करवटें बदलते रह जाते है। हमने उसे रात-भर जगवाकर पखा खिंचवाना चाहा, ताकि उस पंखे की हवा से हम आराम से सो पावें। मगर कुदरत का यह तमाशा तो देखिये कि जो जागने आया है, वह हजार इमारत पर भी जागता का जागता ही रह

जाता है । इधर मखमल की गद्दी है, उधर धरती, हम लेटे है, वह उकडूँ बैठा है, (हम हवे में है, वह मानो तवे मे) मगर वाह री नीद ! और वाह री उसकी दिलदारी ! वह गद्दी का साथ नही देती, धरती का देती है । जो उसपर जी जान से मर रहा है, उसे तो वह पूछती तक नही, और जो उसकी परवाह तक नही करता, उसे वह गले पड गले लगाती है ! इधर पलग पर सोनेवाला सुबह बिस्तर छोडता है, तो रात का पोलाव-कलिया पेट मे ज्यो का त्यो है, और वह गच पर बैठे-बैठे रात काटनेवाला पखा छोड उठता है, तो कटकटाकर चबने पर टूट पडता है ।

तो उसे कुदरत की देन नीद मिली है, हमे किस्मत की देन पखा और पलग ! उसे मिहनत की देन भूख है, हमें इमारत की देन दर्द-सर ! मगर हाय री जमाने की फबती ! वह रोता है, हम हँसते है, वह झोपडी में है, हम हवेली में, वह मजूर है, हम अमीर । मगर हाँ, सुखी कौन है—वह या हम ? यह तो अपनी-अपनी आरजू है, अपनी-अपनी नजर है । वह समझता है कि हम है, हमारे साथ वीलरो की जोडी है और मोटर की हवाखोरी, सगमरमर की हवेली और कारचोबी की गद्दी । हम समझते है कि वह है—डेढ सेर चूडा और सेर-भर मट्ठा आंत की तहो में रख, वह ऐसा तानकर सो जाता है जैसे कि बरात की झझटो से निबटा हुआ कोई बेटी का बाप । मगर कौन कहे, दोनो में कोई नही ! मन तो दोनो का बराबर छटपट है ।

न उधर चैन, न इधर। एक इमारत की सुविधाओं के खतरों के भँवर में उबचुब हो रहा है, दूसरा हरारत के गोशे में भी झपकी ले रहा है!

हठात् उठकर देखता हूँ कि वह खुरखुरी दीवाल पर पीठ दिये रह-रहकर ऊँघने लगा है। यह खूब! बैठे ही बैठ सुख की नींद लेने लगा है! न तकिया, न गलीचा। डोरी उसकी उँगलियों की लपेट में शिथिल-सी पड़ी है।

अजी वाह री नींद! और वाह री तेरी आशनाई! मरें हम, जीये वह! जागें हम, सोये वह!

दस मिनट

श्री प्रो० रामकुमार वर्मा, एम ए

[आधी रात का समय। एक सजा हुआ कमरा। उत्तर और दक्षिण दिशाओं में दरवाजे है। उत्तर दिशा का दरवाजा बहुत छोटा है, जिसका संबंध बाहर जानेवाली सुरंग से है। दक्षिण दिशा के दरवाजे के समीप एक खिड़की है, जो बंद है। कमरे के ठीक बीच में एक टेबिल है, जिसके दोनों ओर दो कुर्सियाँ पड़ी हुई है। सामने एक घड़ी लगी हुई है, जिसमें दो बजकर पंद्रह मिनट हुए है।

कमरे के एक कोने में एक पलंग बिछा हुआ है, जो कुछ पुराना हो गया है। उसपर एक प्रौढ व्यक्ति बहुत साधारण कपड़े पहने सो रहा है। उसकी आयु लगभग पैंतीस वर्ष की है। उसके मुख पर थकावट के चिह्न हैं। चारों ओर शांति है। कमरे में धीमा प्रकाश हो रहा है। दक्षिण के दरवाजे पर खट्-खट् की आवाज।]

एक स्वर—महा देव, महादेव!

[महादेव आलस से सिर उठाता है। वह आँख मलता हुआ भौंहें सिकोड़कर दरवाजे की तरफ देखता है।]

वही स्वर—महादे व! (*अंतिम स्वर 'व' धीमा*)

महादेव—(*इच्छा न होते हुए भी उठकर*) आधी रात को

भी चैन नही। (दरवाजे के समीप पहुँचकर चिढे हुए स्वर में) कौन है इस समय ?

वही स्वर—(भर्राया हुआ) बलदेव।

महादेव—(आश्चर्य से) ऐं! बलदेव! (दरवाजा खोलता है। चौंककर पीछे हटते हुए) तुम इस समय कैसे आये? (मंद स्वर) यह क्या ?

[बलदेव का प्रवेश। वह पच्चीस वर्ष का नवयुवक है। उसके वस्त्र खून से रंगे हुए हैं। कुर्ते का ऊपरी हिस्सा फटा हुआ है। हाथ मे छुरी है, जो हाथ कॉपने के कारण वस्त्र में उलझ रही है। बलदेव के मुख पर भय अंकित है। वह सहमी हुई नजरो से इधर देख रहा है।]

बलदेव—(भर्राई हुई आवाज में) महादेव, मैंने खू न कर दिया।

महादेव—(विकृत होकर) खून कर दिया? किसका? कब?

बलदेव—(सँभलकर) नही, नही, मैंने खून नही किया। किसी दूसरे आदमी ने खून कर मेरे हाथ मे छुरी दे दी। मै निर्दोष हूँ। कौन कहता है, मैने खून किया है? ऍ?

महादेव—अरे, अभी तो तुम्हीने कहा था? ये तुम्हारे कपडे!

[बलदेव के कपड़े हाथ से छूता है।]

बलदेव—(शिथिल होकर) मैने कहा था? तो हाँ, मैने खून कर दिया। उसी पापी केशव का। मेरी बहन को मैली

दृष्टि से देखनेवाले (*ओंठ चबाते हुए*) केशव का। (*व्यंग्य की हँसी हँसकर*) हँ हँ, छिपकर आया था, जब ससार की आँखे सो रही थी। जाग रही थी केवल चार आँख। दो ईश्वर की। और दो मेरी। काले वस्त्र में छिपकर आया था। (झुककर) इस तरह झुककर आ रहा था। मैने एक ही वार में उसे पूरा झुका दिया। देखते हो, यह छुरी और सफलता के रंग में रगे हुए ये कपडे! [*गर्व की मुद्रा*]

महादेव—(*क्रोध से*) तुम्हारी बहन को मैली दृष्टि से देखता था वह? तुमने छुरी कहाँ मारी?

बलदेव—छुरी? उसकी बगल में, या। (*हवा मे छुरी का वार करता है।*)

महादेव—बगल मे? नासमझ! आँखो मे घुसेड देनी चाहिए थी। (वे पापी आँखे ससार का प्रकाश न देख सकती। जिन आँखो में पाप का खून था, उन आँखो में बहन के अपमान का खून होना चाहिए था।) छि.! बदला लेना भी न आया! (*घूरता है।*)

बलदेव—(*शीघ्रता से*) तो वह भी मै अभी कर सकता हूँ। फिर जाता हूँ। (*उद्यत होता है।*)

महादेव—तुम तो इस प्रकार कह रहे हो, जैसे वह वही पड़ा होगा।

बलदेव—पुलिस को वह शरीर मिल नही सकता। जब तक मै उसके अंग-अग काटकर न फेंक दूँगा, तब तक मुझे शांति

न मिलेगी ! मैने लाश छिपा रखी है। वही पास की सबसे कँटीली झाड़ी में।

महादेव—पर उसे अब मारकर ही क्या करोगे ? अब तो वह नीच मर ही गया होगा। अब उसे फिर मारने से क्या लाभ ?

बलदेव—(*उग्रता से*) नहीं, नहीं, बदला लेना सीखने दो। उसकी आँखे अब भी खुली होगी, माना उनकी वासनामयी प्यास अभी नहीं बुझी। उफ नारकी ! तुम्हारे रोकने पर भी मै (*उत्तर दिशा के छोटे दरवाजे से प्रस्थान। नेपथ्य से वाक्य की पूर्ति।*) अवश्य जाऊँगा। हृदय की आग (*क्रमशः दूर होते हुए मंद स्वर में*) तो बुझा सकूँगा।

महादेव—(*खिड़की खोलकर देखता हुआ*) गया ? चला गया ? आह पापी ससार !

[*महादेव सोचता हुआ पलँग के ऊपर बैठ जाता है। दक्षिण दरवाजे पर फिर खटका होता है।*]

महादेव—(*दृढ़ता से*) अब कौन है ? (*उद्विग्न होकर*) मेरे लिए यह रात भी दिन है ! (*खिड़की पर खटका होता है।*)

महादेव—(*दरवाजे के पास जाकर*) कौन है ? नाम बतलाओ।

बाहर से—पुलिस।

महादेव—पुलिस ? पुलिस का इस समय मेरे यहाँ क्या काम ?

पुलिस—(*जोर से*) दरवाजा खोलो।

[महादेव दरवाजा खोलता है। पुलिस-इंस्पेक्टर का प्रवेश। वह तीस वर्ष का मोटा-ताजा आदमी है। उसकी मूँछ चढ़ी हुई है। पूरी वर्दी पहने हुए है। उसके हाथ में पिस्तौल है। साथ में चार सिपाही है, सभी सिपाहियों के हाथों में भाले है।]

पुलिस—(*आते ही*) सारे हथियार रख दो।

[पिस्तौल सामने करता है।]

महादेव—(*पीछे हटकर*) कैसे हथियार ? किसके हथियार ?

इंस्पेक्टर—(*घूरते हुए*) अच्छा, तुम अकेले ही हो ? तुम्हारा नाम महादेव है ?

महादेव—हाँ।

इंस्पेक्टर—तुम्हारे घर अभी कोई आदमी था ?

महादेव—शायद।

इंस्पेक्टर—शायद ? मैंने दूर से देखा। एक आदमी इसी ओर चला आ रहा था।

महादेव—(*धीरे-धीरे*) आदमी नहीं था

इंस्पेक्टर—शैतान था ? *[गर्व से कुर्सी पर बैठता है।]*

महादेव—नहीं, देवता था। देवता था। अपनी बहन के सम्मान की रक्षा करनेवाला एक देवता था।

इंस्पेक्टर—देवता ? इसके क्या मानी ?

महादेव—देवता के क्या मानी होते है ?

इस्पेक्टर—खाक ! (पर पटककर) बारह और दो बजे के बीच में एक खून हुआ है। खून के धब्बे पडे हुए पाये गये है। गश्त करते समय मेरे जूते बिलकुल खून से लथपथ हो गये। उसी समय एक मनुष्य इस घर की ओर आता हुआ दिखायी दिया। लाश खोजने पर भी मुझे नही मिली, वह न जाने कहाँ है !

महादेव—(शांति से) वह मनुष्य के सिवा और किसी का खून नही हो सकता ?

इस्पेक्टर—मै उसे मनुष्य का खून ही क्यो न मानूँ, जब वह मनुष्य सदेहावस्था मे आधी रात को भागा है ? मुझे अभी लाश खोजनी होगी। यह सोचकर कि जब तक मै लाश खोजूँ, कही वह हत्यारा भाग न जाय, इसीलिए मे पहले उस आदमी को पकड लेना चाहता हूँ, फिर चाहे वह निरपराध ही क्या न निकले। बतलाइये, वह मनुष्य कहाँ है ? उसने बारह और एक बजे के बीच में खून किया है। (सोचकर) हाँ, उसी समय खून हुआ है।

महादेव—(निर्भयता से) हुआ करे, उससे मेरा क्या ? (उन्माद मे) उस खून को लेकर प्रभात की पूर्व दिशा मुस्कुरा उठेगी, और उसी लालिमा से सारे ससार में आलोक छा जाएगा। ससार के कण-कण मे वही रक्त जीवन का अनत संदेश एक बार ही प्रात काल की मधुर समीर में बिखरा देगा।

इंस्पेक्टर—(तीव्र स्वर से) यह क्या बक रहे हो ? (मुँह बनाकर) एब्सर्ड, नान्सेन्स ! जो कुछ पूछता हूँ, ठीक-ठीक

बतलाओ । जो आदमी अभी-अभी यहाँ आया था, वह कहाँ गया ?

महादेव—(सोचते हुए) वह दस मिनट बाद आएगा। ठीक दस मिनट बाद । उस समय आइये ।

इस्पेक्टर—(व्यंग्य से) आप कृपया मकान खाली कर दें। मै मकान की तलाशी लूँगा। वह चाहे दस मिनट मे आये, चाहे बीस मिनट मे। आप समझे न ?

[शान से उठ खड़ा होता है ।]

महादेव—अच्छा, आपके पास तलाशी का वारट है ?

इस्पेक्टर—(गर्व से) मेरा हुक्म ही वारट है जनाब !

महादेव—(शांति से) आधी रात के समय यह आपकी ज्यादती है। खैर, मेरे पास केवल यही तो कमरा है। जहाँ तक आपकी नज़र जाती है, उतना ही हिस्सा मेरे अधिकार में है। उसे ही देख लीजिये। क्यो दिखायी पडता है कोई खूनी ?

इस्पेक्टर—बस, तुम्हारे अधिकार में इतना ही स्थान है ?

महादेव—इस मकान में केवल इतना ही हिस्सा बच रहा है। शेष गिर गया है। उसके पीछे मैदान है।

इस्पेक्टर—(नम्र होकर) देखो, यदि बतला दोगे, तो भारी इनाम पाओगे। समझे ? नही तो संदेह में मै तुम्हीको गिरफ्तार करूँगा।

महादेव—(आगे बढकर) खुशी से गिरफ्तार कर सकते है

आप। पर मै धर्म की शपथ लेकर कह सकता हूँ कि मै बिलकुल निरपराध हूँ।

इस्पेक्टर—मै धर्म-वर्म कुछ नहीं जानता। सच-सच बतला दो, तुम खूनी के बारे मे क्या जानते हो?

(महादेव को तीव्र दृष्टि से देखता है।)

महादेव—*(उत्साह से)* कह रहा हूँ, आप दस मिनट बाद आइये। दो बजकर चालीस मिनट पर।

[घड़ी की ओर देखता है।]

इस्पेक्टर—और, यदि मै दस मिनट यही ठहरूँ, तो?

महादेव—*(सोचकर)* तो शायद वह न आये।

इस्पेक्टर—क्यो? *(जिज्ञासा की दृष्टि)*

महादेव—(पुलिस और खूनी में कुत्ते और बिल्ली का संबंध है। दोनो एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते है।)

इंस्पेक्टर—अच्छा! (मुस्कुराकर) एम्यूजिंग नान्सेन्स! अच्छा, मै आपकी तलाशी दो मिनट बाद लूँगा। *(सिपाहियो से)* देखो, इस मकान को चारो तरफ से घेर लो। मै इस बीच में लाश का पता लगा लेता हूँ, जिससे मेरा संदेह मिट जावे। मै अभी आया।

सिपाही—*(सलाम करके)* बहुत अच्छा। *[जाते हैं।]*

इस्पेक्टर—*(व्यंग्य से)* अच्छा, आप दो मिनट आराम कर सकते है

[इंस्पेक्टर का प्रस्थान । महादेव दरवाजा बंद करता है। वह कुछ क्षण टेबिल के पास सिर झुकाये खड़ा रहता है। उत्तर के दरवाजे से आवाज आती है। महादेव धीरे से जाकर दरवाजा खोलता है। बलदेव का प्रवेश। वह और भी अधिक खून से रंग गया है।]

बलदेव—(प्रसन्न होकर) पार हो गयी, छुरी दोनो आँखो के पार हो गयी। अब शायद अगले जन्म में वह किसीको मैली दृष्टि से न देखे।

महादेव—(*गंभीर होकर*) संभव है, अगले जन्म में वह अंधा हो। पाप-दृष्टि से देखना कैसा?

बलदेव—(*अपने ही विचारों में लीन होकर, आँखें फाड़कर*) (उफ, रक्त से समस्त पृथ्वी लाल हो गयी थी, मानो मेरे इस कृत्य को देखकर पृथ्वी भी खिलखिला उठी थी। मै भी दिल खोलकर खूब हँसा।) (*मुँह विकृत कर हँसता है।*)

महादेव—(*गंभीर होकर*) उसी उल्लास की हँसी से लाल होकर कल प्रातःकाल सूरज हँसेगा, गुलाब हँसेगा और उसके साथ-साथ कलियाँ भी ... हाँ, एक काम करो।

बलदेव—(उत्सुक होकर) वह क्या?

महादेव—यह विजय के रंग में रंगा हुआ कपड़ा उतार दो। (*संदूक से नया कुरता निकालते हुए*) यह लो, नया कुरता। इसे पहन लो। इस दुनियाँ की पलको में संदेह की पुतलियाँ है

बलदेव —(*दृढता से*) रहने दो । इसका उत्तर मै अपने गले के खून से दूँगा ।

महादेव—(न्याय से लडनेवाले शत्रु को अपने गले के खून से उत्तर देना चाहिए । यह तो न्याय का युद्ध नही है । तुमने चाहे कितने ही बडे पापी को न्याय-युक्त होकर मारा हो, पर प्राण लेने के कारण तुम्हे थोडी न थोडी सजा मिलेगी जरूर ।) (चाहिए तो यह था कि न्यायी तुम्हें तुम्हारे कार्य पर पुरस्कृत करता, पर क्या कभी ऐसा होना सभव है ?)

बलदेव —(*सोचकर*) अच्छा, तुम (*कुरता उतारते हुए*) न मानोगे । तुम्हारा हठ बडा कठिन है । अब तो (*नया कुरता पहनते हुए*) तुम प्रसन्न हुए ?

महादेव—थोडा विश्राम करो । दस मिनट तक । (सोचकर) नही, दस मिनट तक क्या करोगे ? जाओ, अपनी बहन का समाचार तो लो ।

बलदेव—(*स्थिर होकर*) (वह तो माता के प्रेम के समान शात और स्निग्ध ससार में विचर रही होगी ।) मै उसे उस शांति के निर्झर से निकालकर क्यो जागृति के पत्थर पर फेंक दूँ ? प्रातःकाल सूर्य की किरणें उसे स्वय जगा लेंगी ।

महादेव—(नही, भाई के हाथ सूर्य की किरणो से अधिक कोमल और प्रेममय है ।) महात्मा तुलसी ने सहोदर भ्राता के संबध में क्या लिखा है

बलदेव —(*आश्चर्य से*) तो क्या मुझे ठहरने न दोगे ?

महादेव—भाई, यहाँ ठहरने की अपेक्षा बहन का कुशल समाचार जान लेना अधिक आवश्यक है। जिस बहन के सम्मान का मूल्य एक मनुष्य के जीवन से अधिक है, उसका कुशल जानने के विषय मे इतना सकोच क्यो है ? उससे मिलकर फिर तुम यहाँ आकर मुझसे बाते कर सकते हो।

बलदेव—(*खून से रंगे हुए कुरते और छुरी सँभालकर उठाते हुए*) अच्छा, भाई, जाता हूँ। अभी थोड़ी देर बाद आऊँगा। यदि पुलिस को मेरी गंध न मिली, तो

महादेव—(*जिज्ञासा से*) यह कुरता और छुरी क्यो लिये जाते हो ? बहन के समीप इनका क्या काम ?

बलदेव—(*हताश होकर*) तुम मेरी इच्छा सर्वेव इसी प्रकार रोक दिया करते हो।

[बलदेव का एक कोने मे छुरी और कुरता रखकर उत्तर दरवाजे से प्रस्थान]

महादेव—(*सोचता हुआ*) यह सम्मान का प्रतिशोध !

[कुर्सी पर बैठकर गुनगुनाता है ।]

मेरी साँसो के स्वर मे

गूँजे मेरा बलिदान !

गूँजे मेरा बलिदान ! !

[दक्षिण दरवाजे पर फिर खटका] जीवन में ऐ पा

महादेव—ठहरो। *[खून से भरा हुआ कुरता पहनकर हाथ में छुरी लेता है। दरवाजा खोलते हुए]* कौन है?

[इन्सपेक्टर का पिस्तौल लिये प्रवेश।]

इंस्पेक्टर—खूनी किधर है? (महादेव को खूनी के वस्त्रों में देखकर) ऐ खूनी

महादेव—(दृढता से) मै हूँ खूनी।

इंस्पेक्टर—तुम हो खूनी? (आश्चर्य प्रकट करता है।) सिपाहियों ने अभी तुम्हारे कमरे में कुछ बातों की भनक सुनी थी।

महादेव—मै गाना गा रहा था।

इंस्पेक्टर—हूँ? (घूरता है) तुम खूनी हो?

महादेव—देखते नही ये कपडे और यह छुरी!

इंस्पेक्टर—क्या तुम्ही खूनी हो? तुम तो कहते थे, दस मिनट बाद खूनी आएगा।

महादेव—हाँ, दस मिनट बाद तुम्हे खूनी मिला या नही? खूनी तुम्हारे सामने खडा है और तुम सदेह मे पडे हुए हो! लाश आपने देखी? उसकी बगल और ऑखो मे घाव है? (तीव्र दृष्टि)

इंस्पेक्टर—(सिर हिलाते हुए) हाँ, पास ही एक कॉटेदार

झाडी मे लाश बुरी तरह घायल मिली। उसकी आँखे फोड डाली गयी है, और उसकी बगल मे छुरी घुसेडी गयी है।

महादेव—(*आगे बढकर*) और वह छुरी यह है।

[*छुरी दिखलाता है।*]

इस्पेक्टर—(*सिपाही से*) गिरफ्तार करो इसे। पुलिस-थाने ले चलो। इस मकान मे ताला बन्द कर दो। इसके कोई सबधी तो है ही नही। थाने पर जाकर मामला तय होगा।

[*सिपाही महादेव को गिरफ्तार करते है। उत्तर दरवाजे से आवाज आती है।*]

महा देव!

[*धीमे स्वर में*] महा देव!

इंस्पेक्टर—(*तीव्र स्वर में*) कौन है?

[*बाहर से*]—उसका मित्र बलदेव।

[*बाहर से धीमे स्वर में*]—उसके मित्र की बहन वासंती!

इंस्पेक्टर—(जोर से) इस समय महादेव किसीसे नही मिल सकता। वह खूनी है। (*सिपाहियो से*) जल्दी चलो।

[*सबका प्रस्थान। बाहर से धीमे स्वर में फिर महादेव का नाम सूनेपन मे गूँजता है।*]

तुलसी की भावुकता

श्री रामचन्द्र शुक्ल

प्रबधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलो को पहचान सका है या नही। राम-कथा के भीतर ये स्थल अत्यत मर्मस्पर्शी है---राम का अयोध्या-त्याग और पथिक के रूप मे वनगमन, चित्रकूट मे राम और भरत का मिलन, शवरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलो को गोस्वामीजी ने अच्छी तरह पहचाना है, इनका उन्होने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है।

एक सुदर राजकुमार के छोटे भाई और स्त्री को लेकर घर से निकलते और वन-वन फिरने से अधिक मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है? इस दृश्य का गोस्वामीजी ने मानस, कवितावली और गीतावली---तीनो में अत्यत सहृदयता के साथ वर्णन किया है। गीतावली में तो इस प्रसग के सबसे अधिक पद है। ऐसा दृश्य स्त्रियो के हृदय को सबसे अधिक स्पर्श करनेवाला, उनकी प्रीति, दया और आत्मत्याग को सबसे अधिक उभाडनेवाला होता है, यह बात समझकर मार्ग मे उन्होने ग्राम-वधुओ का सन्निवेश किया है। ये स्त्रियाँ राम-जानकी के अनुपम सौदर्य पर स्नेह-शिथिल हो जाती

है, उनका वृतांत सुनकर राजा की निष्ठुरता पर पछताती हैं, कैकेयी की कुचाल पर भला-बुरा कहती हैं। सौंदर्य के साक्षात्कार से थोड़ी देर के लिए उनकी वृत्तियाँ कोमल हो जाती हैं, वे अपने को भूल जाती हैं। यह कोमलता उपकार-बुद्धि की जननी है—

सीता-लषन-सहित रघुराई।
गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल-वृद्ध नर-नारी।
चलहिं तुरत गृह-काज बिसारी॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी।
पाय नयन-फल होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा।
सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
रामहि देखि एक अनुरागे।
चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक देखि बट-छाँह भलि,
डासि मृदुल तृन पात॥
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रम,
गवनब अबहिं कि प्रात॥

राम-जानकी के अयोध्या से निकलने का दृश्य वर्णन करने में गोस्वामीजी ने कुछ उठा नहीं रखा। सुशीलता के आगार

रामचंद्र प्रसन्नमुख निकलकर दास-दासियों को गुरु के सिपुर्द कर रहे हैं, सबसे वही करने की प्रार्थना करते हैं जिससे राजा का दुख कम हो। उनकी सर्वभूतव्यापिनी सुशीलता ऐसी है कि उनके वियोग में पशु-पक्षी भी विकल हैं। भरतजी जब लौटकर अयोध्या आये, तब उन्हें सर सरिताएँ भी श्रीहीन दिखायी पडी, नगर भी भयानक लगा। भरत को यदि राम-गमन का संवाद मिल गया होता तो हम इसे भरत के हृदय की छाया कहते। पर घर में जाने के पहले उन्हें कुछ भी वृत्त ज्ञात नहीं था। इससे हम सर-सरिता के श्रीहीन होने का अर्थ उनकी निर्जनता, उनका सन्नाटापन लेंगे। लोग राम-वियोग मे विकल पडे हैं। सर-सरिता में जाकर स्नान करने का उत्साह उन्हे कहाँ? पर यह अर्थ हमारे आपके लिए है। गोस्वामीजी-ऐसे भावुक महात्मा के निकट तो राम के वियोग में अयोध्या की भूमि ही विषादमग्न हो रही है, आठ-आठ आँसू रो रही है।✓

चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन से संघटित उत्कर्ष की दिव्य प्रभा देखने योग्य है। यह झाकी अपूर्व है। 'सायप भगति' से भरे भरत नंगे पाँव राम को मनाने जा रहे हैं। मार्ग में जहाँ सुनते हैं कि यहाँ पर राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उस स्थल को देख आँखो में आँसू भर लेते हैं।

'राम बास थल बिटप बिलोके ।
उर अनुराग रहत नहि रोके ॥'

मार्ग में लोगो से पूछते जाते है कि राम किस वन में है। जो कहता है कि हम उन्हें सकुशल देख आते है, वह उन्हे राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारा लगता है। प्रिय संबधी आनद के अनुभव की आशा देनेवाला एक प्रकार से उस आनद का जगाने-वाला है, उद्दीपन है। सब माताओ से पहले राम कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिले। क्यो ? क्या उसे चिढाने के लिए ? कदापि नही। कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिलने की सबसे अधिक आवश्यकता थी। अपना महत्व या सहिष्णुता दिखाने के लिए नही, उसके परितोष के लिए। अपनी करनी पर कैकेयी को जो ग्लानि थी, वह राम ही के दूर किये दूर हो सकती थी, और किसीके किये नही। उन्होने माताओ से मिलते समय स्पष्ट कहा था—

"अंब ! ईस अधीन जग काहु न देइय दोषु।"

कैकेयी को ग्लानि थी या नही, इस प्रकार के संदेह का स्थान गोस्वामीजी ने नही रखा। कैकेयी की कठोरता आकस्मिक थी, स्वभावगत नही। स्वभावगत भी होती तो भी राम की सरलता और सुशीलता उसे कोमल करने में समर्थ थी—

"लखि सिय सहित सरल दोउ भाई।
कुटिल रानि पछितानि अघाई॥

अवनि जमहि जाचति कैकेयी ।
महि न बीचु, बिधि मीचु न देई ॥"

जिस समाज के शील-सदर्भ की मनोहारिणी छटा को देख वन के कोल-किरात मुग्ध होकर सात्विक वृत्ति में लीन हो गये, उसका प्रभाव उसी समाज मे रहनेवाली कैकेयी पर कैसे न पडता—

(क) भए सब साधु किरात किरातिनि ।
राम दरस मिटि गइ कलुषाई ॥

(ख) कोल किरात भिल्ल बनबासी ।
मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परनकुटी रुचि रूरी ।
कंद मूल फल अंकुर जूरी ।
सबहि देहिं करि बिनय-प्रनामा ।
कहि कहि स्वाद-भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु, मोल न लेही ।
फेरत राम दोहाई देही ॥

और सबसे पुलकित होकर कहते है—

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे ।
सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं ।
ईंधन पात किरात मिताई ॥

यह हमारि अति बडि सेवकाई ।
लेहिं न बासन बसन चोराई ॥
हम जड जीव जीवधनघाती ।
कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ ।
यह रघुनदन दरस प्रभाऊ ॥

उस पुण्यसमाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गयी। उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के सघर्ष से जो धर्म-ज्योति फूटी, उससे आसपास का सारा प्रदेश जगमगा उठा—उसकी मधुर स्मृति से आज भी वहाँ की वनस्थली परम पवित्र है। चित्रकूट की उस सभा की कार्रवाई क्या थी—धर्म के एक एक अग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी। रामचरितमानस में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियो की एक साथ उद्भावना, तुलसी के ही विशाल 'मानस' में सभव थी। यह सभावना उस समाज के भीतर बहुत-से भिन्न-भिन्न वर्गों के समावेश द्वारा सघटित की गयी है। राजा और प्रजा, गुरु और शिष्य, भाई और भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, श्वसुर और जामातृ, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राह्मण, ब्राह्मण और शूद्र, सभ्य और असभ्य के परस्पर व्यवहारो का, उपस्थित प्रसग के धर्म-गांभीर्य और

भावोत्कर्ष के कारण अत्यंत मनोहर रूप प्रस्फुटित हुआ। धर्म के उस स्वरूप को देख क्या नागरिक, क्या ग्रामीण और क्या जगली सब मोहित हो गये। भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र यदि देखना हो तो इस राज-समाज मे देखिये। कैसी परिष्कृत भाषा में, कैसी प्रवचन-पटुता के साथ प्रस्ताव उपस्थित होते है, किस गभीरता और शिष्टता के साथ बात का उत्तर दिया जाता है, छोटे बडे की मर्यादा का किस सरसता के साथ पालन होता है। सबकी इच्छा है कि राम अयोध्या को लौटे, पर उनके स्थान पर भरत वन को जायँ, यह इच्छा भरत को छोड शायद ही और किसीके मन में हो। (अपनी प्रबल इच्छाओ को लिये हुए लोग सभा में बैठते है, पर वहाँ बैठते ही धर्म के स्थिर और गभीर स्वरूप के सामने उनकी व्यक्तिगत इच्छाओ का कही पता नही रह जाता।) (राजा के सत्य-पालन से जो गौरव राजा और प्रजा दोनो को प्राप्त होता दिखायी दे रहा है, उसे खंडित देखना वे नही चाहते।) जनक, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि धर्मतत्व के पारदर्शी जो कुछ निश्चय कर दे, उसे वे कलेजे पर पत्थर रखकर मानने को तैयार हो जाते है।

इस प्रसग में परिवार और समाज की ऊँची-नीची श्रेणियो के बीच कितने संबंधो का उत्कर्ष दिखायी पड़ता है, देखिये—

1 राजा और प्रजा का सबध लीजिये। अयोध्या की सारी प्रजा अपना सब काम-धंधा छोड़ भरत के पीछे राम के

प्रेम में उन्हींके समान मग्न चली जा रही है और चित्रकूट में राम के दर्शन से आह्लादित होकर चाहती है कि चौदह वर्ष यहीं काट दे।

2 भरत का अपने बड़े भाई के प्रति जो अलौकिक स्नेह और भक्ति-भाव यहाँ से वहाँ तक झलकता है, वह तो सबका आधार ही है।

3 ऋषि या आचार्य के सम्मुख प्रगल्भता प्रकट होने के भय से भरत और राम अपना मत तक प्रकट करते सकुचाते है।

4 राम सब माताओ से जिस प्रकार प्रेमभाव से मिले, वह उनकी शिष्टता का ही सूचक नही है, उनके अत करण की कोमलता और शुद्धता भी प्रकट करता है।

5 विवाहिता कन्या को पति की अनुगामिनी देख जनक जो यह हर्ष प्रकट करते है—

पुत्रि! पवित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

वह धर्मभाव पर मुग्ध होकर ही।

6 भरत और राम दोनो जनक को पिता के स्थान पर रखकर सब भार उन्हीपर छोड़ते है।

7 सीताजी अपने पिता के डेरे पर जाकर माता के पास बैठी है। इतने में रात हो जाती है और वे असमंजस में पड़ती हैं—

कहत न सीय सकुचि मन माहीं ।
इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥

पति तपस्वी के वेश में भूशय्या पर रात काटे और पत्नी उनसे अलग राजसी ठाटबाट के बीच रहे, यही असमंजस की बात है ।

8 जब से कौसल्या आदि आयी हैं, तब से सीता बराबर उनकी सेवा में लगी रहती हैं ।

9 ब्राह्मण-वर्ग के प्रति राज-वर्ग के आदर और सम्मान का जैसा मनोहर स्वरूप दिखायी पड़ता है, वैसी ही ब्राह्मण-वर्ग में राज्य और लोक के हित-साधन की तत्परता झलक रही है ।

10 केवट के दूर से ऋषि को प्रणाम करने और ऋषि के उसे आलिंगन करने में उभय पक्ष का व्यवहार-सौष्ठव प्रकाशित हो रहा है ।

11 वन्य कोल-किरातों के प्रति सबका कैसा मृदुल और सुशील व्यवहार है ! ✓

(कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव-स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे ।) इस शक्ति की परीक्षा का रामचरित से बढ़कर विस्तृत क्षेत्र और कहाँ मिल सकता है । जीवन-स्थिति के इतने भेद और कहाँ दिखायी पड़ते हैं ! इस क्षेत्र में जो कवि सर्वत्र पूरा उतरता दिखायी पड़ता है, उसकी भावुकता को और कोई नहीं पहुँच सकता । जो केवल दांपत्य रति ही में अपनी भावुकता

प्रकट कर सकें या वीरोत्साह ही का अच्छा चित्रण कर सकें, वे पूर्ण भावुक नही कहे जा सकते। पूर्ण भावुक वे ही है, जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें ओर उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्दशक्ति-द्वारा प्रत्यक्ष कर सके। हिन्दी के कवियो मे इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता गोस्वामीजी मे ही है, जिसके प्रभाव से रामचरित-मानस उत्तर भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है। वात्सल्यभाव का अनुभव करके पाठक तुरत बालक राम-लक्ष्मण के प्रवास का उत्साहपूर्ण जीवन देखते है जिसके भीतर आत्मावलंबन का विकास होता है। फिर आचार्य-विषयक रति का स्वरूप देखते हुए वे जनकपुर में जाकर सीता-राम के परम पवित्र दांपत्य-भाव के दर्शन करते है। इसके उपरात अयोध्या-त्याग के करुण दृश्य के भीतर भाग्य की अस्थिरता का कटु स्वरूप सामने आता है। तदनंतर पथिक वेषधारी राम-जानकी के साथ-साथ चलकर पाठक ग्रामीण स्त्री-पुरुषो के उस विशुद्ध सात्विक प्रेम का अनुभव करते है, जिसे हम दांपत्य, वात्सल्य आदि कोई विशेषण नही दे सकते, पर जो मनुष्यमात्र में स्वाभाविक है।

रमणीय वन-पर्वत के बीच एक सुकुमारी राजवधू को साथ लिये दो वीर आत्मावलंबी राजकुमारो को विपत्ति के दिनो को सुख के दिनो में परिवर्तित करते पाकर वे 'वीरभोग्या वसुधरा' की सत्यता हृदयंगम करते है। सीता-हरण पर विप्रलंभ-शृंगार

का माधुर्य देखकर पाठक फिर लंकादहन के अद्भुत, भयानक और बीभत्स दृश्य का निरीक्षण करते हुए राम-रावण-युद्ध के रौद्र और युद्धवीर तक पहुँचते हैं। शांतरस का पुट तो बीच-बीच में बराबर मिलता ही है। हास्यरस का पूर्ण समावेश रामचरितमानस के भीतर न करके नारद-मोह के प्रसंग मे उन्होने किया है। इस प्रकार काव्य के गूढ और उच्च उद्देश्य को समझनेवाले मानव-जीवन के सुख और दुख दोनो पक्षो के नाना रूपो के मर्मस्पर्शी चित्रण को देखकर गोस्वामीजी के महत्व पर मुग्ध होते है, और स्थूल बहिरंग दृष्टि रखनेवाले भी लक्षण-ग्रंथों में गिनाये हुए नवरसों और अलंकारो पर अपना आह्लाद प्रकट करते है।

यहाँ पर कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी मनुष्य-जीवन की बहुत अधिक परिस्थितियो का जो सन्निवेश कर सके, वह रामचरित की विशेषता के कारण ही। इतने अधिक प्रकार की मानव-दशाओं का सन्निवेश आप से आप हो गया। ठीक है, पर उन सब दशाओ का याथातथ्य चित्रण बिना हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना और शब्द-शक्ति की सिद्धि के नही हो सकता। मानव-प्रकृति के जितने अधिक रूपो के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते है, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नही। यदि कही सौन्दर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्षपुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा,

अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनंदोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता तुलसीदासजी के हृदय में बिंब-प्रतिबिंब भाव से विद्यमान है।

गोस्वामीजी की भावात्मक सत्ता का अधिक विस्तार स्वीकार करते हुए भी यह पूछा जा सकता है कि क्या उनके भावों में पूरी गहराई या तीव्रता भी है? यदि तीव्रता न होती, भावों का पूर्ण उद्रेक उनके वचनों में न होता, तो वे इतने सर्वप्रिय कैसे होते? भावों के साधारण उद्गार से ही सबकी तृप्ति नहीं हो सकती। यह बात अवश्य है कि जो भाव सबसे अधिक प्रकृतिस्थ है, उसकी व्यंजना सबसे अधिक गूढ़ और ठीक है। जो अत्यंत उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ प्रेमभाव उन्होंने प्रकट किया है, वह अलौकिक है, अविचल है और अनन्य है। वह घन और चातक का प्रेम है।

पुरस्कार

श्री जयशंकर प्रसाद

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश मे काले-काले बादलो की घुमड़ जिसमे देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था——देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल मे समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ मे गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखायी पडा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरे भरता हुआ आगे बढने लगा।

प्रभात की हेम-किरणो से अनुरंजित नन्ही-नन्ही बूँदो का एक झोका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पडा। मंगल-सूचना से जनता ने हर्षध्वनि की।

रथो, हाथियो और अश्वारोहियो की पंक्ति जम गयी। दर्शको की भीड भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढियो से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियो के दो दल आम्रपल्लवो से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलो से भरे थाल लिये, मधुर गान करते हुए आगे बढे।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कयान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण-रंजित हल की मूठ पकडकर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलो को चलने का संकेत किया। बाजे

बजने लगे। किशोरी कुमारियो ने खीलो और फूलो की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पडता, उस दिन इन्द्र-पूजन की धूमधाम होती, गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाडी भूमि मे आनन्द मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता, दूसरे राज्यो से भी युवक राजकुमार इस उत्सव मे बडे चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बडे कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजो का एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था जो उस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय-वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वय शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलको को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणो की भी कमी न थी, वे सब बरौनियो मे गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरो पर मन्द मुस्कुराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में

उसने शिथिलता नही की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे विस्मय से, कुतूहल से, और अरुण देख रहा था कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह, कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल मे कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण-मुद्राओ को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—

"देव, यह मेरे पितृ-पितामहो की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।" महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मंत्री ने तीखे स्वर से कहा—"अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है, फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई। इस धन से अपने को सुखी बना।"

"राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मन्त्रिवर! महाराज को भूमि समर्पण करने में तो मेरा कोई

विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।"—मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा—"देव! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।"

महाराज चौंक उठे—"सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, मधूलिका उसी वीर की कन्या है?"

"हाँ, देव!" सविनय मन्त्री ने कहा।

"इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या है, मन्त्रिवर?" महाराज ने पूछा।

"देव, नियम तो बहुत साधारण है। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष-भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये, किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसीने न देखा। वह अपने खेत

की सीमा पर विशाल मधूक वृक्ष के चिकने हरे पत्तो की छाया मे अनमनी चुपचाप बैठी रही।

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नही हुआ। वह अपने विश्राम-भवन मे जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची मे जैसी गुलाली खिल रही थी, वही रग उसकी आँखो में था। सामने देखा तो मुण्डेर पर कपोती एक पैर पर खडी पख फैलाये अगडाई ले रही थी। अरुण उठ खडा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर-तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरो के शब्द से चौक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पडी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पन्द थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठा, जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया—छि', कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट तुम कौन? मधूलिका की आँखे खुल पडी। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी।

"भद्रे ! तुम्ही न, कल के उत्सव की सचालिका रही हो ?"

"उत्सव ! हॉ, उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान "

"क्यो आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र ! आप क्या मुझे इस अवस्था मे सन्तुष्ट न रहने देगे ?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि !"

"मेरे उस अभिनय का, मेरी विडम्बना का ? आह ! मनुष्य कितना निर्दय है ? अपरिचित ! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।"

"सरलता की देवी ! मै मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन मे रहना नही जानती। उसे अपनी "

"राजकुमार ! मै कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दन-विहारी और मै पृथ्वी पर परिश्रम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मै दुख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करे।"

"मै कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।"

"नही, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मै उसे बदलना नही चाहती, चाहे उससे मुझे कितना ही दुख हो।"

"तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?"

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नही। राजकुमार, नियमो से यदि मानव-हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार

का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंचकर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता।" मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न-किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

* * *

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूकवृक्ष के नीचे छोटी-सी पर्णकुटी थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कान्ति थी। आसपास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका

अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाये रखनेवाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते है, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनो पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—दो, नही-नही, तीन वर्ष हुए होगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात में तरुण राजकुमार ने क्या कहा था?

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक-सी वह पूछने लगी—क्या कहा था? दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातो को स्मरण रख सकता था! और स्मरण ही होता, तो भी कष्टो की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता? हाय री विडम्बना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरो ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र उन सूखे डठलो के रन्ध्रो से, नभ में, बिजली के आलोक में नाचता हुआ दिखायी देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका मन ही मन कह रही थी—'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी, ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए कॉप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ

"कौन है यहाँ? पथिक को आश्रय चाहिए।"

मधूलिका ने डठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—"राजकुमार!"

"मधूलिका?" आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गयी—इतने दिनों के बाद आज फिर!

अरुण ने कहा—"कितना समझाया मैंने, परन्तु "

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नही चाहती थी। उसने कहा, "और आज आपकी यह क्या दशा है?"

सिर झुकाकर अरुण ने कहा—"मै मगध का विद्रोही, निर्वासित, कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।"

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी—"मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक बालिका! यह भी एक विडम्बना है, तो भी मै स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।"

* * *

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड कँपा देनेवाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे

है। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—"जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

"मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरो की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं, भला मै इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यो? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते है। अब तो तुम ——"

"भूल न करो, मे अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यो हो जाऊँ?" अरुण के शब्दो मे कम्पन था। वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।

"नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नही। भला कैसे? कोई ढग बताओ तो, मै भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।"

"कल्पना का आनन्द नही, मधूलिका! मै तुम्हे राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।"

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रासाद का अन्धड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—"आह, मै सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार।"

अरुण ढिठाई से उसके हाथो को दबाकर बोला—"तो मेरा भ्रम था? तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?"

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह 'हॉ' भी नही कह सकी, 'ना' भी नही। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा—"तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणो से पण लगाकर मै तुम्हें इसी कोशल-सिहासन पर बिठा दूँ। मधूलिके, अरुण के खड्ग का आतक देखोगी?" मधूलिका एक बार कॉप उठी। वह कहना चाहती थी, "नही," किन्तु उसके मुँह से निकला, "क्या?"

"सत्य, मधूलिका। कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित है। यह मै जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे, और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिको के साथ पहाडी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये है।"

मधूलिका की ऑखों के आगे बिजलियॉ हॅसने लगी। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा "तुम बोलती नही हो?"

"जो कहोगे वही करूँगी," मंत्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

* * *

स्वर्णमंच पर कोशल-नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में ऑखें

मुकुलित किये है। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ मे धीरे-धीरे सचालित हो रहे है। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—"जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आयी है।"

ऑख खोलते हुए महाराज ने कहा—"स्त्री! प्रार्थना करने आयी है? आने दो।"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आयी। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"तुम्हें देखा है?"

"तीन बरस हुए, देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गयी थी।"

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये, आज उसका मूल्य मॉगने आयी हो, क्यों? अच्छा अच्छा, तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!"

"नही, महाराज। मुझे मूल्य नही चाहिए।"

"मूर्ख! फिर क्या चाहिए?"

"अपनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जगली भूमि। वही मै अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा। भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।"

महाराज ने कहा—"कृषक-बालिके! वह बडी ऊबड-खाबड भूमि है। तिसपर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊँ?"

"सिंहमित्र की कन्या! मै क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना ...।"

"देव! जैसी आज्ञा हो।"

"जाओ, तुम श्रमजीवियो को उसमें लगाओ। मै अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।"

"जय हो देव!" कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आयी।

*　　　*　　　*

दुर्ग के दक्षिण भयावने नाले के तट पर घना जगल है। आज वहाँ मनुष्यो के पद-सचार से शून्यता भग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाडियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नही आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा-सा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिन्ता होती?

एक घने कुंज मैं अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रो से देख रहे थे। सध्या हो चली थी। उस

निबिड वन में उन नवागत मनुष्यो को देखकर पक्षीगण अपने नीड को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखे चमक उठी। सूर्य की अन्तिम किरणे झुरमुट मे घुसकर मधूलिका के कपोलो से खेलने लगी। अरुण ने कहा—"चार पहर और। विश्वास करो, प्रभात मे ही इस जीर्ण-कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मै एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके!"

"भयानक, अरुण! तुम्हारा साहस देख मै चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिको से तुम ''

"रात के तीसरे पहर मेरी विजययात्रा होगी।"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है?"

"अवश्य। तुम अपनी झोपडी मे यह रात बिताओ, प्रभात से तो राजमन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।"

मधूलिका प्रसन्न थी, किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई सकेत पाकर उसने कहा—"अच्छा, अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हे दूर जाना है और मुझे भी प्राण-पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए, तब रात्रि-भर के लिए विदा, मधूलिके!"

मधूलिका उठ खडी हुई। कटीली झाडियों से उलझती हुई, क्रम से बढनेवाले अन्धकार में वह अपनी झोपडी की ओर चली।

* * *

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निबिड तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गयी। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ। यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी—वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती-दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कोशल का चिर शत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशल-नरेश ने क्या कहा था—'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसीकी कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, नहीं। मधूलिका! मधूलिका!!—जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गयी।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपडी तक न पहुँची। वह उधेडबुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक दिखायी पडा। वह बीच पथ में खडी हो गयी। प्राय एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अधेड सैनिक था। उसके

र हाथ में नग्न खड्ग था। अत्यन्त धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोककर कहा—"कौन?" कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़ककर कहा—"तू कौन है स्त्री! कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।"

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—"बाँध लो! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।"

सेनापति हँस पड़े, बोले—"पगली है?"

"पगली नहीं। यदि वही होती, तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।"

"क्या है? स्पष्ट कह।"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जाएगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"तू क्या कह रही है?"

"मैं सत्य कह रही हूँ, शीघ्रता करो।"

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गयी।

*   *   *

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र इस रात्रि मे अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशो ने उसके प्रान्तो पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवो का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगो की ईर्ष्या का कारण है। जब थोडे से अश्वारोही बडे वेग से आते हुए दुर्ग के द्वार पर रुके तब दुर्ग के प्रहरी चौक उठे। उल्का के आलोक में उन्होने सेनापति को पहचाना। द्वार खुला। सेनापति घोडे की पीठ से उतरे। उन्होने कहा—"अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होगे?"

"सेनापति की जय हो! दो सौ।"

"उन्हे शीघ्र एकत्र करो, परन्तु बिना किसी शब्द के। 190 को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।"

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गयी। उसे अपने पीछे आने का सकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढे। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख-निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे, किन्तु सेनापति और साथ मे मधूलिका को देखते ही चचल हो उठे। सेनापति ने कहा—"जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पडा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा—"सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति ! मैने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो ?"

"देव ! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात मे दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।"

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह कॉप उठी। घृणा और लज्जा से वह गडी जा रही थी। राजा ने पूछा—"मधूलिका, यह सत्य है ?"

"हाँ देव !"

राजा ने सेनापति से कहा—"सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मै अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—"सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो, पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ !"

* * *

अपने साहसिक अभिमान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक मे अतिरंजित हो गया। भीड ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती-दुर्ग आज एक

दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक मे सभामण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुङ्कार करते हुए कहा—"वध करो!" राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी, 'प्राणदण्ड!' मधूलिका बुलायी गयी। वह पगली-सी आकर खडी हो गयी। कोशल नरेश ने पूछा—"मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।" वह चुप रही।

राजा ने कहा—"मेरी निज की जितनी खेती है, सब तुझे देता हूँ।" मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—"मुझे कुछ नही चाहिए।" अरुण हँस पडा। राजा ने कहा—"नही, मै तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।"

"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खडी हुई।

अबुल कलाम आज़ाद

श्री रामनाथ 'सुमन'

एक चित्र

1920 के तूफानी दिनो मे सबसे पहले मैने मौलाना आजाद को मुस्लिम देशो की राजनीति पर बोलते हुए सुना था। लम्बा क़द, तेज से जगमगाता चेहरा, ठुड्डी की बनावट ऐसी, जिससे दृढता का बोध होता था, चश्मे के अन्दर से चमकती आँखें, सिर पर रेशमी साफा, भाषा पर ऐसा अधिकार, मानो कोई उसे नचा रहा हो, जिधर चाहा मोड़ दिया। वसन्त की सुरभित प्रभाती वायु जैसे कलियों के पट खोल देती है वैसे ही उनके शब्दो के स्पर्श से एक अदृश्य भाव-जगत् अनावृत होता जा रहा था। एक-एक शब्द शक्ति के दूत-से, पर मोती की लडियो की भाँति परस्पर गुँथे हुए, जैसे कोई कलाविद् भाषा की प्रच्छन्न कला को मूर्तिमान कर रहा हो। काग्रेस के नेताओ में वाणी का ऐसा चमत्कार केवल भूलाभाई में था। जैसे उनकी अँग्रेजी सुनना बहुत-से लोग सौभाग्य की बात समझते और उनकी सभाओ में जाते थे वैसे मौलाना आजाद की चुस्त, मुहाविरेदार, शक्ति और सभ्यता से भरी उर्दू सुनना एक सौभाग्य की बात है।

उन्हीं दिनो एक दिन मौलाना को गीता पढने का प्रयत्न करते हुए देखा। तब से बहुत बार उन्हें दूर और नज़दीक से

देखा । चेहरे और रङ्ग-ढङ्ग मे अनेक परिवर्तन हो गये है। साफा अब शायद ही कभी दिखायी देता है, 20-22 वर्षों के संघर्ष ने चेहरे के उस तारुण्य पर प्रौढता का रङ्ग चढा दिया है, पर आन्तरिक रूप से मौलाना वही है, विद्रोह की भावना से उबलते हुए, विद्रोह की भावना जो इस्लाम धर्म के गहरे अध्ययन से एक धार्मिक विश्वास की भाँति उनमें विकसित हुई है, और जिसके आगे सब भावनाएँ अशक्त है, जो दिल में स्वप्न और आकांक्षाएँ ही नही पैदा करती, जलजले की तरह जो कुछ अन्दर-बाहर है उस सबको हिला देती है।

*　　　　*　　　　*

इस समय भारतीय सार्वजनिक जीवन में मौलाना शायद सबसे रङ्गीन और दर्शनीय (picturesque) व्यक्तित्व है, एक धर्माचार्य का रक्त जिनकी नसो मे दौड रहा है। इस्लाम धर्म, संस्कृति और दर्शन के गहरे जानकार, जिनके इस विषय के ज्ञान की सीमा लाधनेवाला आज कोई दिखायी नही देता और चन्द ही ऐसे व्यक्ति होगे जो उसके पास तक पहुँचने का दावा कर सकते है। परन्तु यह सब ज्ञान उन्होंने भारतमाता के चरणो में चढाकर उसे बन्धनमुक्त करने का बीडा उठाया है। कोई आदमी अपने उपनाम के प्रति इतना वफादार न होगा, कोई उपनाम अपने ग्राहक के अनुपात से इतना सार्थक न होगा जितना मौलाना अपने 'आजाद' उपनाम के प्रति है, या जितना 'आजाद' उपनाम

सार्थक है। मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए शायद ही किसी और मुसलमान भारतीय ने इतनी लगन और इतनी निर्भीकता से काम किया होगा।

[2]

जीवन-कथा

मौलाना आजाद सोलहवी शताब्दी के प्रसिद्ध मुसलमान सन्त हजरत शेख जमालुद्दीन के वंशधर है। शेख जमालुद्दीन अपने समय मे मुस्लिम धर्मशास्त्रो के आचार्य माने जाते थे। उनके हजारो शिष्य थे और उनका 'हदीस' का भाष्य आज तक प्रमाण-रूप माना जाता है। अकबर के विद्या-प्रेम के कारण पूर्व के देशो से आकर अनेक ज्ञानी और पण्डित उनके दरबार में एकत्र हुए थे। शेख जमालुद्दीन भी दिल्ली आये। अकबर पर उनकी विद्वत्ता का बडा प्रभाव पडा। अकबर ने उनको धर्मशिक्षा कालेज की अध्यक्षता और जागीर आदि देकर सम्मानित करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु शेख जमालुद्दीन ने उसे ठुकरा दिया और कहा—"दारिद्र्य ही हमारा भूषण है। राजा का दान ग्रहण करके मै अपनी आत्मा को कुण्ठित न करूँगा।" जब 'दीने इलाही' नामक एक नये धर्म का सङ्गठन आरम्भ हुआ और अबुल फ़जल तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित मुल्लाओ ने बादशाह को धार्मिक और आध्यात्मिक नेता भी घोषित किया तब जलालुद्दीन से भी उस घोषणा का समर्थन करने को कहा गया, परन्तु उन्होंने स्वीकार

नही किया। फलत वह सम्राट के कोपभाजन हुए और मक्का चले गये।

इनके एक और पूर्वपुरुष शेख मुहम्मद जहाँगीर के समकालीन थे। उन दिनो उलमा भी बादशाह को कोर्निश करते थे, परन्तु शेख मुहम्मद ने जहाँगीर को झुककर सलाम करना स्वीकार न किया; कहा—"अभिवादन केवल खुदाताला को प्राप्य है।" जहाँगीर की आज्ञा से वे चार वर्ष तक ग्वालियर के किले में नजरबन्द रखे गये। सत्ता के दम्भ के सामने सिर न झुकाने की यह विद्रोह-वृत्ति मौलाना आजाद के पूर्वजो में बराबर रही है। इनके प्रपितामह शेख सिराजुद्दीन के सिवा किसीने कभी कोई सरकारी नौकरी स्वीकार नही की। दादा और दादी दोनों पक्षो से मौलाना अपने पूर्वजों में अनेक प्रतिष्ठित पण्डितो और धर्माचार्यों के नाम गिना सकते है।

मौलाना के पिता मौलाना खैरुद्दीन भी सूफ़ी और पण्डित थे। अरबी-फारसी में उन्होने कई मूल्यवान ग्रन्थ लिखे। वह एक बडे आध्यात्मिक साधक थे। दिल्ली, गुजरात, काठियावाड, बम्बई और कलकत्ते में उनके अनेक शिष्य थे। 1857 ई० के गदर के दिनो में उनको भी भारत छोडकर मक्का जाना पड़ा। इस्लाम जगत् के तात्कालिक खलीफ़ा सुल्तान अब्दुल हमीद ने उन्हे टर्की बुला लिया जहाँ वह तीन साल तक रहे। वहाँ उन्होने कई और पुस्तके लिखी और वे प्रकाशित भी हुई। फिर मक्का

लौट आये। 1872 ई० में उन्होंने मक्का की 'जुबैदा नहर' के सस्कार और सफाई की आवश्यकता का अनुभव करके उसके लिए आन्दोलन किया और 11 लाख रुपये जमा करके उसकी काया पलट दी। वहीं मक्का के प्रसिद्ध विद्वान शेख मुहम्मद जहीर की विदुषी कन्या के साथ आपका विवाह हो गया। सितम्बर 1888 ई० मे मक्का मे मौलाना आजाद का जन्म हुआ। इनका असली नाम अहमद था और पिता इन्हे फीरोजबख्स के नाम से पुकारते थे।

अहमद या मौलाना आजाद का लडकपन मक्का और मदीना में बीता। इनकी मातृभाषा अरबी है। अहमद ने आरम्भ में माता से अरबी सीखी, फिर पिता से फ़ारसी और उर्दू पढी। इनके पिता का घर एक विद्या-केन्द्र बन गया था। इसलिए आरम्भ से विद्याध्ययन के उत्तम सस्कार इनके मन पर प्रभाव डाल रहे थे। कुछ दिनो तक इन्होंने मिश्र की 'अल-अजहर' यूनिवर्सिटी में (जो विद्यार्थियों की सख्या की दृष्टि से ससार की सबसे बडी यूनिवर्सिटी है) भी शिक्षा प्राप्त की। 14 साल की उम्र मे इन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त कर ली—यहाँ तक कि कई कक्षाओं में पढाने का कार्य भी इनसे लिया जाने लगा। उस समय भी उन्हे एक 'बौद्धिक चमत्कार' ही समझा जाता था।

जब यह हिन्दुस्तान आये तो सिर्फ 15 वर्ष की उम्र में (1903 ई में) एक साहित्यिक मासिक पत्रिका 'लिसानुल-

सिद्दीक़' (= सच्ची जुबान) का सम्पादन और प्रकाशन शुरू किया। स्व० मौलाना अलताफ हुसैन 'हाली' उससे बड़े प्रभावित हुए थे। 1904 ई० मे जब मौलाना हाली से इनकी भेंट हुई तो उनको विश्वास नही हुआ कि यह 16 वर्ष का लडका ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका का सम्पादक 'आजाद' है। जब उनको असलियत मालूम हुई तो वह आश्चर्यमुग्ध हो गये और जीवन-भर मौ० आजाद के प्रशसक रहे। 14 वर्ष की उम्र से ही आजाद ने अरबी भाषा और साहित्य के गम्भीर विद्वान् 'शिबली' से पत्राचार आरम्भ किया और लाहौर के 'मखजन' मे भी कुछ महत्त्वपूर्ण लेख लिखे। 1904 ई० मे जब यह मौलाना शिबली से बम्बई मे मिले तो वह अबुलकलाम आजाद की रचनाओ की देर तक प्रशंसा करते रहे। उन्होंने इनको 'आजाद' न समझकर उनका लडका समझा। जब उन्हें मालूम हुआ यह लडका ही अबुलकलाम है तो वह आश्चर्य से अभिभूत हो गये। नवाब मोहसिनुलमुल्क सदा इनको 'उम्र में बच्चे, इल्म मे बूढ़े' लिखा करते थे। मुस्तफा कमाल, जगलूल पाशा तथा विदेशो के कितने ही मुसलमान विद्वान इनकी कृतियो के बड़े प्रशसक थे और इनकी रचनाओ के अनुवाद फारसी, तुर्की आदि कई भाषाओ मे हो चुके है।

1907 ई० मे इनके पिता कलकत्ते के अपने अनेक शिष्यो के अनुरोध पर स्थायी रूप मे कलकत्ते मे बस गये। 1909 ई मे जब उनकी मृत्यु हो गयी तो मौलाना आजाद से

उनका स्थान ग्रहण करने का अनुरोध किया गया, पर इन्होंने स्वीकार न किया और शिष्य भी नही बनाये।

इन दिनो मौलाना आजाद के मन पर मुस्लिम देशो में चलनेवाले कूटनीतिक षड्यन्त्रो का बडा प्रभाव पड रहा था। उन देशो में रह चुकने के कारण वहाँ की स्थिति का इनको बहुत अच्छा ज्ञान था और जिस प्रकार उनकी स्वतन्त्रता अपहरण की जा रही थी उससे इनके मन में बडी खीझ थी। मुसलमानो का स्वतन्त्रता का सन्देश देने को यह व्याकुल थे। 1912 ई० में इन्होने अपने विचारो के प्रचार के लिए कलकत्ता से 'अल-हिलाल' नाम का पत्र निकाला जो अपने ढङ्ग का भारत मे एक ही पत्र था। और सामग्री तथा गेट-अप दोनो दृष्टियो से यूरोप के उच्च काटि के पत्रो के टक्कर का था। विचार और अभिव्यक्ति दोनो में इन्होने एक सर्वथा नूतन शैली का आविष्कार किया जिसने उर्दू गद्य की काया पलट दी और पिछले 60 वर्षों में सैकडो लेखको को अनुप्राणित किया। मौलाना आजाद इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि गुलाम मुसलमान संसार के लिए खतरा है और मुस्लिम विचार-धारा मे क्रान्ति लाने की बडी आवश्यकता है। 'अल-हिलाल' इसी मानसिक क्रान्ति का एक साधन था। अपने राजनीतिक निबन्धो के साथ धार्मिक विषयो पर भी इन्होने नया प्रकाश डालना शुरू किया, जिससे जीर्ण और जड परम्पराओ से ऊबे हुए अनेक मुसलमान युवको ने नूतन स्फूर्ति ग्रहण की।

मौलाना आजाद ने धार्मिक क्षेत्र में बौद्धिक और विवेकपूर्ण समीक्षा का एक नया अध्याय आरम्भ किया। उस समय के कवि इक़बाल की भाँति इन्होंने भी भारत के शिक्षित मुसलमानों का जीवन के मौलिक और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने की प्रेरणा दी।

'अल-हिलाल' ने उर्दू पत्रकार-कला में क्रान्ति कर दी। निकलने के दो-तीन महीनों के अन्दर ही वह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। एक तरफ वह प्रगतिशील राजनीतिक विचारधारा तथा धर्म-विवेक की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बन गया, दूसरी ओर साहित्य-रचना का श्रेष्ठ उदाहरण। आज तक उसकी पुरानी प्रतियों की माँग है।

अब तक शिक्षित मुसलमान, राजनीति और धर्म दोनों के विषय में अलीगढ स्कूल की विचारधारा का पालन करते थे। अलीगढ ही उनकी स्फूर्ति का केन्द्र था। भारत की मुस्लिम राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को मालूम है कि सर सैयद अहमद खाँ कांग्रेस के एक अधिवेशन में शामिल होने के बाद उससे मुसलमानों को अलग कर लेने के प्रयत्न में थे। अलीगढ में इसी उद्देश्य से उन्होंने मुसलमानों की शिक्षा का काम अपने हाथ में लिया। उनका उद्देश्य राजनीति से मुसलमानों को हटाकर उनको राजभक्त बनाना था। 1906 ई० में सरकारी प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और उसे मुस्लिम

राजनीति की अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया। उस समय मुस्लिम लीग का घोषित ध्येय ब्रिटिश ताज के प्रति वफादारी का प्रसार करना था। ब्रिटिश अफसर लीग को अपने राजनीतिक हथकण्डों का साधनमात्र समझते थे। इस विचारधारा का नाम 'अलीगढ स्कूल' था। और इसका उस समय शिक्षित मुसलमानों पर इतना असर था कि जब स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली ने 1911 ई० में कलकत्ता से अपना पत्र 'कामरेड' निकाला तब शुरू-शुरू मे उन्होने भी अलीगढ स्कूल का ही अनुगमन किया। मगर बाद मे मौलाना अबुलकलाम ने अपने पत्र में इस स्कूल (विचार-धारा) के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चलाया और मुसलमानों से अपील की कि वे स्वदेश को गुलामी के बन्धनों से मुक्त करने कांग्रेस का साथ दे। पुराने ख्याल के राजनीतिज्ञ इससे चकित और भीत हुए। मौलाना मुहम्मद अली तक ने मुसलमानों पर पडनेवाले 'अल-हिलाल' के प्रभाव को दूर करने मे पुराने ख्याल के लोगों का साथ दिया, पर 'अल-हिलाल' अपने लक्ष्य में दृढ रहा और धीरे-धीरे उसका प्रभाव बढता गया और प्रगतिशील मुसलमानों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन और प्रकाश-केन्द्र बन गया। इससे लोगो के विचारों मे बडी खलबली मच गयी।

अन्त में सरकार ने दमन का अस्त्र सँभाला। पत्र के ऊपर प्रेस ऐक्ट के प्रहार होने लगे। कई बार जमानतें माँगी गयी, पर मौलाना आजाद इन कठिनाइयों के बीच भी उसे निकालते

रहे। पार्लिमेण्ट तक मे उसकी चर्चा हुई। उसके मजमूनो की निगरानी के लिए ब्यूरो बनाया गया। और आखिर में दस हजार की जमानत माँगी गयी। सरकार और उसके पीछे की पश्चाद्गामी शक्तियाँ उसे खत्म करने पर तुली हुई थी। उसे कहाँ तक बचाया जा सकता था! महायुद्ध शुरू हो चुका था और एशिया के मुस्लिम देशो मे ब्रिटिश सरकार-द्वारा अनेक कूटनीतिक चालें चली जा रही थीं। ऐसी अवस्था मे इस प्रकार के पत्र का प्रकाशन सरकार कभी सहन न कर सकती थी। अन्त मे, 1915 ई० में भारत-रक्षा-विधान *(डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट)* के प्रहार से वह बन्द हो गया। तब से उसकी नक़ल करने के अनेक प्रयत्न किये जा चुके है। पर न तो अन्तरङ्ग सामग्री मे, न गेट-अप में ही कोई उसकी समता आज तक कर सका है।

अबुलकलाम यो हार माननेवाले व्यक्ति न थे। 'अल-हिलाल' के बन्द होते ही इन्होंने 1916 ई० मे 'अल-बलाग' का प्रकाशन शुरू कर दिया। इस समय सरकार इनके पीछे पड़ी हुई थी। पञ्जाब, युक्तप्रान्त, बम्बई तथा अन्य कई प्रान्तों की सरकारों ने अपनी शासन-सीमा में इनके आने का निषेध पहले ही कर दिया था। 'अल-बलाग' के निकलने के चन्द महीने बाद ही बङ्गाल सरकार ने भी इनको निर्वासित कर दिया। अब बिहार बच रहा था। यह कलकत्ता से राँची चले गये, परन्तु सरकार से यह भी सहन नही हुआ। राँची में रहते इन्हे पाँच ही महीने

हुए थे कि नजरबन्द कर दिये गये ओर फिर महायुद्ध की समाप्ति के बहुत दिना बाद 1920 ई० मे मुक्त हुए। मुक्ति के बाद भारत के उलमा की ओर से उनका स्वागत और अभिनन्दन किया गया

अबुलकलाम की रचनाओ और वक्तृताओ से भारतीय मुसलमानो के दृष्टिकोण मे जो परिवर्तन हो रहा था वह 1913 ई० से उस समय की मुस्लिम लीग तक मे व्यक्त हुआ। 1913 ई० में सर सैयद वजीर हसन (*तब सैयद वजीर हसन*) लीग के मन्त्री की हैसियत से मौलाना से मिले और इसके फलस्वरूप लीग का लक्ष्य बदलकर 'स्वायत्त शासन का एक वाञ्छनीय रूप प्राप्त करना' हो गया—यद्यपि मौलाना आजाद इतने से भी सन्तुष्ट न थे।

1920 ई० मे इन्होने पूर्णत गान्धीजी-प्रवर्तित अहिंसात्मक आन्दोलनो का समर्थन किया है। यह मुस्लिम लीग, काग्रेस और आल-इण्डिया खिलाफत कमेटी—तीनो के अध्यक्ष रह चुके है। 1923 ई० में देशबन्धु दास और प० मोतीलाल का साथ देकर इन्होंने पुराने स्वराज्य दल में जान डाल दी। 1923 ई० के अन्तिम चतुर्थांश में परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियो का झगडा पराकाष्ठा पर पहुँच गया और निश्चय हुआ कि कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करके इस प्रश्न का निर्णय किया जाय। हिन्दू और मुसलमान दोनो प्रकार के काग्रेसी दो दलों में विभाजित थे। मुसलमानों में स्व० हकीम अजमल खाँ, मौ० आजाद

वगैरह परिवर्तनवादी या स्वराजी दल मे थे और स्व० मौलाना मुहम्मद अली और स्व० डा० अंसारी वगैरह अपरिवर्तनवादी दल में थे। दिल्ली के इस ऐतिहासिक विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष मौ० आजाद ही चुने गये और इस अधिवेशन मे कौंसिल-प्रवेश की अनुमति दे दी गयी। तब से मौलाना आजाद बराबर 'दो मोर्चों की *(यानी कौंसिलों के भीतर और बाहर)* नीति' के समर्थक रहे है।

कांग्रेस से आपका सम्बन्ध कभी भङ्ग नहीं हुआ। 1920 ई० से आज तक यह बराबर उसके प्रभावशाली नेताओं में रहे हैं। मुस्लिम लीग ने जब पश्चाद्गामी प्रवृत्तियो को अपनाया तब यह उससे अलग हो गये, पर 'जमैयतुल उलमा-ए-हिन्द' से, जो लाखों अनुयायी रखनेवाले मुस्लिम धर्माचार्यो और विद्वानों की भारत मे सबसे शक्तिमान संस्था है, बराबर उनका सम्पर्क रहा है। खिलाफत आन्दोलन के समय यह संस्था मुसलमानों को आज्ञा देती थी और उसका पालन अक्षरश होता था। आश्चर्य की बात है कि उस समय के सब प्रगतिविरोधी, जो जमैयत से दबे हुए थे, मौका पाकर बाद में उठ खडे हुए और इस्लाम-धर्म की रक्षा के नाम पर उन्होने मुसलमानो को राष्ट्रीयता के मार्ग से विरत किया। कांग्रेस के कट्टर समर्थक बहुत-से मुसलमान नेता और कार्यकर्ता उससे अलग हो गये, पर मौलाना आजाद उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की पताका ऊँची किये अपने स्थान पर स्थिर रहे है।

1924 ई० में इन्होने वर्ष मे कुछ महीने दिल्ली मे रहने का निश्चय किया। विचार यह कि साहित्यिक प्रवृत्तियो मे भी भाग ले और राजनीति के कारण रचनाओ का जो क्रम भङ्ग हो गया था उसे फिर से जारी करें। उनके कुरान के अनुवाद और भाष्य को प्रकाशित करने के लिए दिल्ली में एक प्रेस खोला गया, लेकिन कामो की भीड के कारण वहाँ अधिक समय तक रहने का निश्चय चल न सका और आजाद कलकत्ता लौट गये। इनका कुरान का अनुवाद और उसका भाष्य इनकी एक लोकप्रिय रचना है।

[3]

अध्ययन

बादल घिरे है। धुआँधार वर्षा होने लगी। बिजलियाँ कड़क रही है और तूफानी हवाओ के कारण वृक्ष टूट-टूटकर गिर रहे है। मै पहाडी पर बँगले के एक कमरे में सब कुछ बन्द कर एक छोटी खिडकी खोले प्रकृति का भयानक ताण्डव देख रहा हूँ। दिल काँप रहा है। ऐसा जान पडता है कि आज कुछ न बचेगा। कडकडाते हुए, टकराते हुए बादलो के कारण सारा शरीर कण्टकित हो उठता है। भय, शङ्का, आशा, निराशा के झकोरो में उलझा और डगमग कर रहे विश्वास के ज्वार-भाटे के बीच बैठा मै सङ्कुचित होकर सब देख रहा हूँ। आज क्या होगा? पास का दीपक बुझ गया है। क्या अन्दर जो आशा का

दीपक है वह भी बुझ जाएगा ? सहसा दृष्टि सामने जाती है। तूफानों के बीच एक चोटी अचल-सी है। जो कुछ हो रहा है वह मानो उसके लिए नहीं है। बिजलियाँ उसका उपहास करती है, हवाएँ उससे टकराती है, बादल उसपर गहरी वर्षा करते है, और उसे घेर लेते है, पर वह है कि सिर उठाये, चिरन्तन दृढता की प्रतीक-सी दायें-बायें आगे-पीछे के इन हास्यास्पद प्रयत्नो पर कुछ मुस्कुराती-सी खडी।

सतपुडा के अचल में बैठकर एक दिन मैने यह दृश्य देखा था। दिन पर दिन, महीने बीतते गये है, पर वह दृश्य अपने अदृश्य पद-चिह्न छोडकर मानो आगे बढ गया है। भूलकर भी मै उसे भूलता नही हूँ। और जब कभी मौलाना आजाद को देखता हूँ, तो मानों उसी दृश्य को देखता हूँ। प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच अचल, एक मार्ग जिसने चुन लिया है और उसपर जाना ही अब जिसके लिए सत्य है, कोई प्रलोभन जिसे मार्ग-भ्रष्ट नही कर सकता, कोई उत्तेजन जिसे दिङ्मूढ करने में असमर्थ है—यह है अबुलकलाम आजाद।

अलीगढ पार्टी के द्वारा मिलनेवाली क़त्ल की धमकियाँ जिसे राष्ट्रीयता के मार्ग से हटा न सकी, भारत, मिस्र, टर्की, इराक और अरब के हजारो मुसलमानो के लिए गुरु-रूप होकर भी काबुल के मुर्तदों *(इसलाम धर्म छोडकर अन्य धर्म स्वीकार करनेवालो)* पर होनेवाले अत्याचारों का विरोध करने में जो नही चूका और कराची

के नाथूराम महाराज की हत्या करनेवाले हत्यारे अब्दुल कयूम का जब सम्प्रदायवादी मुसलमान गाजी कहकर आग भडका रहे थे तब अत्यन्त निर्भीकता से जिसने उसकी निन्दा की, जो उस सैलाब मे भी अचल रहा जिसमें मौलाना मुहम्मद् अली, ला० लाजपतराय और मालवीयजी तक बह गये, उस दृढता और निर्भीकता के प्रतीक, लम्बे, गोरवर्ण, प्रभावशाली व्यक्तित्ववाले व्यक्ति को भारतीय राष्ट्रीयता मौ० आजाद के नाम से जानती है।

मुझे याद है कि काग्रेस के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने मौलाना आजाद का उपहास करते हुए उन्हे 'ग्रैण्ड मोगल' *(महान् मुगल)* कहकर पुकारा था। यदि इस शब्द से उसके तीव्र दश को निकाल दें तो निश्चय ही वह 'ग्रैण्ड मोगल' कहे जा सकते है। उनका ऊँचा-लम्बा कद, उनकी राजकीय शान, उनकी आकर्षक शालीनता सहज ही उन्हें एक महान पुरुष के रूप में घोषित करती है। वह प्रति इञ्च 'ग्रैण्ड मोगल' दिखते है और इसमें जरा भी सन्देह नही कि यदि वह मोगल साम्राज्य के वैभव के दिनो में पैदा हुए होते तो दिल्ली के सिहासन पर बैठकर उसी गौरव और सफलता का परिचय देते जिसका परिचय बडे से बडे मुगल सम्राट् ने दिया है। लायड जार्ज ने एक बार लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में कहा था—'Had Tilak lived in more stormy days he would have carved out an empire for himself' अर्थात् 'यदि तिलक ज्यादा तूफानी दिनो मे पैदा हुए

होते तो अपने लिए एक साम्राज्य खड़ा कर लेते।' यदि यह बात आज के किसी भी दूसरे भारतीय पर लागू होती है तो वह मौलाना आजाद हैं। परन्तु उनके भाग्य में ब्रिटिश-शासित भारत में रहना लिखा था—जहाँ कोई आदमी कितना ही प्रतिभाशाली और शक्तिसम्पन्न हो, एक पदवीधारी या फिर शहीद बनकर रह जाता है।

और इस आकर्षक व्यक्तित्व के अन्दर एक सरस हृदय छिपा है, जो मातृभूमि के बन्धनों की पीड़ा का प्रतिक्षण अनुभव करता है। वह हृदय जिसे राजनीति की कुटिलताओं ने विकृत नहीं किया और यशैषणा जिसके आगे हेच है। कई बार मौलाना आजाद से कांग्रेस की अध्यक्षता की प्रार्थना की गयी, पर उन्होंने इनकार कर दिया और तभी उसे स्वीकार किया जब स्वीकार करने के अतिरिक्त चारा न था। जुलूसों और प्रदर्शनों में उनका दम घुटने लगता है। इस सङ्कोची स्वभाव को लोग प्रायः गलत अर्थ में लेते हैं, उन्हें अहङ्कारी समझते हैं, पर यह उनका अहङ्कार नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि उनमें अहङ्कार है नहीं। एक प्रकार से यह भी कह सकते हैं कि उनकी सारी दृढ़ता और अचलता के पीछे उनका सूक्ष्म-विकसित, संस्कृत अहङ्कार ही है। महात्माजी की भाँति उनका जीवन सम्पूर्णतः निवेदित या समर्पित नहीं है, जहाँ निजत्व का अभिमान शाश्वत सत्यों की अनुभूति में मिलकर असीम हो जाता है। मौलाना अपने निजत्व की

पवित्रता के प्रति, अपने गौरव की रक्षा के प्रति बडे जाग्रत है। अपनी शान पर आँच वह न आने देंगे। अपने अहङ्कार को उन्होंने धार्मिक और राष्ट्रीय अहङ्कार के रूप में बदल दिया है। अपने ऊपर राख डाल दी है, पर राख के नीचे चिनगारियाँ बुझी नही है। कोई कुरेद दे तो देखेगा कि नीचे की राख तप रही है और चिनगारियाँ अब भी उसके अन्दर लाल-लाल आँखें किये चमक रही है।

इस सम्बन्ध मे मुझे एक पुरानी घटना याद आती है जो मौलाना के एक घनिष्ठ मित्र और मुसलमान नेता ने बतायी थी और बाद मे कलकत्ते के प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'जागृति' में छपी थी। मै मौलाना की जीवनकथा में लिख चुका हूँ कि वह प्राय दिल्ली आते रहते थे। पहले दिल्ली आने पर वह होटल मे ठहरा करते थे, पर बाद में डा० अंसारी के प्रबल अनुरोध से उन्हींके यहाँ ठहरने लगे।

एक बार की बात है, कुछ कारणो से मौलाना को डा० अंसारी की कोठी पर ज्यादा दिन ठहरना पडा। एक साहब मिलने आये थे और मिलने में देर होती देखकर कह उठे कि ऐश हो रहे है, मुफ्त की मेहमानवाजी है, नवाबी है।

मौलाना के कान में भनक पड गयी। गजब हो गया। वहीं दरियागञ्ज (दिल्ली) में एक कोठी तीन सौ रुपये मासिक पर ले ली गयी। रुपया बहने लगा—कोठी में क़ालीन

खिचे, बढ़िया फर्निचर आया, एक लकदक मोटर भी आकर खड़ी हो गयी और कोठी तैयार हुई कि मौलाना कलकत्ता चले गये। बरसो कोठी खाली पड़ी रही। क्योंकि मौलाना का दिल्ली आने का मौका ही नही लगा। साल मे एक दिन का औसत पड़ता था। धीरे-धीरे खिदमतगार महोदय ने भी मकान की चीजो पर कृपादृष्टि की। मतलब यह कि मौलाना के दस-पॉच हजार रुपये एक बात के पीछे बिगड़ गये।

बात उन्हे बहुत जल्द लगती है। ओर इसीलिए कलकत्ता और बम्बई की अपनी जायदादे वह एक-एक कर बेचते गये है, पर किसीके आगे हाथ फैलाने की कल्पना कभी उनके मन मे न आयी। यह ठीक है कि वह पहले दर्जे मे सफर करते है ओर शान से रहते दिखायी देते है। पर जब उनके पास पैसा नही होता तो किसीसे कहते भी नही और भूखे भी रह सकते है।

उनके एक मित्र लिखते है ——

" उनकी चादर पर चार-पॉच बड़े-बड़े पैवन्द लगे हुए थे। प्रात काल से ही मुझे उन्होने बुला भेजा था। कितनी ही चिट्ठियॉ लिखी। देखते-देखते खाने का वक्त निकल गया, लेकिन मौलाना नही उठे। मैने देखा, घड़ी की सुई दो बजे के उस पार निकल गयी थी। मे भी बड़ी हैरानी मे था——भूख के

मारे बुरा हाल था। मैने तकल्लुफ छोडकर कहा—मौलाना साहब, मुझे तो भूख लगी है।

मौलाना कुछ नही बोले। अपने काम मे लगे रहे।

आध घण्टा यों ही गुजर गया। मौलाना साहब से बडी उलझन के साथ मैने कहा—आप हाजमा खराब होने पर फ़ाक़ा कर सकते है। लेकिन

मौलाना ने कहा—"क्यों! सच कहते हो। लेकिन सच यह है कि खाने को पैसे ही नही है।"

जमीन मेरे पैरो के नीचे से निकल गयी। मैने उनकी चादर के पैवन्दों पर ध्यान नही दिया था। मैने बात धीरे से डा० के कानो मे डाली।

और तब कही मौलाना के पेट मे निवाले पडे।"

इस तरह वह घुटकर मर जानेवाले है, लेकिन आह न करेंगे। ऐसा नही कि वह सिर्फ अपने गौरव और सूक्ष्म अहङ्कार के प्रति ही सजग हो, दूसरों की इज्जत रखना भी वह जानते है और दूसरो की कमजोरियाँ देखकर घृणा की जगह सहानुभूति का उदय उनके मन मे होता है। उनके मित्र लिखते है —

"एक बार की बात है कि मौलाना ने कहीं से दो सौ रुपये मँगाये थे। सौ-सौ रुपये के दो नोट थे। उनसे मिलने

के लिए एक साहब आ गये। मौलाना ने वे नोट पेपरवेट मे दबाकर रख छोडे थे।

मिलनेवाले सज्जन अधीर थे। उन्होने मौलाना की नजर बचाकर नोटों की ओर हाथ बढाया। मौलाना ने देख लिया, पर मुँह फिरा लिया और तब तक फिराये रखा जब तक कि उन्हे भरोसा न हो गया कि हजरत अपना काम कर चुके है। मौलाना यो बात करते रहे जैसे कुछ हुआ ही नहीं और पूछने पर इस मामले मे अपनी तटस्थता का जवाब यो दिया—भाई, उसको मुझसे ज्यादा जरूरत होगी, नही तो बेचारा चोरी क्या करता?"

मौलाना का विश्लेषण करे तो मालूम होगा कि पहले तो वह एक संस्कृत एरिस्टोक्रेट *(रईस)* है। रईसी आनबान, विचक्षण बुद्धि, दूर तक बातो को समझनेवाले, शीन-क़ाफ से दुरुस्त, सभ्यता और शालीनता की मूर्ति, दिल के नरम, पर जरूरत पडने पर गरम और सख्त हो जानेवाले है। दूसरी बात यह कि वह एक सच्चे मुसलमान है। उनमे यह धारणा धार्मिक विश्वास की भाँति विकसित हुई है कि सच्चा मुसलमान गुलाम नही रह सकता या जब तक मुसलमान गुलाम है—गुलामी को बर्दाश्त करता है—तब तक उसके लिए अपनी धर्म-भावना के प्रति ईमानदार हो सकना सम्भव नही। इसीलिए वह अनुभव करते है कि हम सच्चे मुसलमान तभी होगे जब हम स्वाधीन होकर साँस लेंगे।

स्वतन्त्रता उनके लिए इसलाम धर्म का एक मौलिक सिद्धान्त है। फिर जिसने इसलाम की मूल भावना को ग्रहण कर लिया है वह प्रलोभनों के बीच भी अपनी निष्ठा नही छोड सकता, वह केवल ईश्वर को मान-जानकर, उसके चरणो में सब कुछ भूलकर चलता है। अधिकार उसके लिए तुच्छ है, वैभव और विलास उसके लिए बेकार हैं, तालियो की गडगडाहट में वह अपने को भूलता नही और निन्दा तथा उपहास की तीक्ष्णता उसे मार्ग से विचलित करने में असमर्थ है।

"अगर तुम मेरे हाथो पर चॉद और सूरज को लाकर रख दो तो भी मै सत्य के मार्ग से विचलित नही हूँगा।"— आज से सैकडो साल पूर्व ये शब्द इसलाम धर्म के प्रवक्ता हजरत मुहम्मद के मुँह से निकले थे, जब अरबो ने उनसे कहा कि आप अपना धर्मोपदेश छोड दे तो हम आपको अपना बादशाह बनाने को तैयार है। मौलाना आजाद में पैगम्बर की वही भावना प्रस्फुटित हुई है। अगर उन्होने शौकतअली, जिन्ना या सम्प्रदायवादी मुसलमानों का रास्ता पकडा होता तो 10 करोड मुसलमानो के एकछत्र नेता होते। जिसकी मातृभाषा अरबी है, मुस्लिम सन्तो के प्रतिष्ठित वश के एक प्रतिष्ठित वंशधर, इस्लाम धर्म की भावना के ज्ञाता, मुस्लिम धर्मशास्त्रो के पण्डित, अरब, मिश्र, तुर्की, इराक आदि देशो में आहत मौलाना का कोई प्रतिद्वन्द्वी उस क्षेत्र में न था। विद्वत्ता ऐसी, जिसकी

पूजा विदेशो के हजारों मुसलमान करते है। एक बार इनकी विद्वता पर मुग्ध एक आदमी ईरान से सैकडो मील पैदल चलकर इनके दर्शनो को आया और दर्शन से तृप्त होकर चन्द मिनटो में चला गया। नाम-धाम भी नही बताया, न कुछ भेंट स्वीकार की। इस गुमनाम व्यक्ति की गरीबी और श्रद्धा से द्रवित होकर इन्होने अपने कुरान का अनुवाद और भाष्य उसे समर्पित किया है। ऐसा व्यक्ति चाहता तो मुसलमानो पर जादू फेर सकता था। लेकिन ये प्रलोभन उन्हें लुभा न सके और इस्लाम धर्म की स्वतन्त्रता की भावना को एक क्षण के लिए भी भूलने को वह तैयार नही।

तीसरी बात यह कि स्वभावत वह एक चिन्तनशील मानस के प्रतिनिधि है। वह गम्भीर विद्वान है, भीड-भाड़ और प्रदर्शन उनके दिल की चीज नही। वह पीछे रहना पसन्द करते है और प्रदर्शनात्मक परिस्थितियों से घबडाते है। वह उर्दू के सर्वोत्तम वक्ताओ में से एक है और उनके भाषण सुनने के लिए लोग बहुत बडी तादाद में एकत्र होते है। फिर भी वे भरसक ज्यादा भीडवाली सभाओ से बचते है। आदमी को पहचान लेने की गहरी क्षमता उनमे है, पर अपनी भावनाओ को वह शीघ्र व्यक्त नहीं होने देते और यो एक राजनीतिज्ञ का गुण भी उनमें है।

मै कह चुका हूँ कि भीडभाड में वह अपने को बडा सङ्कुचित अनुभव करते है। इसके विरुद्ध यों भी कहा जा सकता

है कि उनका सर्वोत्तम रूप चुने हुए लोगो या मित्रो की मण्डली में निखरता है। यहाँ वह 'अपनेपन' में होते है। यहाँ उनकी बातचीत की कला व्यक्त होती है। यहाँ उनका मजाक फूटता है। किसीके पक्ष या विपक्ष में बोलते समय शक्ति के पुञ्ज मालूम पडते है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार होने तथा तीव्र मेधाशक्ति के कारण उनकी तर्कना प्रबल रूप में सामने आती है। मित्रो के साथ सैर-सपाटा, टर्किश बाथ, और साहित्य का अध्ययन और रचना यही उनके व्यस्त जीवन के विश्राम है। अपने जीवन के सम्बन्ध मे मौन उनकी एक बडी विशेषता है।

राजनीति के इस व्यस्त जीवन मे वह साहित्य-रचना के स्वप्न सदा देखा करते है। वह अपनी स्वाभाविक रुचि से वस्तुत साहित्य-निर्माता ही है, राष्ट्रीय निर्माता तो वह परिस्थितिवश बन गये है। उन्होंने उर्दू साहित्य की जो सेवा की है, उसे जो शक्ति प्रदान की है उसका महत्व सभी विद्वानों ने हृदयङ्गम किया है। उनकी बहुत-सी रचनाएँ पुलिस की धाँधली से नष्ट हो गयी और इसका उनको बडा आघात लगा है। वह खुद लिखते है—"एक लेखक के लिए इससे बढकर और कोई मुसीबत नही हो सकती कि एक बार उसने जो चीज लिख दी है, वही उसे फिर से लिखनी पडे। वह हजारो नये पृष्ठ लिख सकता है, लेकिन जो चीज वह एक बार लिख चुका है और वह खो गयी है तो उसीको यदि फिर लिखने बैठता है तब उसकी लेखनी

कुण्ठित हो जाती है '' फिर भी जब-जब समय मिलता है वह कुछ न कुछ लिखते ही रहते है।

अवश्य ही मौलाना में कमियाँ है—दुर्बलताएँ है। जब वह चिढ जाते है तो जल्द ठण्डे नही होते। उनके दृष्टिकोण पर मध्ययुगीन विचारधाराओ की छाप है। उनमें गान्धी के हृदय का सन्त नही है, वह एक प्रबल योद्धा है, जिस चीज को ले उसे दिल से लेनेवाले और जिस चीज का तिरस्कार करें उसे फिर पैरों से कुचल देनेवाले। कूटनीतिज्ञ की सजग विस्मृति उनमें है, पर महापुरुष की क्षमा उनमे नही।

पर इसी कारण उनके गुण भी गुण है। ये बातें उनके गुणो को विरोधी पृष्ठभूमि पर यो सजाती है जैसे कण्ट्रास्ट ऑफ़ कलर *(रङ्गों की भिन्नता)* से चित्र खिल उठता है। इस पृष्ठभूमि पर मौलाना भारतीय राष्ट्रीयता के एक शक्तिमान व्यक्तित्व के रूप में, अपनी प्रबल बौद्धिक सम्पदा और उत्कट त्याग को लेकर, हमारे सामने आते है।

असमान आय के दुष्परिणाम

श्री शोभालाल गुप्त

1 प्राथमिक आवश्यकताओं की उपेक्षा

किसी भी गृहस्थ को सबसे पहले यह तय करना पडता है कि उसको किन किन चीजो की सबसे अधिक आवश्यकता है और कौन-सा काम वह बिना कष्ट उठाये कर सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि गृहस्थ को अपनी आवश्यकतानुसार चीजो का क्रम नियत कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, घर मे तो काफी भोजन भी न हो और घर की मालकिन इत्र की शीशी और नक़ली मोतियों की माला खरीदने में अपना सारा रुपया खर्च कर दे तो वह मिथ्याभिमानिनी, मूर्खा और कुगृहिणी कहलाएगी, किन्तु दूरदर्शी महिला केवल इतना ही कहेगी कि वह कुप्रबन्धिका है जिसे यह भी नही मालूम कि रुपया पास हो तो पहिले क्या खरीदना चाहिए। जिस स्त्री में यह समझने की भी शक्ति न हो कि पहिले भोजन, वस्त्र, मकान आदि की आवश्यकता होती है और इत्र की शीशी और नकली अथवा असली मोतियो की माला की, बाद में, वह गृहस्थी का भार ग्रहण करने योग्य नही है। हमारा यह मतलब नही कि सुन्दर चीजे उपयोगी नही होती। अपने उचित क्रम में वे बहुत उपयोगी और बिलकुल ठीक है, किन्तु उनका नम्बर पहिले नही आता। किसी बालक के लिए उसकी

धर्म-पुस्तक बहुत उपयोगी हो सकती है, किन्तु भूखे बालक को दूध-रोटी के बजाय धर्म-पुस्तक देना पागलपन होगा। स्त्री के शरीर की अपेक्षा उसका मन अधिक आश्चर्यजनक होता है, किन्तु यदि शरीर को भोजन न दिया जाय तो मन कैसे टिक सकता है? इसके विपरीत यदि उसके शरीर को भोजन दे तो मन अपनी और शरीर दोना की चिंता कर लेगा। भोजन का नम्बर पहिला है।

हमको समस्त देश को एक बडा घर और सारी जाति को एक बडा कुटुम्ब मानकर चलना चाहिए (वास्तव में यह है भी ऐसा ही) और तब हमे उसका प्रबन्ध करना चाहिए। हमको क्या दिखायी देता है? सर्वत्र अधभूखे बालक फटे-टूटे कपडे पहिने गन्दे घरो में पडे है। जो रुपया उनको योग्य भोजन, वस्त्र और मकान देने में ख़र्च होना चाहिए, वही लाखों की तादाद में इत्र की शीशियों, मोतियो की मालाओ, पालतू कुत्तो, मोटर गाडियो और हर तरह के व्यर्थ कामो में खर्च होता है। इंग्लैण्ड में एक बहिन के पास केवल एक फटा-टूटा जूता है, सर्दी के मारे उसकी नाक सदा बहती रहती है, उसको पोछने के लिए रूमाल का एक चिथडा भी उसके पास नही है। दूसरी के पास चालीसों जोडे जूतियाँ और दर्जनों रूमाल है। एक ओर एक छोटा भाई है जो पैसे के चनो पर गुजर करता है और अधिक के लिए बराबर माँगता रहता है और इस तरह अपनी माँ के दिल को तोड़ता रहता है और उसके धैर्य को थका देता है। दूसरी ओर

एक मोटा भाई है जो एक बढ़िया होटल मे प्रात काल के भोजन पर पाँच-छ गिन्नियाँ खर्च कर देता है, शाम को रात्रि-क्लब में खाता है और डाक्टर की दवा लेता कारण, वह बहुत अधिक खाता है।

यह अत्यन्त बुरी अर्थ-व्यवस्था है जब विचारहीन लोगो से इसका कारण पूछा जाता है तो वे कहते है—"ओह, चालीस जोडे जूतियाँ रखनेवाली महिला और रात्रि-क्लब मे शराब पीनेवाले आदमी को उनके पिता द्वारा रुपया मिला है। यह रुपया उसने रबड के सट्टे मे कमाया था। और फटे-टूटे जूतेवाली लडकी और अपनी माँ के हाथो मार खानेवाला उत्पाती लडका दोनो मजदूर मुहल्ले के केवल कूडा-कर्कट मात्र है।" यह सही है, किन्तु जो जाति अपने बच्चों के लिए पर्याप्त दूध का प्रबन्ध करने से पहिले ही शेम्पेन शराब पर रुपया खर्च करती है अथवा जब काफी पोषण न मिलने के कारण हजारो ही बच्चे काल के ग्रास बन रहे हो, तब भी सिलिहेम, अलसेशियन और पेकिंगी कुत्तों को बढ़िया-बढ़िया भोजन देती है, वह निस्सदेह अव्यवस्थित, हतबुद्धि, मिथ्याभिमानिनी, और मूर्ख है। उसका पतन निश्चित है।

किन्तु इन सब हानिकारक बेहूदगियो का कारण क्या है? किसी समझदार आदमी ने कभी भी इनकी इच्छा नही की। बात यह है कि जब कभी दूसरो की अपेक्षा कुछ कुटुम्ब बहुत अधिक धनी होंगे तभी इन बुराइयो का जन्म होना निश्चित है। धनी

आदमी जब पति और पिता बनकर स्त्री को अपने साथ घसीटता है तब वह भी यही करता है। तब अन्य लोगो की भाँति वह भी पहिले भोजन, वस्त्र और मकान का प्रबन्ध करता है। गरीब आदमी भी यही करता है। किन्तु अपनी शक्ति-भर खर्च कर डालने पर भी गरीब आदमी की ये आवश्यकताएँ पूर्णत· पूरी नही होती, भोजन पूरा नही पडता, कपडे पुराने और मैले रहते है, रहने के लिए एक कोठरी या उसका कुछ भाग ही मिल पाता है और वह भी अस्वास्थ्यकर होता है। दूसरी ओर धनी आदमी शानदार कोठी में रहता है, खूब खाता और पहनता है। फिर भी उसके पास अपनी रुचियो और कल्पनाओ को सन्तुष्ट करने तथा दुनियाँ में बडप्पन जमाने के लिए काफी रुपया बच रहता है। गरीब आदमी कहता है—"मुझे रोटी और कपडे तथा अपने कुटुम्ब के लिए अधिक अच्छा घर चाहिए, किन्तु मेरे पास उसके लिए खर्च करने को कुछ नही है।" धनी आदमी कहता है—"मुझे कई मोटरें, जल-नौकाएँ, पत्नी और पुत्रो के लिए हीरे-मोती और घने जगल में एक शिकारगाह चाहिए।" स्वभावत व्यवसायी मोटरे और जल-नौकाएँ बनाने में जुट पडते है, अफ्रीका में जाकर हीरे खुदवाते है, समुद्र की तह से मोती निकलवाते है और मिनटो में शिकारगाह खडी कर देते है। गरीब आदमी की ओर कोई ध्यान नही देता, जिसकी आवश्यकताएँ तात्कालिक होती है, किन्तु जिसकी जेबें खाली रहती है।

इसी बात को दूसरे शब्दों में यो कह सकते है, गरीब आदमी जिन चीजों का कमी अनुभव करता है उनको बनाने के लिए मजदूर लगाना चाहता है। वह चाहता है कि लोग पकाने, बुनने, सीने और मकान बनाने का काम करे। किन्तु पाक-शास्त्रियो और बुनकर मास्टरो को इतना रुपया नही दे सकता जिससे वे अपने अधीन काम करनेवालों को मजदूरी चुका सकें। उधर धनी आदमी अपनी पसन्द के काम करवाने के लिए खासी मजदूरी देता है। इस तरह की मजदूरी पानेवाले सब लोग कठोर परिश्रम क्यो न करते हो, किन्तु उसका फल यह होता है कि भूखो को भोजन मिलने के बजाय धनिको के धन मे ही वृद्धि होती है। वह श्रम उचित स्थान पर नही होता, व्यर्थ जाता है और देश को गरीब बनाये रखता है।

इस स्थिति के पक्ष में यह दलील नही दी जा सकती कि धनी लोगो को काम देते है। काम देने में कोई विशेषता नही है। हत्यारा फॉसी लटकानेवाले को काम देता है और मोटर चलाने-वाला बच्चो पर मोटर चलाकर डोली ले जानेवाले को, डाक्टर को कफन बनानेवाले को, पादरी को, शोकसूचक पोशाक सीनेवाले को, गाडी खीचनेवाले को, क़ब्र खोदनेवाले को। सक्षेप में इतने सारे योग्य लोगो को काम देता है कि जब वह आत्महत्या करके मर जाता है तो सार्वजनिक हितसाधक के नाते उसकी मूर्ति खड़ी न करना कृतघ्नता की निशानी प्रतीत होती है। यदि रुपये

का समान विभाजन हो तो जिस रुपये से धनी गलत काम करवाते है, उससे योग्य काम करवाया जा सकेगा।

यदि भविष्य की साधारण स्त्रियाँ आज की उच्च से उच्च धनी महिलाओ से अच्छी न होगी तो वह सुधार हमारे घोर असन्तोष का कारण होगा और वह असन्तोष होगा दैवी असन्तोष! अत हम विचार करे कि मानव प्राणी होने की हैसियत से लोगो के चरित्र पर समान आय का क्या असर होगा।

कुछ लोग कहते है कि यदि हम लोग अधिक अच्छे आदमी चाहते है तो जिस तरह पश्चिम में उत्तम घोडो की और उत्तम सुअरों की नस्ल पैदा करते है, उसी तरह आदमियो की भी पैदा करें। निस्सन्देह हमको ऐसा करना चाहिए, किन्तु इसमें दो कठिनाइयाँ है। पहिले तो जैसे हम गाय-बैलों, घोडे-घोडियों, सुअर-सुअरियो की जोडियाँ मिलाते है, वैसे स्त्री-पुरुषों की जोडियाँ बिना उनको इस विषय में चुनाव की स्वतंत्रता दिये नही मिला सकते। दूसरे, यदि मिला भी सकें तो जोडियाँ कैसे मिलानी चाहिए, इसका हमें ज्ञान न होगा। कारण, हमको पता न होगा कि हम किस तरह के आदमी पैदा करना चाहते है। किसी घोडे या सुअर का मामला बहुत सीधा है। दौड़ के लिए बहुत तेज और बोझा खीचने के लिए बहुत मजबूत घोडे की जरूरत होती है। और सुअर के लिए तो इतना ही चाहिए कि वह खूब मोटा हो। यह सब सीधा होते हुए भी इन जानवरो की नस्ल

पैदा करनेवाले किसीके भी मुँह से हम सुन सकते है कि चाहे जितना सावधान रहने पर भी बहुत बार वाछनीय परिणाम नही निकलता।

यदि हम स्वय भी सोचें कि हमें कैसा बालक चाहिए तो लड़के या लडकी की पसन्द करने के अलावा उसी क्षण हमें स्वीकार करना पडेगा कि हमको और कुछ मालूम नही। अधिक से अधिक हम कुछ प्रकार गिना सकते है जो हमें नही चाहिए। उदाहरण के लिए हमको लूले-लँगडे, गूगे-बहरे, अन्धे, नामर्द, मिरगी के रोगी और शराबी बच्चे नही चाहिए। किन्तु हमको यह नही मालूम कि ऐसे बच्चो की उत्पत्ति रोकी कैसे जाय। कारण, इन अभागों के माता-पिताओं में बहुधा कोई दृश्य खराबी नही होती। अब जो हमें नही चाहिए उनको छोडकर जो हमें चाहिए हम उनपर आयें। हम कह सकते है कि हमें अच्छे बालक चाहिए। किन्तु अच्छे बालक की परिभाषा यह है कि वह अपने माता-पिता को कोई कष्ट न देता हो। और, कुछ बहुत उपयोगी स्त्री-पुरुष बालकपन में बहुत उत्पाती रहे है। क्रियाशील, बुद्धिशाली, उद्यमी और बहादुर लडके अपने माता-पिताओं की दृष्टि में हमेशा शरारती होते है, और प्रतिभावान पुरुष मरने से पहिले क्वचित् ही पसन्द किये जाते है। हमने सुकरात को विष पिलाया, ईसा को सूली दी और जोन आफ आर्क को लोगो की हर्षध्वनि के बीच जीवित जला दिया, क्योकि जिम्मेदार विधानवेत्ताओं और पादरियो द्वारा

मुकदमे करवाने के बाद हमने तय किया कि वे इतने दुष्ट है कि उन्हें जीवित नही रहने दिया जा सकता। इन सबको ध्यान में रखते हुए हम शायद ही अच्छाई के निर्णायक हो सकते है और उसके लिए हृदय मे सच्चा प्रेम रख सकते है।

यदि हम जाति को उन्नत बनाने के लिए पति-पत्नी चुनने का काम राजनैतिक सत्ता के हाथ में सौपने को तैयार हो भी जायें तो अधिकारियो की कठिनाइयो का पार न होगा। वे मोटे तौर पर इस तरह शुरू कर सकते है कि क्षय, पागलपन, गर्मी-सुजाक, या मादक द्रव्यो की जिन लोगो को जरा भी छूत लग गयी तो उन्हें शादी न करने दें। किन्तु आज करीब-करीब कोई कुटुम्ब ऐसा नही मिलेगा जो इन रोगो से सर्वथा मुक्त हो, फलत. किसीका भी विवाह न हो सकेगा। और नैतिक श्रेष्ठता का वे कौन-सा नमूना वांछनीय समझेंगे? दुनियाँ मे भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्य बसते है। एक सरकारी विभाग यह मालूम करने की कोशिश करे कि मनुष्यों के कितने प्रकार होने चाहिए और फिर यथायोग्य शादियों द्वारा उनको पैदा कराये, यह खयाल मनोरंजक तो अवश्य है, किन्तु व्यावहारिक नहीं है। सिवा इसके कि लोगो को अपनी जोडियाँ आप बना लेने दी जायँ और सत्परिणाम के लिए प्रकृति पर भरोसा किया जाय, इसका और कोई उपाय नही है।

आजकल पश्चिमी देशों में जब जोडी चुनने का प्रसग आता है तो हर एक कितनी पसन्द से काम लेता है? पहली ही

दृष्टि में प्रेमासक्त करके प्रकृति किसी स्त्री को उसका ऐसा जोडीदार बता दे सकती है जो उसके लिए सर्वश्रेष्ठ हो, किन्तु यदि स्त्री के पिता और जोडीदार की आय में समानता न हो तो जोडीदार स्त्री के वर्ग से बाहर हो जाता है, सम्पत्ति के हिसाब से नीचे या ऊँचे वर्ग में चला जाता है और उसको नही पा सकता। स्त्री अपनी पसन्द के पुरुष के साथ विवाह नही कर सकती, बल्कि जो मिल सके उसके ही साथ उसे शादी करनी पडती है और बहुधा यह पुरुष उसकी पसन्द का ही पुरुष नही होता।

पुरुष की भी यही दशा है। लोग जानते है कि प्रेम के बजाय रुपये या सामाजिक पद के लिए विवाह करना अप्राकृतिक है। फिर भी वे रुपये या सामाजिक पद-प्रतिष्ठा या दोनो ही के लिए विवाह करते है। कोई स्त्री भंगी के साथ शादी नही कर सकती और उमराव उसके साथ शादी नही करेगा, क्योकि उनके कुटुम्बियो की और उनकी आदतें और रहन-सहन के ढग समान नही होते और भिन्न आचार-विचारो के लोग एक साथ नही रह सकते, आय की भिन्नता के कारण ही आचार-विचार की भिन्नता पैदा होती है। स्त्रियाँ प्राय. अपनी पसन्द के पति नही पा सकती और इसलिए जो उपलभ्य हो, अन्त में उसीके साथ विवाह कर लेने को मजबूर होती हैं।

ऐसी परिस्थिति में अच्छी नस्ल कभी पैदा नही की जा सकती। यदि प्रत्येक कुटुम्ब के पालन-पोषण में बराबर रुपया

ख़र्च हो तो हमारे आचार-विचार, सस्कृति और रुचियाँ सब समान होगे। तब रुपये के लिए कोई विवाह न करेगा, कारण उस समय विवाह में न तो रुपये का लाभ होगा न हानि। अपने प्रियतम के दरिद्र होने के कारण ही किसी स्त्री को उससे विरत होने की आवश्यकता न पडेगी और न उस कारण उसकी कोई उपेक्षा ही कर सकेगा। तब दिल-मिले जोडे बन सकेंगे और उनसे अभीष्ट सन्तानें पैदा हो सकेगी।

2 न्याय में पक्षपात

असमान आय के कारण सबको निष्पक्ष न्याय भी सुलभ नही होता। यद्यपि क़ानूनी न्याय का पहिला सिद्धान्त ही यह है कि व्यक्तियो का पक्षपात नही किया जाएगा। मज़दूर और करोडपति के बीच निष्पक्ष होकर न्याय-तुला पकडी जाएगी। न्यायाधीश और उसके सहवर्गी पंचों के निर्णय के अतिरिक्त और किसी तरह व्यक्तियो की जिन्दगी या स्वाधीनता नही छीनी जाएगी। किन्तु इग्लैण्ड में तथा अन्यत्र भी आजकल मजदूरों का न्याय मजदूर-पंच नही करते, कर-दाताओं के पंच उनका न्याय करते है, जिनके दिलो में वर्गीय पक्षपात की भावना काम करती रहती है। कारण उनको बडी आय होती है और इसलिए वे अपने आपको श्रेष्ठ समझते है। धनी आदमियों का साधारण पच न्याय करते है तो उन्हें भी उन पचो की वर्गीय भावना और ईर्ष्या का सामना करना होता है। इसीलिए यह आम कहावत

चल पड़ी है, 'धनी के लिए एक क़ानून है और गरीब के लिए दूसरा।' किन्तु मूलतः यह ठीक नहीं है, क़ानून सबके लिए एक ही है। लोगों की आयों में परिवर्तन होना चाहिए। दीवानी क़ानून के द्वारा समझौतों का पालन कराया जाता है और मान-हानि तथा चोट पहुँचाने के मामलों का निपटारा होता है, किन्तु उस कानून के द्वारा कार्रवाई करवाने के लिए इतने कानूनी ज्ञान और वाक्‌चातुर्य की आवश्यकता होती है कि इन गुणों से हीन साधारण व्यक्ति वकीलों को नियुक्त करके ही उसका लाभ उठा सकता है। हिन्दुस्तान जैसे देश में जहाँ निर्धनता हद-दर्जे की है गरीब लोग न्याय प्राप्त करने में प्राय सफल नहीं होते। उनके पास अपने वकीलों को देने के लिए बड़ी-बड़ी रक़में नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि धनी आदमी की माँगें पूरी न हों तो वह गरीब को अदालत में जाने की धमकी देकर डरा सकता है। वह गरीब के अधिकारों की उपेक्षा कर सकता है और उसको कह सकता है कि यदि वह असन्तुष्ट है तो उसके खिलाफ अदालती कार्रवाई कर सकता है। वह अच्छी तरह जानता है कि गरीब को दरिद्रता और अज्ञान के कारण क़ानूनी सलाह और सरक्षण नहीं मिल सकेंगे।

यद्यपि फौजदारी कानून के अनुसार कार्रवाई कराने के लिए पुलिस वादी-पक्ष से कुछ लेती नहीं है, किन्तु फिर भी धनी क़ैदियों के साथ पक्षपात होता ही है। वे बहुत सारा रुपया

खर्च करके अपनी वकालत कराने के लिए प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वकील-बैरिस्टर नियुक्त कर सकते है। देश में से ही नही, दुनियाँ-भर में गवाहो की खोज कर सकते है, गवाहो को डरा या ललचा सकते है और अपील के प्रत्येक सम्भव प्रकार और देर करने के उपाय शेष नही छोडते। अमेरिका के धनिको के ऐसे अनेकों उदाहरण है जो यदि गरीब होते तो कभी के फाँसी पर लटका-कर या विद्युत-द्वारा मार डाले गये होते, किंतु ऐसे आदमी तो कितने ही हर एक देश की जेलो में पडे होगे जिनके पास यदि खर्च करने को कुछ सौ रुपया होते तो वे छोड़ दिये गये होते।

क़ानून मूलत भी विशुद्ध नही है। कारण, वे धनियों द्वारा बनाये गये है। (हिन्दुस्तान में उनका निर्माण अहिन्दुस्तानियों द्वारा हुआ है, यह अन्य देशो की अपेक्षा विशेष है।) इंग्लैण्ड में कहने के लिए सब वयस्क स्त्री-पुरुष पार्लिमेण्ट में चुने जा सकते है और यदि काफी लोगों के मत प्राप्त कर सकें तो क़ानून भी बना सकते है। पार्लिमेण्ट के सदस्यो को अब वेतन मिलता है और चुनाव के कुछ खर्च भी सार्वजनिक कोष से दे दिये जाते है। किन्तु उम्मीदवार को 150 गिन्नियाँ तो शुरू में ही जमा करनी होती है और 500 से लेकर 1000 तक उसके बाद चुनाव लडने के लिए खर्च करनी होती है। फिर यदि उसे सफलता मिल भी जाय तो पार्लिमेण्ट के सदस्य को लन्दन में जैसा जीवन

बिताना होता है उसके लिए 400 गिन्नी सालाना तनख्वाह काफी नहीं होती। इसमें पेन्शन का तो सवाल ही नहीं है, भविष्य की कोई आशा भी नहीं रहती है। अगले चुनाव में हार हुई कि वेतन मिलना बन्द हुआ। यही कारण है कि इंग्लैण्ड में गरीबों का 90 प्रतिशत बहुमत होने पर भी पार्लिमेण्ट में उनके प्रतिनिधि अल्पमत में है, क्योंकि इन सुविधाओं से भी धनी ही लाभ उठा सकते है।

जो आदमी चीजों को काम में लाता है या दूसरो की सेवा तो ग्रहण करता है, किंतु स्वयं उतनी ही चीजें पैदा नहीं करता या उसी परिमाण में दूसरो की उतनी सेवा नहीं करता, वह देश की उतनी ही हानि करता है जितनी एक चोर। वास्तव में चोरी का यही अर्थ है। हम धनी लोगो को, क्योंकि वे धनी है केवल इसलिए चोरी करने, डाका डालने, हत्या करने, लड़कियाँ उड़ाने, मकानो में घुस जाने, जल या थल पर डुबाने, जलाने और नष्ट करने की छुट्टी नहीं देते। किंतु हम उनके आलस्य को सहन करते है जो एक ही वर्ष में इतना नुकसान कर देता है जितना क़ानून द्वारा दण्डनीय दुनियाँ के सब अपराध दस साल में भी नहीं कर पाते। धनी लोग अपने पार्लिमेण्टी बहुमत द्वारा सेंध, जालसाजी, ख़यानत, गॅठकटी, उठाईगीरी, डकैती और चोरी जैसे अपराधो के लिए घोर कठोरता से दण्ड देते है, किन्तु धनिकों के आलस्य पर कुछ नहीं बोलते। उलटे, वे उसे जीवन का

अत्यन्त सम्मानपूर्ण प्रकार मानते है और आजीविका के लिए श्रम करने को हलकापन और अपमान की निशानी समझते है। यह प्रकृति के क्रम को उलट देने और 'बुराई, तू मेरी भलाई हो जा !' को राष्ट्रीय मत्र मान लेने के अतिरिक्त और कुछ नही है।

जब तक असमान आय रहेगी तब तक न्याय में पक्षपात भी रहेगा, क्योंकि क़ानून अनिवार्यत धनिको द्वारा बनाये जाएँगे। सब लोगों को काम करना पड़े, भला यह कानून धनी लोग कैसे बना सकते है ?

3 आलसियों की सृष्टि

पश्चिमी देशों में जो लोग नये-नये धनी होते है उनके बच्चे महा आलसी होते है। जिसे वहाँ उच्च जीवन कहा जाता है, वह पुराने धनिको के लिए एक सस्कृत कला है, जिसे सीखने के लिए कठोर उम्मेदवारी की जरूरत होती है। किन्तु उन अभागे भाग्यवानों को न तो शारीरिक व्यायामो की शिक्षा मिली होती है, और न वे पुराने धनियो की सामाजिक रीति-नीति से ही परिचित होते है। वे मोटरों में बैठकर होटलो के चक्कर काटा करते हैं। उनका अर्थहीन भटकना, चाकलेटी मलाई खाते फिरना, सिगरेट फूँकना और पंचमेली शराब पीना, मूर्खतापूर्ण उपन्यासो और सचित्र समाचारपत्रो से मनोरंजन करना सचमुच दयनीय होता है।

हिन्दुस्तान में भी रईसों के लडके कुत्ते मारते फिरते है। ताश, शतरज खेलने में अपना वक्त गुजारते है। कितने ही

जुए मे बर्बाद हो जाते है। रईसो को भी पडे-पडे खाने और भोग-विलास मे लिप्त रहने के सिवा और कोई काम नही होता। उनका काम उनके मुनीम और कारिन्दे करते है। यही कारण है कि उनकी तोंदे बढ जाती है और वे हमेशा बीमार रहते है।

किन्तु ऐसे धनी भी होते है जो अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करते है। उन्हे पुन स्वस्थ रहने के लिए आराम लेने की जरूरत आ पडती है। जो लोग जीवन को एक लम्बी छुट्टी बनाने की कोशिश करते है, उन्हें जीवन से भी छुट्टी लेने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। आलस्य में जीवन बिताना इतना स्वाभाविक और भारस्वरूप होता है कि पश्चिमी देशो मे आलसी धनिको की दुनियाँ में भी अत्यन्त थका देनेवाली हलचले बराबर होती रहती है। वहाँ की लाइब्रेरियो में ऐसी पुरानी पुस्तकें मिल सकती है जिनमे उनके धनी लेखको या लेखिकाओ ने अपने राग-रग के दैनिक कार्यक्रम का उल्लेख कर धनिको के आलसी होने के आरोप का निराकरण किया है। किन्तु उस राग-रग का शिकार होने के बजाय तो सडक पर झाडू लगाना कही अधिक अच्छा है।

इसके अलावा कुछ धनी आवश्यक सार्वजनिक कार्य भी करते है। यदि शासक-वर्ग को राजनैतिक सत्ता अपने हाथ में रखनी हो तो उसे वह काम भी करना ही चाहिए। उसके लिए वेतन नही दिया जाता और यदि दिया भी जाता है तो इतना कम

कि सम्पत्तिवान लोगो के अलावा उसको और कोई नही कर पाता। इङ्गलैण्ड में उच्च विभागीय सिविल सर्विस की परीक्षाएँ ऐसी रखी जाती है कि केवल बहुव्यय-साध्य शिक्षा पानेवाले व्यक्ति ही उनको पास कर सकते है। इन उपायो द्वारा वह काम धनिको के हाथों में रखा जाता है। पार्लिमेण्टी पदों पर मुख्यत धनी लोगो के होते हुए भी जब कभी उन पदों के लिए काफी वेतन निश्चित करने का प्रयत्न किया गया तो उन्होंने उसका विरोध किया। सेना मे भी उन्होंने ऐसी स्थिति पैदा करने की भरसक कोशिश की कि जिसमें एक अफसर अपने वेतन पर निर्वाह न कर सके। इस तरह वे अपने वर्ग के आलसी बने रहने के अधिकार की रक्षा के लिए पार्लिमेण्ट, राजनैतिक विभाग, सेना, अदालतों और स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओ में काम करते है। इस प्रकार काम करनेवाले धनिको को ठीक अर्थों में आलसी धनिक नही कहा जा सकता, किन्तु सार्वजनिक हित की दृष्टि से यह कही अधिक अच्छा होगा कि वे अपने वर्ग के अधिकांश धनिको की भाति राग-रंग में अपना समय बितावें और शासन का काम उन सुवेतनभोगी कर्मचारियों और मन्त्रियों पर छोड दें जिनके और जनसाधारण के हित समान है।

पश्चिमी देशों में इस आलसी वर्ग की बहुत-सी स्त्रियाँ आजकल सतति-नियमन के अप्राकृतिक उपायो का आश्रय लेती है। किन्तु उनका उद्देश्य बच्चो की संख्या और उत्पत्ति के समय का नियमन करना नही होता। वे तो बच्चे ही पैदा करना नही

चाहती। होटलों में खाती-पीती है या अपने घरों का प्रबन्ध अन्य गृह-प्रबंधिकाओ से कराती है। वे रसोई-घर और बच्चो के लालन-पालन के लिए उतनी ही अनुपयुक्त होती है जितने अनुपयुक्त हम इन कार्यों के लिए पुरुषो को समझते है। वे अपने अनार्जित धन को भोग-विलास और व्यर्थ के कामो में बुरी तरह खर्च करती है।

तो इस आलसी वर्ग में सच्चे आलसियों के अलावा वे लोग भी शामिल है जो श्रम तो करते है, किन्तु उससे कोई उपयोगी चीज उत्पन्न नही होती। वे कुछ न करने के बजाय कुछ न करने के लिए अपने को योग्य बनाये रखने के लिए सदा कुछ न कुछ करते रहते है और उससे दुखी भी रहते है।

4. धर्म-सस्थाओं, स्कूलों और अखबारों का पतन

इग्लैण्ड में धनिकों ने पार्लिमेण्ट और अदालतो की भाँति गिरजों पर भी अपना अधिकार जमा लिया है। वहाँ पादरी ग्राम्य स्कूल में प्राय ईमानदारी और समानता का पाठ नही पढाता। वह केवल धनिकों के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखना सिखाता है और उस श्रद्धा-भक्ति को ही धर्म बताता है। वह जमीदार का मित्र होता है जो न्यायाधीश की भाँति धनिको की पार्लिमेण्ट द्वारा धनिको के हित में बने क़ानूनो का पालन कराता है और उन्हीको न्याय कहता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामवासियो का दोनो के प्रति आदर-भाव शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और वे उन्हें सशंक दृष्टि से

देखने लगते है। वे भले ही आदरपूर्वक उनके लिए टोप छूते और सिर झुकाते रहें, किन्तु वे एक दूसरे के साथ यह कानाफूसी करने से नही चूकते कि जमीदार गरीबो को चूसने और सतानेवाला है और पादरी पाखंडी है। बडे दिन के अवसर पर उपहार आदि देने मे जमीदार चाहे जितनी उदारता क्यो न दिखावे, किन्तु इसका उनपर कुछ असर नही होता। क्रान्तियो के दिनो मे ऐसे श्रद्धालु किसान ही जमीदारो की कोठियो और पादरियो के बगलो को जलाते है और मूर्तियो को खंडित करने, रगीन काच की खिडकियो को तोडने-फोडने और वाद्य-यंत्रो को नष्ट करने के लिए गिरजाघरो को दौड पडते है।

इग्लैण्ड के स्कूलो में यदि कोई शिक्षक विद्यार्थियों को अपने देश के प्रति उनके कर्तव्य के विषय में ऐसे प्रारम्भिक सत्य सिखाता है कि जो स्वस्थ वयस्क बिना व्यक्तिगत रूप से सेवा-कार्य किये समाज पर अपना बोझ डालते है उन्हें अपराधी मानकर निंदा और दंड का पात्र समझा जाय, तो उस शिक्षक को तुरन्त पद से हटा दिया जाता है और कभी-कभी उसपर अभियोग भी चलाया जाता है। इस प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयो में दी जानेवाली अत्यन्त गहन और तात्विक शिक्षा तक में यह भ्रष्टता घुस गयी है। विज्ञान का काम उन नीमहकीमी दवाओ का प्रचार करना हो गया है जो धनिकों की पूँजी से चलनेवाली कपनियो द्वारा गरीबो और अमीरो के रोगो के लिए तैयार की जाती है।

असल मे गरीबो को तो आवश्यकता है अच्छे भोजन, वस्त्रो और स्वच्छ मकानो की, और अमीरो को आवश्यकता है उपयोगी काम की। बस, दोनो इतने से ही स्वस्थ रह सकते है। अर्थ-विज्ञान सिखाता है कि गरीबो की मजदूरी नही बढाई जा सकती, आलसी धनिको के बिना पूँजी न रहेगी और बिना काम हम नष्ट हो जाएँगे। और यदि गरीब अधिक बच्चे पैदा न करे तो इस खराब से खराब दुनियाँ में सब ठीक हो जाएगा, किन्तु यह सब निर्लज्जतापूर्ण है।

साधन-सम्पन्न माता-पिता स्वभावत अपने बालको को जिसे हम शिक्षा कहते है उसे दिलाने का प्रबन्ध करते है, किन्तु उनके बच्चों को इतने सफेद झूठ सिखाये जाते है कि उनका झूठा ज्ञान जंगली लोगों के अशिक्षित स्वाभाविक ज्ञान से कही अधिक खतरनाक हो जाता है। भूतपूर्व कैसर ने जर्मन स्कूलो और विश्वविद्यालयो से उन सब शिक्षको को निकाल दिया था जिन्होने यह नही सिखाया कि इतिहास, विज्ञान और धर्म तीनो के अनुसार होहेनजोलर्न वश अर्थात् उसके ही धनी कुटुम्ब का शासन मानवजाति-भर के लिए सर्वश्रेष्ठ शासन है। किन्तु हमारे देश में ऐसे सफेद झूठ मूर्ख और भीरु अध्यापको द्वारा कितने ही सिखाये जाते है।

लोग समाचारपत्रो के आधार पर अपनी रायें इतनी अधिक स्थिर करते है कि यदि समाचारपत्र स्वतन्त्र हो तो स्कूलो के भ्रष्ट हो जाने की भी चिन्ता करने की जरूरत न रहे। किन्तु

समाचारपत्र स्वतन्त्र नही है। उनमें बहुत रुपया लगता है। अत वे धनिको के अधिकार में है। वे धनिकों के विज्ञापनों पर निर्भर रहते है। किन्तु जो स्वतन्त्र भी होते है उनके दरिद्र मालिक और सम्पादक धनिकों द्वारा खरीदे जा सकते है। उनमें से कोई ही धनिको के हितो के विरुद्ध कुछ छापता है। फल यह होता है कि दृढतम, अत्यन्त स्वतन्त्र प्रकृति और मौलिक आदमी ही झूठे सिद्धान्तो के उस ढेर से अपने आपको बचा सकते है जो अदालतों, गिरजों, स्कूलो और समाचारपत्रों की संयुक्त और सतत सूचनाओं और प्रेरणाओ द्वारा उनके दिलो पर जमता रहता है। हमको गलत रास्ते पर चलाया जाता है, ताकि हम गुलाम बने रहें, विद्रोही न हो जायें।

कुछ हद तक धनिकों के हितो और सर्वसाधारण के हितों में कोई अन्तर नही होता है; इसलिए बहुत कुछ तो सत्य ही होता है, किन्तु उसके साथ झूठी शिक्षा भी मिला दी जाती है। फलत. इस प्रकार सत्य के साथ झूठ मिला होने के कारण इस धोखे का पता चलाना और उसपर विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है।

5. सहने का कारण

सवाल उठ सकता है कि जब ऐसा है तो धनी सहें तो सहें, किन्तु गरीब भी यह सब क्यों सहन करते है और इसे पूर्ण लाभदायक समाजनीति मानकर इसका उत्कटतापूर्वक समर्थन

करते है। किन्तु वह समर्थन सर्वसम्मत नही होता, लोकहितैषी सुधारक और असहनीय अत्याचारों द्वारा पीडित व्यक्ति उसपर एक या दूसरी जगह आक्रमण करते ही रहते है। यदि सामूहिक दृष्टि से उसपर विचार किया जाय तो कहना होगा कि क़ानून, धर्म, शिक्षा और लोकमत को इतना अधिक भ्रष्ट और मिथ्या बना दिया गया है कि साधारण बुद्धि के लोग इस पद्धति से होनेवाले नगण्य लाभों को तो आसानी से समझ लेते है, किंतु उसके वास्तविक स्वरूप को नही समझ पाते। जो आदमी धनिको के घरो में नौकर रहते है वे उन्हें दयालू और सत्पुरुष समझते है, क्योकि वे अपने धनी मालिकों से कभी-कभी वेतन के अलावा कुछ इनाम भी पाते रहते है। कोई धनी यश की आकाक्षा से यदि अपने पडोसी मध्यम-वर्ग के लोगो को कोई भोज दे देता है, या उनके लिए कोई पुस्तकालय खोल देता है, या कुआँ-बावडी बनवा देता है, या एक धर्मशाला खडी कर देता है, या किसी स्कूल या अन्य सार्वजनिक संस्था के लिए कुछ धन दे देता है तो धनिकों की उस हृदयहीनता, अनुदारता और शोषक वृत्ति को भूलकर (जिनसे कि धनी धनी बनते है) अपरिचित लोग कहते है कि वे बड़े दयालु है, बडे दानी है, बड़े उदार है।

धनिको के राग-रंगो से शहरो और क़सबों में जो चुहल होती है, लोग उसमें बखुशी शामिल होते है और जगह-जगह उसकी चर्चा करते है। वहाँ धनिको का प्रचुर व्यय सदा लोकप्रिय

होता है। धनी घराना मे काम करनेवाले नौकर अपने मालिको की इन फिजूलखर्चियो पर और उनके यहाँ अपने नौकर होने पर गर्व करते है और बेचारे भोले-भाले गरीब लोग उनके इन राग-रगो की चकाचौंध मे असलियत को देख नही पाते। वे नही समझ सकते कि इन धनिको की फिजूलखर्ची और शौकीनी को पूरा करने के लिए उनमे से कितनो ही के मुँह के द छीन लिये जाते है और उनके शरीरो पर के चिथडे उतार जाते है। नियम यह है कि जब तक सब लोगो को मनुष्योचित खाना न मिल जाय तब तक कोई इस तरह भोजन बर्बाद न करे और जब तक सबके शरीर न ढँक जायँ तब तक कोई हीरे, मोती और जेवर न पहिने। धनी लोग अपने को अन्य लोगो से सुखी देखकर सन्तोष मान सकते है, किन्तु वे यह नही कह सकते कि गरीबों के दुखो के असह्य हो जाने पर उनके हृदयो की आग कभी नही धधक उठेगी।

हमारे इस नीति के साथ चिपटे रहने का एक कारण यह भी है कि हम किसी मौके से धनी बन जाने के स्वप्न देखा करते है और सोचते है कि तब हम भी ऐसा ही करेंगे। हम अपने एक अनिश्चित लाभ की तृष्णा में उन लाखो हानियो को भूल जाते है जो लाखो-करोडो अभागों को उठानी होती है।

कुछ गरीब लोग ऐसे भी होते है जो आशा करते है कि उनके बच्चे शिक्षा पाकर किन्हीं ऊँचे ओहदो पर नौकर हो जाएँगे

और दरिद्रता की कीचड से निकल सकेगे। जैसे-तैसे उन्हे पढाते है या उनके कुछ बच्चे छात्रवृत्तियाँ प्राप्त कर लेते है और पढ-लिखकर बडे हो जाते है। किन्तु ऐसे उदाहरण अपवाद ही होते है। वे सामान्य लोगो को आशा का कोई सन्देश नही देते और दुनियाँ में सामान्य लोग ही ज्यादा रहते है। साधारण धनी का बच्चा और साधारण गरीब का बच्चा दोनो समान स्वस्थ मस्तिष्क लेकर जन्म ले सकते है, किन्तु युवा होते-होते एक का मस्तिष्क शिक्षा मिलने से विकसित हो चुकता है, वह उससे योग्यता का कोई भी काम कर सकता है। किन्तु दूसरे को कोई ऐसी नौकरी भी नही मिल सकती कि वह सुसस्कृत मनुष्यो के सम्पर्क में भी रह सके। इस तरह देश की बहुत-सी मस्तिष्क-शक्ति नष्ट होती है। यह ठीक है कि अच्छे मस्तिष्क सभी को नही मिलते, किन्तु वे थोडे-से धनिको में से जितने बच्चो को मिलते है उनसे कई गुने अधिक बच्चो को गरीबो में से मिलते है, क्योकि वे धनिको की अपेक्षा कई गुने है, किन्तु आय की असमानता के कारण उनका विकास नही हो पाता। परिणाम यह होता है कि योग्यता के सारे कामो मे उनकी जगह बिना योग्य-अयोग्य का खयाल किये धनिको को ही भर दिया जाता है, जो गरीबो पर हुक्म चलाने की आदत सीखे होते है।

'समाजवाद : पूँजीवाद' से

कर्म और वाणी

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र

महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ, ये दोनो ही इस युग के महामानव है। भारतवर्ष का यह परम सौभाग्य है कि उसने एक ही समय मे इन दो महापुरुषो को जन्म दिया। दोनो ही युगपुरुष के रूप में इस देश में अवतीर्ण हुए और अपनी जीवन व्यापी साधना एवं लीलाओ द्वारा अपनी जन्मभूमि को धन्य बनाया। विधाता का यह निष्ठुर परिहास ही समझना चाहिए कि जो युग भारतवर्ष के लिए उसका घोर अधःपतन का युग था, जिस युग में वह अपनी स्वाधीनता को खोकर अपने संपूर्ण गौरव एवं महिमा से वञ्चित हो चुका था और सारे संसार की दृष्टि में हेय, तुच्छ एवं दयनीय समझा जाता था, उस युग में उसने इन दो मुक्त आत्माओ को यहाँ जन्म दिया। यह सच है कि दोनो की जीवन-धाराएँ दो विभिन्न दिशाओं में प्रवर्तित हुईं, दोनो के कर्मक्षेत्र भिन्न-भिन्न थे, जगत् एवं जीवन को देखने की दृष्टिभंगी भी दोनो की भिन्न-भिन्न थी, फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि दोनो के क्रियाकलाप में कितनी निगूढ़ एकता थी और दोनो एक ही आदर्श के पूरक बनकर किस प्रकार अपनी साधना द्वारा उसे परिपूर्ण रूप देने में

आजीवन निरत रहे। दोनों की विचार दृष्टि एव चिन्तन-प्रणाली मे हमें भले ही विरोध दिखायी पडे, किन्तु दोनो ने अपने परस्पर के जीवन में एक दूसरे को अभिन्न रूप में ही समझा था और ग्रहण किया था। भारत की आत्मा को मूर्त रूप देने के लिए ही मानो ये दोनो ही एक दूसरे के कार्य की असमाप्ति को पूर्ण करने आये थे।

कवि क्रान्तदर्शी हुआ करते है। कहा गया है — "कवय किं न पश्यन्ति।" अर्थात् अखिल विश्व में ऐसा कोई भी स्थल नही, ऐसी कोई भी वस्तु नही, जहाँ कवि की अन्तर्भेदिनी दृष्टि न पड़े। वह दूर भविष्य की ओर निक्षेप करके अनागत घटनाओं का पूर्वपरिचय पहले ही पा जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम युग में जब भिक्षुक बनकर हम अपने विदेशी प्रभुओ के हृदय को आवेदन-निवेदन द्वारा द्रवित करने के प्रयास में लगे हुए थे, जब अपने अधिकारो को प्राप्त करने के संग्राम में एकमात्र आवेदन ही हमारा अस्त्र था और हममें किसी प्रकार का आत्मप्रत्यय एवं आत्माभिमान नही रह गया था, ऐसे समय में ही कवि रवीन्द्रनाथ ने एक भावी राष्ट्रनेता एव देशगुरु का स्वप्न देखा था। कैसा गुरु? जो भारतवर्ष की युग-युग से चली आती हुई परम्परा एव प्रतिभा का सवाहक एवं परिपोषक होगा और जो भारत की आत्मा बनकर उसीकी वाणी में बोलेगा। कवि ने आज से 55 साल पूर्व लिखा था—" हम लोगो के जो गुरु होगे

उन्हे सब प्रकार की प्रसिद्धि से दूर रहकर एक एकान्त आश्रम मे अज्ञातवास करते हुए कालनिपात करना होगा। परम धैर्य के साथ गम्भीर चिन्तन करते हुए भिन्न-भिन्न देशो के ज्ञान-विज्ञान द्वारा अपने व्यक्तित्व का गठन करना होगा। सारा देश एक अनिवार्य वेग से तथा अन्ध भाव से जिस आकर्षण की ओर दौडता चला जा रहा है उस आकर्षण से यत्नपूर्वक अपने को दूर रखकर परिष्कार एव सुस्पष्ट रूप में हिताहित-ज्ञान का अर्जन एव मार्जन करना होगा। इसके बाद जब वे अपने एकान्तवास से बाहर निकलकर हमारी चिरपरिचित भाषा में हमारा आह्वान करेगे और हमें आदेश देंगे, उस समय और चाहे कुछ भी न हो, किन्तु हम लोगो मे सहसा यह चैतन्योदय अवश्य होगा कि अब तक हम भ्रम मे पडे हुए थे, हम एक स्वप्न के वशवर्ती होकर आँख मूँदकर सकट-मार्ग पर चल रहे थे। वह हमारे पतन का युग था।

"हमारा वह गुरुदेव वर्तमान काल के उद्भ्रान्त कोलाहल के बीच नही मिलेगा। वह सम्मान नही चाहता, पद नही चाहता, अग्रेजी अखबारो में अपने नाम की रिपोर्ट नही चाहता। वह समस्त मत्तता से, मूढ जनस्रोत के आवर्त्त से अपने को यत्नपूर्वक बचाकर रखता है, किसी कानून-विशेष में सशोधन करके या किसी विशेष सभा-समिति में स्थान पाकर हम लोगो की किसी यथार्थ दुर्गति के दूर होने की आशा नही करता। वह एकान्त में शिक्षा प्राप्त कर रहा है और एकान्त में चिन्तन कर रहा है, अपने जीवन को

महोच्च आदर्श के आधार पर अविचलित भाव से उन्नत करके अपने चतुर्दिक की जन-मण्डली को अलक्ष्य आकर्षित कर रहा है। वह मानों चतुर्दिक का एक उदार बिम्बग्राही हृदय लेकर नीरव शोषण कर रहा है।"

कवि का यह स्वप्न सफल होकर ही रहा। गान्धीजी के रूप में भारत ने एक ऐसे राष्ट्रगुरु को प्राप्त किया जो भारत की आत्मा को पहचानते थे और उसके रोगों का ठीक-ठीक निदान कर सकते थे। उन्होंने कितनी सत्यनिष्ठा और कितनी सहृदयता के साथ स्वदेशवासियो को प्यार किया था! अपने देश की जनता के दोष एवं त्रुटियो तथा उनकी दुर्बलताओ से परिचित होते हुए भी कितना ममत्व था उनके हृदय में! उस जनता के लिए और उसकी सद्वृत्तियों पर कितना अडिग विश्वास था उन्हें! रवीन्द्र और गान्धी दोनों ही मानव-चरित्र के शुभ पक्ष में अविचलित विश्वास रखनेवाले थे और दोनो ने मानवता का जयगान किया है। रवीन्द्रनाथ की आप साहित्य या दर्शन-सम्बन्धी किसी भी कृति को उठा लीजिये, आपको सर्वत्र मानवता की प्रच्छन्न पुनीत धारा प्रवहित होती हुई दिखायी पड़ेगी। जिस तरह कवि की समस्त कृतियों का मूल उत्स उसका हार्दिक मानव-प्रेम है उसी प्रकार गान्धीजी की समस्त कर्म-प्रवृत्तियो के मूल मे आप मानव-प्रेम की शुभ प्रेरणा पायेंगे। रवीन्द्रनाथ ने अपने एक निबन्ध में लिखा है —"पशु-पक्षियों का चैतन्य विशेषत उनकी जीविका तक ही

सीमाबद्ध रहता है, मनुष्य का चैतन्य विश्व मे मुक्तिपथ की तैयारी करता है, विश्व मे अपने को प्रसारित करता है। साहित्य इसी कार्य के लिए एक प्रशस्त मार्ग है।" मनुष्य जिस तरह जीवित रहने के लिए विश्व से नाना प्रकार की वस्तुओ का अपहरण करके अपना प्रयोजन-साधन करता है, उसी तरह वह समग्र विश्व को अखण्ड रूप में देखकर उसे अपनाना चाहता है और इस प्रकार वह संसार के साथ भावयोग से मिलित होना चाहता है। इस मिलनेच्छा से ही साहित्य की उत्पत्ति होती है। यह मिलन-तत्व साहित्य का मूल या मर्म-सत्य है। इस मिलन या सत्य से ही साहित्य की सृष्टि होती है। रवीन्द्रनाथ के अनेक लेखों में साहित्य की यह मर्म-वाणी व्यक्त हुई है। उन्होने कहा है:—
"साहित्य में ही हमें मनुष्य का सच्चा परिचय मिलता है और मानवात्मा की यथार्थ उपलब्धि होती है।"

गान्धीजी का कर्मक्षेत्र बराबर भारतवर्ष रहा। उनकी साधना, उनका सत्यप्रयोग भारत और भारतीयों को लेकर ही चलता रहा। भारत की स्वाधीनता एवं आत्मप्रतिष्ठा के लिए उन्होंने प्राणपण से प्रयत्न किया और सफल-काम भी हुए। किन्तु उनका वास्तविक लक्ष्य राजनीतिक स्वाधीनता तक ही सीमित नहीं था। वह भारतवासियों को पराधीनता के पाश से मुक्त करके नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से इतना ऊँचा उठाना चाहते थे। प्रेम एवं अहिंसा के मन्त्र की दीक्षा देकर उन्हें आत्मबल से इस प्रकार

बलीयान कर देना चाहते थे, जिससे वे संसार के सामने मानवता का आदर्श उपस्थित कर सके और आज के पशुबल-दीप्त जगत को उनकी इस आध्यात्मिक शक्ति की श्रेष्ठता मानने के लिए विवश होना पडे। उनका विश्वास था कि भारतवर्ष ही ससार को शान्ति एव प्रेम की वाणी सुनाकर उसे पशुबल के औद्धत्य एव दौरात्म्य से मुक्त कर सकता है। भारतवर्ष ही एक बार फिर ससार मे अध्यात्मबल की महत्ता सिद्ध कर सकता है। यही कारण है कि भारतवर्ष से उन्हे इतना अधिक प्रेम था और वह भारत की स्वाधीनता के लिए सर्वस्व त्यागकर सन्यासी बने थे। जिस समय गान्धीजी ने असहयोग आन्दोलन का प्रवर्तन किया था और उसके कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्होने विदेशी कपडे की होली तथा स्वदेशी और चर्खा-प्रचार की आवश्यकता पर जोर दिया था, उस समय स्वय कवीन्द्र को भी यह सन्देह हुआ था कि गान्धीजी भारत की स्वाधीनता की समस्या को लेकर विश्वसमस्या को भुला देना तो नही चाहते है, उनका आह्वान सकीर्ण क्षेत्र मे तो नही हो रहा है, उनका आह्वान तो नव युग की महासृष्टि के लिए आह्वान होना चाहिए, क्योंकि विधाता ने उनके कण्ठ में आह्वान करने की शक्ति दी है, उनमें सत्य है। कवि के इस सन्देह का निराकरण करते हुए गान्धीजी ने अपने 'Young India' पत्र में 'Bard of Shantiniketan' शीर्षक एक लेख लिखा था। उसमें गान्धीजी ने कवीन्द्र को आश्वासन देते हुए कहा था—

"Nor is the scheme of Non-co-operation or Swadeshi an exclusive doctrine My modesty has prevented me from declaring from the house top that the message of Non-co-operation, Non-violence and Swadeshi is a message to the world It must fall flat if it does not bear fruit in the soil where it has been delivered"

अर्थात् "असहयोग या स्वदेशी की योजना केवल भारतवर्ष को लेकर ही नही है। संकोचवश मैंने उच्च स्वर से इस बात की घोषणा नही की है कि असहयोग, अहिंसा और स्वदेशी का सन्देश सारे ससार के लिए है। जिस देश में यह सन्देश सुनाया गया है वहाँ यदि यह सफल न हो तो संसार इसे सुनकर इसकी उपेक्षा कर देगा।"

महात्मा के इस श्रद्धायुक्त आश्वासन पर आह्लादित होकर कवीन्द्र ने अपने 'सत्य का आह्वान' शीर्षक लेख में उनके प्रति प्रणाम निवेदन करते हुए लिखा था :—

"महात्मा ने अपने सत्यप्रेम द्वारा भारत के हृदय को जीत लिया है। यहाँ हम सब उनके सामने अपनी हार मान लेते है। सत्य की इस शक्ति को हमने आज प्रत्यक्ष किया है, इसलिए आज हम अपनेको कृतार्थ समझते है। चिरन्तन सत्य की बात हम पुस्तको में पढते है, मुँह से बोलते है, किन्तु जिस क्षण हम उसे सामने देखते है, वह हमारे लिए पुण्य क्षण होता है। बहुत दिनो के बाद अकस्मात् हमारे जीवन में वह सुयोग घटित हुआ है। सभा-समिति का गठन हम प्रतिदिन कर सकते है, भारत के प्रान्त-प्रान्त में घूमकर अंग्रेजी में राजनीतिक भाषण करना भी हमारे लिए

सहल है, किन्तु जिस सत्य-प्रेम के स्वर्णदण्ड के स्पर्श से शत-शत वर्ष का सुप्त चित्त एकबारगी जाग उठता है वह तो दूकान में नही गढा जा सकता। जिसके हाथ में इस दुर्लभ वस्तु को देखा है उसे हम प्रणाम करते है।" स्वयम् गान्धीजी भी कवि को एक प्रहरी (sentinel) के रूप में समझते थे, जो हमें सब प्रकार की कट्टरता, असहिष्णुता, अज्ञानता आदि दुर्गुणो से बचे रहने के लिए सावधान करता रहता है।

कवीन्द्र और महात्मा के प्रति असीम श्रद्धा धारण करनेवाले को कभी-कभी इस बात को लेकर भ्रम हो जाता था कि दोनो दो विचारधाराओ को लेकर चल रहे है, इसलिए दोनों के कार्य एव आदर्श परस्पर विरोधी है। ऐसे लोगो को लक्ष्य करके गान्धीजी ने एक बार कहा था —

"I have found no real conflict between us I started with a disposition to detect a conflict between Gurudev and myself, but ended with the glorious discovery that there was none"

अर्थात् "मुझमें और गुरुदेव में वास्तविक विचार-संघर्ष कुछ भी नहीं है। आरम्भ में मुझे भी ऐसा जान पडा कि हम दोनो में सघर्ष है, किन्तु अन्त में मुझे इस बात का पता चल गया कि वस्तुतः विरोध कुछ भी नही है।"

बात यह है कि हम साधारण मनुष्य जिस दृष्टि को लेकर मनुष्य को देखते है तथा उसके क्रिया-कलाप के सम्बन्ध में विचार

करते है उससे स्वभावत हमे विरोध एव संघर्ष दिखायी पड़ते है। दो महापुरुषो के विचार एव कर्मधाराओ की स्थूल दृष्टि लेकर जब हम तुलना करने लगते है उस समय भी हम यही भूल कर बैठते है। किन्तु वास्तव में ऐसा नही होता। बाह्य विभिन्नताओं के होते हुए भी उनके मूल में जो एकता होती है वही प्रधान वस्तु होती है, और इस एकता का मूल स्रोत होता है मानव-प्रेम या मानवता। गान्धी और रवीन्द्रनाथ दोनो के विचार एवं कार्यो के अन्दर भी हमे इसी मानव-प्रेम को ढूँढना होगा। इसका सन्धान पा जाने पर हमे दोनो के कार्यों में न तो कोई असगति जान पडेगी और न दोनो मे विचार-सघर्ष। और तब हम भी जवाहरलालजी की तरह यह कह उठेगे कि दोनो ही भारतमाता के बहुमुखी व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न पहलुओ का प्रतिनिधित्व कर रहे है। जवाहरलालजी के शब्दो में—

"I think of the richness of India's agelong cultural genius which can throw up in the same generation two such master-types, typical of her in every way, yet representing different aspects of her many sided personality"

अर्थात्, "भारत की यह युग-युग से चली आनेवाली सांस्कृतिक प्रतिभा इतनी समृद्ध है कि उसने एक ही पीढी में इन दो महापुरुषों को उत्पन्न किया है जो उसके बहुमुखी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओ का प्रतिनिधित्व अपने-अपने ढंग से करते है।"

कठिन शब्दार्थ

1. भारतीय इतिहास में सांप्रदायिक विष

प्रक्रिया - काम करने की रीति

आत्मानुभूति - अपने में अनुभव किया हुआ

न हि तृप्यामि महत्त - अपने पूर्वजों के महान इतिहास को सुनते-सुनते मैं नहीं तृप्त होता

व्यामोह - मोह

खिंचाव - आकर्षण

शोकोन्माद - दुख के कारण पागल

उत्कट - अधिक

सनातन सत्य - कभी न बदलनेवाली सचाई

बटवारा अलग करना

बुतशिकनी - मूर्तियों को तोडने की क्रिया

दूभर - कठिन

सरणि - सिलसिलेवार सोचने-विचारने की पद्धति

झगडालू - जो हमेशा झगडता हो

विरासत - उत्तराधिकार में प्राप्त हुई संपत्ति

अकर्मण्यता - बिना काम किये हाथ समेटे बैठे रहना

उपेक्षा लापरवाही

गुमराह - भूला-भटका हुआ

आलस्य - सुस्ती

आक्रांत - आक्रमण किया हुआ

निरा - बिलकुल

योजना - प्रणाली

सिक्का - मुहर

अव्यक्त जो प्रकट न हो, जिसे आँखों से देख नहीं सकते

रसूल - पैगंबर, ईश्वर का दूत

प्रगति तरक्की

अवनतिमुख - पतन की ओर जानेवाला

संचित इकट्ठा किया हुआ

अवश्यभावी - जो अवश्य हो

निद्रालुता - सुस्ती, पडे-पडे सोते रहने की दशा

मलबा - टूटी या गिराई हुई इमारत की ईंटें, पत्थर, चूना आदि का ढेर

बेहूदगी - असभ्यता

बारीकी - सूक्ष्मता

उज्जीवित करना - पुनर्जीवित करना

त्रैकालिक - तीनों कालों में या सदा रहनेवाला

चौपट - चौपट
जमींदोज कर देना - मिट्टी में मिला देना
बहक जाना - भूल से या असावधानी से ठीक रास्ता छोड़ जाना
अदम्य - जिसका दमन नहीं किया जा सकता
अथक - जो कभी न थके
तीसमारखाँ - जो अपनी बहुत बड़ाई करता हो और काम पड़ने पर पीछे हटता हो
मुँह का कौर छीनना - दूसरों का आहार ज़बरदस्ती छीनना
समझौता - संधि
एकाधिपत्य - पूर्ण अधिकार, एक ही का अधिकार
किचकिच - दलदल
कागज़ी पहलवान - जिसकी पहुँच केवल कागज़ों तक हो
स्वाँग - ढोंग
गहन - गूढ़
समिधा - होम में जलाने की लकड़ी
शहादत - शहीद होना

2. बदलू कुम्हार

विषमता - जिसमें समता न हो
सहज - स्वाभाविक
सौम्य - शांत, सुंदर
इकहरा - कमज़ोर
आकाशी वृत्ति - जिसके सामने कोई निश्चित कार्य न हो
श्रवणशक्ति - सुनने की शक्ति
अनभिज्ञ - अपरिचित, अनजान
एकबारगी - यकायक
मचिया - छोटी चारपाई
झरझरी - छेदोंवाली, टूटी-फूटी
प्रतियोगिता - स्पर्धा, होड़
व्याघात - बाधा, रुकावट
मार्मिक - बहुत असर करनेवाला
प्रकृतिस्थ - स्वस्थ, शांत
हृदय-मंथन - मन में उठनेवाले भावों व विचारों पर एकाग्र होकर ध्यान से सोचना
आवेग - मन में उठनेवाले भावों का ज़ोर
कोर - किनारा
कड़ुआ तेल - सरसों का तेल (mustard oil)
जर्जरता - बुढ़ापा
निचुड़ना - निचोड़ा जाना
काँसा - एक मिश्रित धातु जो ताँबे और जस्ते के संयोग से बनती है
खिन्न होना - दुखी होना

ककश प्रगल्भता - असहनीय उद्दंडता, मन को अच्छा न लगनेवाला कठोर व्यवहार
रूपांतरित होना - बदलना
मक्का मकई (एक प्रकार का अनाज)
जुनरी - ज्वार
उपसंहार - समाप्ति
फुलझड़ी - आतिशबाजी
सिरकियाँ - बाँस या सरकंडे की तीलियाँ
उनींदा निद्रा की वह पूर्वावस्था जो रात भर जागने के कारण होती है, ऊँघता हुआ
वायवी स्थिति - वह स्थिति जिसकी केवल कल्पना ही हो सकती है
कलावंत - किसी कार्य को अच्छी तरह व सुंदर ढंग से करने में चतुर
हटिया - बाज़ार जो सप्ताह में एक बार लगता हो, हाट
पूरा पड़ना - गुज़र होना
संतुलन अपने को बराबर समझकर समान स्थिति पर रखना (balance)
गतिशील - जो चलता हो, जो हमेशा कोई न कोई काम, चाहे शारीरिक या मानसिक, करता हो
सकुचाना - आगा-पीछा करना
दराती - चाकू, दाँतोंवाला चाकू
उसार - वसारा, बरामदा
टिटहरी - पानी के पास रहनेवाली एक छोटी चिड़िया
पिंडोर गोबर
चेचकरू दीवार - वह दीवार जिसपर दीमक लगने से दाग हो गये हों—जैसे चेचक हो जाने पर शरीर या चेहरे पर दाग हो जाते हैं वैसे ही दीमक लगने से दीवार पर दाग होते हैं
प्राचीर चहारदीवारी
नवजात जो अभी पैदा हुआ हो
प्रशांत - शांत
सौम्य मुद्रा - शांतिसूचक मुखाकृति
हरीरा - एक प्रकार का पेय, दवाइयाँ और जड़ी बूटी मिलाकर बनाया हुआ एक प्रकार का काढ़ा (कषाय) जो प्रसव के बाद स्त्रियों को पिलाया जाता है
उबकाई - कै
गढ़ना - कल्पित बात कहना
हाथ पसारना - स्वागत करना
गँवई गाँव - ठेठ गाँव
शहराती - शहर के निवासी
प्रतिकृति - प्रतिमूर्ति
आनंदातिरेक - बहुत ज्यादा खुशी, अत्यधिक आनंद

लेई - लेटा, लपसी
शिल्पी - सुन्दर काम करनेवाला कारीगर
टलिया - डाली
मुनहला - सोने के रंग का
नक्काशीदार - जिसमे सुन्दर ढंग से बेल बूट किये गये है
क्रीत दासी - खरीदी हुई दासी

3 युद्ध के मौलिक कारण

सामरिक प्रवृत्ति युद्ध चाहने का स्वभाव
विद्यमान - मौजूद
नियंत्रण - बंधन (control)
आतंक - रोब
सुसज्जित करना - सजाना
धारणा पक्का विचार
अंतर - फर्क
जुटाना - जमा करना
उपज - पैदावार
यातायात गमन और आगमन (export and import)
वाष्पशक्ति - भाप का बल
जलयान - नाव या जहाज
काष्ठ - लकड़ी
विद्युत - बिजली
खनिज - जो खान में पैदा होता
उद्योगवाद - वह सिद्धांत जिससे यह माना जाता है कि उद्योग-धधो से ही देश की उन्नति होती है
स्वामित्व - आधिपत्य
प्रतिस्पर्धा किसी कार्य में एक का दूसरे से आगे बढ़ जाने का प्रयत्न, होड़ाहोड़ी
कूटनीतिज्ञता - चालाकी से काम बना लेने की युक्ति
आतंकवाद - डरा धमकाकर लोगों को वश में कर लेने की नीति, या ऐसा एक सिद्धांत जिसके द्वारा लोगों को भय के बल पर अधीन में रखा जाता है
मूलाधार - जड़, वह बुनियाद जिसपर सब अवलंबित है
अर्थ - धन
अराजकता - अच्छे शासन के न होने पर देश में होनेवाली दशा
अग्रगण्य - आगे बढ़ा हुआ
उपनिवेश - अन्य स्थान से आये हुए लोगों की बस्ती (कालिनी)
अंतर्गत - अन्दर
अनुयायी - पीछे पीछे चलने वाला
हथियाना - वश में कर लेना

कच्चा माल यह प्राकृतिक वस्तु जिसको अभी उपयोगी वस्तु के रूप मे नही बदला गया हो

प्रतिद्वन्द्विता होड(competition)

विकट रूप - भयकर आकार, डरावनी सूरत

व्याज सग्रह - सूद-नमूला

अपेक्षित - वाछनीय

मुसज्जित - सब तरह से तयार

तैनात नियुक्त

गुट - दल

I अवलम्ब

राडियल सड़ा हुआ

उपदश - फिरग रोग, गरमी (वह बीमारी जो अनेक स्त्रियो या पुरुषो के ससर्ग से आती है जिसके कारण फोडे हो जाते है)

पलस्तर - दीवार पर लगानेवाला गारा, चूना आदि का लेप

लोना हो होकर छूटना - मिट्टी मे नमी के कारण नमक पैदा होने से दीवार पर लगा हुआ पलस्तर, मिट्टी, ट आदि का छूटना

झाकी - दर्शन

भृकुटि - भौह

टाट की चादनी - सन (jute) की बनी हुई चादर जो छत के नीचे तानी जाती है

किरानी - लेखक, क्लर्क

झझट - बधन

सरोकार - सबन्ध

कैफियत विवरण, हाल

तलब करना - मागना

त्रस्त - भयभीत, डरा हुआ

रोज़ा - मजदूरी, नौकरी

सिरहाने - सिर के नीचे, सिर की तरफ

खटराग - बखेड़ा, बार बार कही हुई एक ही बात जिसे सुनने की इच्छा न रहने पर भी सुनते रहना पडता है

साझ-बिहान - शाम सवेरे

बरबस ज़बरदस्ती से

उजड्ड - असभ्य

दमकना - खूब चमकना

दाग - धब्बा

क्षितिज वह स्थान जहाँ ज़मीन और आसमान मिले हुए-से दीखते हैं

पैराबुलेटर - बच्चो को बिठाकर घुमाने की छोटी गाड़ी

टालमटूल - बहाना

ज़ोर-ज़ुल्म - अत्याचार

व्यस्त - मग्न

फफककर रो उठना - बिलख-बिलखकर रोना

कायदा - नियम (rule)

5 मुगल काल में हिन्दू-मुस्लिम व्यवहार और त्योहार

तहज़ीब - सभ्यता

जलवा - असर, प्रभाव

हीलो-हुज्जत - झगड़ा, आनाकानी

छिछोरा - क्षुद्र

चंडोल - (1) एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे या अबारी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं (2) मिट्टी का एक खिलौना जिसे चौघड़ा भी कहते हैं

मेहमाँनवाज़ी - अतिथि सत्कार

मटमैला - मिट्टी के रंग का

अखाड़ा - कुश्ती लड़ने का स्थान

लपक - आवेश, वेग

हरारत - गरमी, जोश

रोचकता - दिलचस्पी

चित्रपुंज - चित्रों का समूह

रंगरेल़ा - आमोद-प्रमोद

अंगिया - चोली

गुलाल - वह लाल चूर्ण जो हिन्दू होली के दिन दूसरों पर छिड़कते हैं

अबीर - रंगीन बुकनी या अबरक का चूर्ण जिसे लोग होली में इष्टमित्रों पर डालते हैं

मुखड़ा - मुख

तरावट - शीतलता

उल्लेख - वर्णन, ज़िक्र

सालगिरह - जन्म-दिन

तुलादान - वह दान जिसमें मनुष्य की तौल के बराबर कोई पदार्थ तौलकर दान कर दिया जाता है

जशन - उत्सव

अविनाशी - जिसका नाश नहीं होता

नौरोज़ - फारसियों के नये वर्ष का पहला दिन

ईदुल - फ़ितर - वह 'ईद' जिसके उपलक्ष्य में सिमइयाँ बाँटी जाती हैं, बकरे की कुर्बानी नहीं होती

ईदुल-ज़ुहा - बकरीद

जाखिम - खतरा

जायज - उचित

खपना - बिकना, मिलना

सुर्खरू - गौरववान

रौशन - प्रकाशवान

6 कबीर

आस्वाद्य - चाव से रुचि के साथ अनुभव करने योग्य

सर्वधर्म-समन्वयकारा - सभी धर्मों का समन्वय करनेवाला

ऐक्य विधायक - एकता स्थापित करनेवाला

दार्शनिक - वेदांत संबंधी, दर्शन-संबंधी

दरेरा देकर - टुकडे होकर, तोड़-मरोड़ कर (ज़मीन के फटने से होनेवाली फटास को दरेरा कहते हैं, वैसे ही कबीरवाणी अटपटी होती है और जैसे तैसे विचार व्यक्त होता है)

फक्कड़ - मस्त, बेफिक्र

फ़रमाइश - माग

नाही करना इनकार करना

अगोचर - आँख से परे की चीज़, न दिखायी देनेवाला

निगूढ़ - छिपा हुआ

फ़क्कडाना प्रकृति - मस्त रहनेवाला स्वभाव

काजी - न्यायाधिकारी

अवधू - साधुओं का एक विशेष दल, अवधूत सन्यासी,

जोगिया - योगी संबन्धी

सर्वजयी - सबको जीतनेवाला

रीझना - मोहित होना

घलुआ - ख़रीदने में तौल से कुछ अधिक मिली हुई वस्तु

अयत्नसाधित - बिना यत्न के मिला हुआ, आपसे आप मिला हुआ

कायल - कबूल करनेवाला

आत्मविस्मृति अपने को भूल जाना

उल्लासमय - आनंददायक

साक्षात्कार - प्रत्यक्ष

दैनन्दिन - प्रतिदिन का, दैनिक

महिमा-समन्वित - महिमा से युक्त, महत्व के साथ मिला हुआ

आवेगमय - जोशीला

निर्मम - कठोर

आलोचना टीका टिप्पणी

हेतु प्रकृतिगत - कार्य-कारण से संबंध रखनेवाला

अनुसन्धित्व - साधना के द्वारा की जानेवाली खोज

दुर्बोध्य जो जल्दी समझ में नहीं आता हो

आस्पद पात्र, योग्यतायुक्त व्यक्ति, लायक आदमी

व्यक्तिगत - निजी, अपना

समष्टि-वृत्ति - सबको साथ लेकर चलनेवाली भावना

व्यष्टिवादी - व्यक्तिवादी, मोटे तौर पर 'व्यष्टिवाद' उसे कहते हैं जिसके द्वारा व्यक्तिगत साधना प्रधान मानी जाती है

अहेतुक प्रेम - निष्काम प्रेम, वह प्रेम जिसके द्वारा बदले में कुछ पाने की इच्छा न हो

निर्विशिष्ट - साधारण

प्रवर्तित - चलाया हुआ

उपदिष्ट उपदेश दिया गया हो

बाह्याचार - दिखावे के लिए किये जानेवाले आचार

प्रेम भक्ति-पात्र - भगवान के प्रति निष्काम प्रेम और भक्ति करने योग्य

सम्भ्रम - मान, गौरव

प्रतिपादन - किसी बात को प्रमाणपूर्वक कहना, अच्छी तरह समझाना

क्षुब्ध - दुखी

द्वन्द्व दुविधा

निदान - खोज, पहिचान

निर्देश - आदेश, सूचित करना

अमोघ जिसकी तुलना नहीं हो सकती हो

नकारात्मक प्रक्रिया - न कहने की युक्तिपूर्ण कार्य-पद्धति

अविश्लेष्य - जिसका विश्लेषण नहीं हो सकता हो

रूढि - पद्धति, परम्परागत आचारों को बिना सोचे विचारे अपनाने की रीति

बद्ध - बंधा हुआ

प्रत्यक्षीकृत - आँख के सामने उपस्थित किया हुआ

अनुभवैकगम्य तत्त्व - ऐसा सत्य जो अनुभव करने पर ही जाना जा सकता हो

अकथ्य - जो कहा नहीं जा सकता हो

ध्वनन - शब्द की वह शक्ति जिससे शब्द के सुनने के बाद बहुत समय तक उसका असर बना रहता है

निदर्शन - उदाहरण

फोकट का माल - मुफ्त का माल

बाईप्रोडक्ट - एक प्रधान काम के करते समय आपसे आप हो जाने-वाले दूसरे अप्रधान काम

स्वाधीनभर्तृका नायिका - पति को अपने अधीन रखनेवाली नायिका

तर्कपरायण - विभिन्न सिद्धांतों पर विचार विनिमय करने के बाद किसी विषय को निश्चित करने-वाला व्यक्ति

वदतो व्याघात, - कथन का एक दोष जिसमें खुद का कही हुई बात का खंडन किया जाता हो

अनिर्वचनीय - जिसका वर्णन न किया जा सके

उद्भासित - प्रकाशित
प्रकाशपुंज ज्योति का समूह
आपातालनिमग्न - पाताल तक डूबा हुआ
अविधर्षित मन्दराचल: लंका जीतने के लिए जाते समय बंदरों ने समुद्र पार तो किया, मगर उसकी गहराई को किसीने नहीं पहचाना। समुद्रमंथन के समय मन्दराचल मथानी बनाया गया था, इसलिए यह पर्वत समुद्र की गहराई को जानता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह कि कबीर की वाणी का महत्व वही समझ सकते हैं जो उसीमें मग्न होकर गंभीर अध्ययन करें
कालक्रम समय की गति के अनुसार

7 पगडंडी

पगडंडी जंगलों या खेतों में का वह पतला रास्ता जो लोगों के आने जाने से बन जाता है
ललाई - लालिमा
नगीना - मणि
लुकना - छिपना
मुखरित करना - कल-कल शब्द से गुंजा देना
अलस सुस्ती लानेवाला
तुनक जाना - चिढ़ जाना
संताप पश्चात्ताप
उच्छ्वासित कर - दुख भार से दीर्घ श्वास छोड़कर
निरुद्ध रुका हुआ
प्रतिवाद खंडन
कन्या का सीमंत - कन्या की माँग (सिर के बालों के बीच का हिस्सा) जिसमें सौभाग्य चिह्न सिन्दूर भर दिया जाता है
उपक्रम - तैयारी
सगाई विवाह का निश्चय, मंगनी
अंजुलि - दोनों हाथों की हथेलियों को मिलाने में बननेवाला गड्ढा
अजस्र निरंतर, हमेशा
विस्तताकाश - बहुत दूर तक फैला हुआ आसमान
अनुशीलन - खोजपूर्ण अध्ययन
उन्मुक्त - खुला हुआ
सुषमा - शोभा
भित्ति - दीवार
अंतर्निहित - एक दूसरे के अंदर समाया हुआ, अन्दर छिपा हुआ
तैश - गुस्सा, क्रोध
आकारिक रूपरेखा संबन्धी, आकार प्रकार संबन्धी

पारिमाणिक अंतर - मात्रा में दिखने वाला अंतर

प्रतियोगिता - होड़, स्पर्धा

प्रतिदान - दान के बदले का दान, बदला

अवहेलना - परिहास, अपमान

सैकत राशि - बालू का बड़ा मैदान, रेतीला प्रदेश, मरुभूमि

विजन - निर्जन, सुनसान

सहेजना - सँभालना

निशीथ - रात, अंधकार

अन्यमनस्क - अनमना, कहनेवाली बात को न सुनकर किसी दूसरी बात पर विचार करते या सोचते रहना

चिरसंचित - कई दिनों से इकट्ठा किया हुआ

ज्योतिष्पथ - आकाश गंगा, आसमान में वह प्रकाशपूर्ण स्थान जहाँ बहुत से नक्षत्र एकत्र रहते हैं, जिसे पुराण मत के अनुसार आकाश-गंगा कहते हैं। यह आकाश में उत्तर दक्षिण में फैला रहता है।

उपेक्षित - उदासीनता से छोड़ी हुई बात

निष्कर्ष - निर्णय

आलोक-स्तम्भ - प्रकाश बाटनेवाला स्तंभ

आरोह अवरोह - संगीत में उतार-चढ़ाव

सम पर मिलाना - ताल और राग के अनुसार स्वर का एक समतल पर लाना

आकुंचन - संकोच, छोटा होना

शुभ्र - स्वच्छ

अभ्र - मेघ, बादल

लीन जाना - साथ मिलकर एक हो जाना, धीमी धीमी स्वर लहरी की मधुर ध्वनि कानों में प्रतिध्वनित होना

कादंब - छुहारा या खजूर की जाति का एक पेड़ जिससे मद्य निकलता है

प्रत्यूष - प्रभात

समस्या - पहेली, ऐसी बात जिसे आसान उदाहरणों के द्वारा समझानी पड़ती है (problem)

शाश्वत - स्थायी, हमेशा रहनेवाला

सजोकर रखना - सजाकर रखना, तयार रखना

अपवादी स्वर - कटु स्वर

ज्योतिर्मय - प्रकाशपूर्ण

स्वप्निल - स्वप्न का

अंतरिक्ष - आकाश

तंद्रा - ऊँघ, हलकी बेहोशी

धमनी - शरीर के अन्दर रहनेवाली वह प्रधान रक्त-नाड़ी जिसके द्वारा अन्य छोटी-छोटी नाड़ियों का रक्त

मिलता रहता है और सारे शरीर में रक्त का संचार होता है
निर्विश्राम - बिना आराम लिये
शोला - आग की लपट
बट्टबाबा - कोई पुराना वटवृक्ष (दादा कहकर संबोधित किया गया है।)

8 कला और देवियाँ

प्रबोधन - जागृति, ज्ञान
उन्नयन - उन्नति, आगे का ओर बढ़ाना
विभूति - सृष्टि, संपत्ति
संयुक्त - संबद्ध
उत्कर्ष - श्रेष्ठता
चारुता - सुंदरता
स्वत्व - अधिकार
इतर आवेश - ऐसे अन्य गुण जिनके कारण तात्कालिक वातावरण के बनने या बिगड़ने में सहायता मिलती हो।
उद्बोधन करना - जगाना, उत्तेजित करना
क्षिप्रता - वेग
लघु - छोटा
जड़त्व से वंचित होना - कार्यशील होना, सुस्ती छोड़कर फुर्तीला बनना
ललित - सुंदर

9 मेरा घर

तला - घर की मंज़िल
छत - ऊपर से बनाया हुआ बेष्, ऊल कपट की ओढ़नी
तिलस्म - जादू, जंतर मंतर, चमत्कार
ढह जाना - गिर जाना
भठियारा - चने भूँजनेवाला
आवभगत - आदर सत्कार
सूदखोर - असंगत रीति से कर्ज़े पर अधिक पैसा ब्याज के रूप में वसूल करनेवाला महाजन
चटियल - जिसमें पेड़ पौधे न हों।
जतन - कोशिश, श्रम
तुमुल नाद - कोलाहल, शोरगुल
भूपद, खम्माच } राग विशेष
बौछार की चौमुखी चोट - बेमेल आवाज़ों का चारों तरफ से एक साथ आघात
ऐलान - घोषणा
हल्ला बोल देना - शोर मचाकर जंग करना
रंगरेज़ - कपड़े रंगनेवाला

दढ़ियल - दाढ़ीवाला
दास्तान - कहानी, किस्सा
घिनौना - घृणा या अरुचि पैदा करनेवाला
अफराई हुई होना - किसी चीज़ से भरी हुई होना
चाम - चमड़ा
ट्रेजेडी - दुःखांत नाटक, दुर्घटना
प्रांगण - आंगन
अपाहिज - लूला-लंगड़ा, अंगहीन
सानी नहीं रखना - किसी चीज़ के साथ तुलना नहीं हो सकना, अतुलनीय
सड़ांध - किसी चीज़ के सड़ने से पैदा होनेवाली गन्ध, दुर्गंध
पनवाड़ी - तमोली, पान बेचनेवाला
इक्का - घोड़ा जोतने की एक गाड़ी
कर्मण्यता - कर्तव्य पालन की बुद्धि
बदहज़मी - अपच, अजीर्ण
घिन - घृणा
सूरमा - वीर
खटका - शक के कारण पैदा होनेवाला डर
पट - कपड़ा, वस्त्र

10 हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी

विवेचन - किसी भी बात की सच्चाई जानने के वास्ते किये जानेवाले प्रयत्न
हेय - घृणित, छोड़ने लायक
प्रूफरीडर - प्रूफ देखनेवाला, किसी भी लिखी हुई चीज़ को छापते समय छापने की अंतिम स्वीकृति देने के पहले छपाई की गलतियाँ को शुद्ध करने का काम करनेवाला
परे - हटकर, थोड़ी दूरी पर
पैड - दफ्ती (pad)
संत्रस्त - परेशान, व्याकुल

11 नयी कहानी का प्लॉट

जान को आ जाना - परेशान कर देना
फरमा - फारम, पुस्तक या पत्रिका छापने के लिए चार, आठ, या सोलह पेज के क्रम से या कागज़ की सुविधा के अनुसार बनायी जानेवाली आकृति
व्यस्तता - निमग्नता, किसी काम में डूबे रहने की स्थिति
मदाख़लत - अनधिकार प्रवेश, बिना किसी अधिकार के दूसरों के कामों में हाथ लगाना
निरम्मा बोधाबसंत - बेवकूफ

हेठी - मानहानि, ताहाल
अधकचरा - आधा पका, जिसे कुछ भी फल भी नहीं सकते, न उसका उपयोग ही कर सकते हैं
समवयस्का - समान उम्रवाली
लोलुप दृष्टि - लालच भरी नजर
फल - चाकू, छुरी आदि का वह तेज़ भाग जिससे कोई चीज़ काटी जाती है, धार
अहीर - ग्वाला
खेसारी - एक प्रकार का मटर
फाका - उपवास
चूजा - मुर्गी का बच्चा
हतनाश - निश्चेष्ट
शतिशय - शोक, खिन्न
निस्तार - उद्धार, छुटकारा
पावस - नया, पानी बरसने का मौसम (वर्षा)
लड़ाक - लड़नेवाला
फालतू - आवश्यकता से अधिक रखा हुआ सामान
बिला वजह - बिना कारण
धब्बा - कलंक
सलवट - सिकुड़ने से पड़ी हुई रेखाएं शिकन
पौ फटना - सवेरा होना
गुलगुला - एक मिठाई विशेष

12 निगोड़ी नींद

कबल - पहले
दूती - दासी
नाज़बरदारी - आदर सत्कार के साथ मनाने का काम
पलंग डसाना - खाट बुनवाना
काश - ऐसा हो जाय, क्या ही अच्छा होता
पहलू गरम करना-किसीको प्रेम से पास बैठाकर सहलाना या सुखी बनाना
आशना - प्रेमी
झंझट - तकलीफ, बधन
अकड़ - अभिमान या गर्व
आँखों से जान निकलना - बहुत देर तक किसीकी प्रतीक्षा करते करते थक जाना
ख़िलवत - एकान्त
मीठी बयार - अच्छी लगनेवाली हवा
कज़ अदायी - रुखता, नाज़-नखरे
बेवफाई - कृतघ्नता
उमस - वह गरमी जो हवा के न बहने से होती है
तर-बतर - बिलकुल भीगा हुआ
गुलगुल - मुलायम
ताबड़तोड़ - लगातार

शिद्दत - उग्रता अधिकता
फुर्ती - हस्का
कुदरत - प्रकृति
हजार इमारत पर भी - बहुत सुंदर मकानों के रहने पर भी
हम ऐसे स्थान में हैं वह तवे में हम परों की हवा की ठंडक में है, वह गरमी के मारे झुलसा जा रहा है
उकड़ूं बैठना - घुटने मोड़कर पूरे तलुवे ज़मीन पर रखकर एड़ियों पर बैठना
दिलदारी - बहादुरी
गले पड़ना - इच्छा न रहने पर भी सिर पर आ पड़ना
गले लगाना - आलिंगन करना
पोलाव कलिया - मांस से बनाया हुआ एक स्वादिष्ट भोजन
गच - कड़ी पक्की ज़मीन
चबैना - चबाकर खाने के लिए सूखा भूना हुआ चना
दर्देसर - सिर का दर्द
ज़माने की फ़वर्ती - समय का व्यंग
आरज़ - विनती
वोलर - पहियावाली सवारी
हवाखोरी - सैर-सपाटा
कारचोबी की गद्दी - गुलकारी का हुई गद्दी, बेल बूटे बनाकर सजाई हुई गद्दी
हरारत - गर्मी, ताप
गोशा - एकांत, तनहाई
आशनाई - दोस्ती, प्रेम

13 दस मिनट

नारकी - पापी
वर्दी - वह पहनावा या लिबास जो किसी विभाग के कर्मचारियों के लिए निश्चित होता है
पुरस्कृत - जो इनाम पा गया हो

14 तुलसी की भावुकता

प्रबंधकार - प्रबंध काव्य लिखनेवाला कवि
आख्यान - कथा
उभारनेवाला - प्रेरणा देनेवाला, प्रोत्साहन देनेवाला
सन्निवेश करना - मिलाना, एक दूसरे से समन्वित करना
श्रीहीन - कांतिहीन
आठ आठ आँसू रोना - बहुत रो
उदात्त - उदार

उद्भावना ऊंची कल्पना
श्वसुर ससुर
जामातृ दामाद
प्रस्फुटित होना निकलना, विकसित होना
पारदर्शी अंतरंग तक देखनेवाला
आह्लादित होकर आनंदित होकर
भूशय्या - जिसकी शय्या भूमि है
व्यवहार-सौष्ठव - व्यावहारिक कुशलता व चातुरता
वन्य - वन का
रति प्रेम
प्रवास विदेश यात्रा
याथातथ्य चित्रण - जैसे का तैसा चित्रण, यथार्थवादी वर्णन
प्रफुल्लता - आनन्द
प्रणति - प्रणाम

15 पुरस्कार

घुमड़ मेघों का गर्जन
घोष गर्जन
अभ्र - बिना बादलों का आकाश
शैलमाला पर्वतमाला
सोंधी बास पानी बरसने के पहले ज़मीन से उठनेवाली एक तरह की सुगंधि
चामरधारी शुंड हाथी की सूंड जिसमें चामर धरा हुआ हो
हेमकिरण - सुनहली किरणें, सूरज के निकलने या अस्त होते समय पड़नेवाली किरणें
अनुरंजित - प्रेम से अपनायी हुई
खील - भूना हुआ धान, लाजा
- गोष्ठी, सभा
वसन - रेशमी वस्त्र
कण पसीने की बूँदें
बरौनी पलक के किनारे पर के बाल
सिहर उठना कांप उठना
चितवन दृष्टि
ऊर्जस्वित तेजोवान, कांतिवान
मधूकवृक्ष - महुए का पेड़ जिससे मदिरा बनती है
तोरण - उत्सवों में प्रधान फाटक पर बांधी जानेवाली फूल-पत्तों की माला
खिन्न निद्रा ऐसी नींद जो चिंता या दुख के कारण रुक रुककर आती हो
मुकुलित - अधखिला
निस्पन्द - गतिहीन, बिना हिले डुले
विडंबना - दुर्दशा, मज़ाक
अवगुंठन - घूँघट, पर्दे में
छाजन टपकना - छत से पानी टपकना
चाटुकारी - खुशामद

गह्वर - गुफा
प्राणों से पण लगाना - प्राणों की बाज़ी लगाना
पहाड़ी दस्यु - पहाड़ी चोर
प्रकोष्ठ - आंगन
प्रतिहारी - द्वारपाल
श्रमजीवी - मजदूर
नवागत - नया आया हुआ
अभियान - आगे बढ़ना (forward march)
उल्काधारी - हाथों में मशाल धारण किये हुए लोग
अश्वारोही - घुड़सवार सिपाही
आततायी - अत्याचारी

16 अबुल कलाम आज़ाद

दुकड़ा - चिबुक
साफा - पगड़ी
पट - द्वार
अनावृत - खुला हुआ
प्रच्छन्न - ढका हुआ, छिपा हुआ
वंशधर - वंशज
कोर्निश करना - झुककर अदब से सलाम करना
प्रपितामह - परदादा
अभिभूत - वशीभूत
खीस - झुंझलाहट
अनुप्राणित करना - जिलाना
प्रसार - विस्तार
हथकण्डा - युक्ति
अनुगमन - पीछे पीछे चलना
मज़मून - लेख
स्वायत्त शासन - वह शासन जो अपने अधीन हो
पश्चाद्गामी प्रवृत्ति - पीछे की ओर ले जानेवाली प्रवृत्ति
जमैयत - (डा० ज़ाकिर हुसेन के द्वारा संस्थापित) मुसलमानों की एक संस्था
हेच - तुच्छ
अनुभूति - अनुभव
हाज़मा - पाचन शक्ति
पेट में निवाले पड़ना - भोजन मिलना
सीन काफ से दुरुस्त - रहन सहन से एकदम सुधरा हुआ
शक्ति का पुंज - शक्ति का संचित रूप

17 असमान आय के दुष्परिणाम

नियत करना - मुकर्रर करना
कुगृहिणी - जो गृहस्थी को उचित रूप से चलाना न जानती हो
सट्टा - व्यापार
काल का ग्रास बनना - मर जाना
अव्यवस्थित - क्रमरहित

हतबुद्धि - जिसकी बुद्धि सोचने-समझने के लायक न हो

शानदार - ठाटबाट से सजा हुआ

शिकारगाह - शिकार खेलने की जगह

व्यवसायी - मेहनत करनेवाला

तात्कालिक - तब का तब, तुरत का

मिरगी - अपस्मार रोग

शरारती - दुष्टता करनेवाला, पाजी

क्वचित - थोड़ा, कुछ

गर्मी सूजाक - स्त्रियों या पुरुषों के बहुत ज्यादा शरीर सम्बन्ध से पैदा होनेवाली बीमारी जिसमें सारे शरीर में फोड़े हो जाते हैं

नैतिक शुद्धता - चाल चलन में पवित्रता

उपलभ्य - प्राप्य, पाने योग्य

विरत - विरक्त, वह जिसका किसीके साथ कोई संबंध न हो

न्यायतुला - न्याय बतलानेवाला तराजू

वर्गीय भावना - दलबन्दी की भावना

दीवानी कानून - वह कानून जो साधारण अधिकारों की रक्षा के लिए बना रहता है

हद दर्जे की - हद से ज्यादा

उपेक्षा - किसीके प्रति दिखायी जाने वाली उदासीनता

कार्रवाई - काम

फौजदारी कानून - वह कानून या विधि जिससे अपराधी को दंड दिये जाने का नियम हो

वादी पक्ष - मुकदमा लड़नेवाले की तरफ के लोग

सेंध - चोरी करने के लिए बनाया जानेवाला छेद

खयानत - किसीकी खोयी हुई चीज को अपनाकर, उसका अनुभव करना

गठकटी - गांठ काटने का काम, चोरी

उठाईगीरी - परायी चीज को उसके मालिक की जानकारी के बिना अपनाने की बुरी नीयत

चाकलेटी मलाई खाते फिरना - इधर-उधर होटलों या अन्य किसी ऐसी ही जगह पर बेकार घूमते फिरना

आरोप का निराकरण करना - आरोप को झूठा साबित करना, दोष को अस्वीकार करना

संतति नियमन - अधिक संतति होने से रोकना

अभियोग - मिथ्या दोषारोप

नगण्य लाभ - तुच्छ लाभ

बावडी - बड़ा

18 कर्म और वाणी

प्रवर्तित होना - चलाया जाना
अनागत - जो न आया हो, भविष्य
आवेदन - प्रार्थना
आत्मप्रत्यय आत्मा का ज्ञान, अपने ऊपर विश्वास
संवाहक - किसी भी वस्तु या तत्व को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर उसे उन तक पहुँचाने के महत्वपूर्ण कार्य को करनेवाला
कालनिपात - समय को बिताना
अर्जन एवं मार्जन कमाना और कमाया हुई संपत्ति को पवित्र बनाये रखना
चैतन्योदय - नयी जागृति का पैदा होना
उद्भ्रांत - सही रास्ता भूलकर इधर-उधर भटका हुआ
जनस्रोत - लोगों की भीड़
आवर्त - चक्कर, लोगों का आना जाना
बिंबग्राही - छाया को ग्रहण करनेवाला
नीरव - शांत
उत्स - उद्गम, वह स्थान जहाँ से कोई वस्तु या भाव निकलता हो, झरना, सोता
प्रसारित करना - फैलाना
प्रशस्त - उत्तम, प्रसिद्ध
पाश - बंधन, जकड़बन्दी
बलीयान - शक्तिशाली, बलवान
औद्धत्य - अक्खड़पन, ढिठाई
चिरंतन कभी नष्ट न होनेवाला
प्रहरी - पहरा देनेवाला
संधान - अन्वेषण का काम, खोज